लगन महूरत झूठ सब

प्रवचन-क्रम

1. यह क्षण है द्वार प्रभु का..2
2. कच्ची कंध उते काना ऐ...20
3. मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष और लब्ध हूं...36
4. संसार से पलायन नहीं, मन का रूपांतरण...51
5. मेरे संन्यासी तो मेरे हिस्से हैं...66
6. अद्वैत की अनुभूति ही संन्यास है...79
7. गुरु स्वयं को भी उपाय बना लेता है...96
8. सवाल अहिंसा का नहीं, कोमलता का..108
9. योग ही आनंद है..126 10...समर्पण ही सत्संग है 139

लगन महूरत झूठ सब
पहला प्रवचन

यह क्षण है द्वार प्रभु का

पहला प्रश्नः ओशो, आज प्रारंभ होने वाली प्रवचनमाला के लिए आपने नाम चुना हैः लगन महूरत झूठ सब।
निवेदन है कि संत पलटू के इस वचन पर प्रकाश डालें।

आनंद दिव्या, पलटू का पूरा वचन ऐसा है-
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।
लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।
धर्म तो परवानों की दुनिया है! दीवानों की, मस्तों की। वहां कहां लगन-महूरत! धर्म तो शुरू वहां होता है जहां समय समाप्त हो जाता है। वहां कहां लगन-महूरत!
लगन-महूरत की चिंता तो उन्हें होती है जो अतीत में जीते हैं और भविष्य में जिनकी वासना अटकी होती है। जीते हैं उसमें जो है नहीं और आशा करते हैं उसकी जो अभी हुआ नहीं--और शायद कभी होगा भी नहीं।
धर्म का संबंध न तो अतीत से है न भविष्य से है। धर्म हैः अभी और यहीं जीना। बस अभी और यहीं। इस क्षण के पार कुछ भी नहीं है। इस क्षण से हटे कि धर्म से चूके। बाल भर का फासला पड़ा इस क्षण से कि जमीन-आसमान अलग-अलग हो गए।
यह क्षण द्वार है प्रभु का। क्योंकि वर्तमान के अतिरिक्त और किसी की कोई सत्ता नहीं है। अतीत है मात्र स्मृतियों का जाल। और भविष्य है केवल कल्पनाओं, सपनों की बुनावट। दोनों अस्तित्व शून्य हैं। और इन दोनों में जो जीता है, उसी का नाम संसारी है। वही भटका है।
ध्यान रहे, जिसको तुमने संसार समझा है, वह संसार नहीं है। घर-द्वार, पत्नी-बच्चे, बाजार-दुकान--यह सब संसार नहीं है। इसको तो छोड़ देना बड़ा आसान। इसको तो बहुत भगोड़े छोड़ कर भाग गए। मगर सवाल यह है कि क्या संसार उनसे छूटा? बैठ जाओ गुफा में हिमालय की, फिर भी संसार तुम्हारे साथ होगा। क्योंकि संसार तुम्हारे मन में है। और मन है अतीत और भविष्य का जोड़। जहां वर्तमान है, वहां मन नहीं।
बैठ कर भी गुफा में क्या करोगे हिमालय की? वही अतीत की उधेड़बुन होगी। वही बीती बातें याद आएंगी। वही बिसरे, विस्मृत हुए क्षण लौट-लौट द्वार खटखटाएंगे। क्या करोगे हिमालय की गुफा में बैठ कर? फिर भविष्य को संजोओगे। फिर आगे की योजना बनाओगे।
और अक्सर तो यूं होता है कि जो बाजार में बैठा है, उसका भविष्य बहुत बड़ा नहीं होता; क्योंकि वह इस जीवन के पार की कल्पना नहीं कर पाता। उसकी कल्पना बहुत प्रगाढ़ नहीं होती। और वह जो हिमालय की गुफा में बैठा है, उसे तो कुछ और काम-धाम नहीं, सारी ऊर्जा उपलब्ध है, करे तो क्या करे! तो मृत्यु के बाद भी जीवन की कल्पना करता है। स्वर्गों के स्वप्न देखता है। स्वर्ग में भोग की कामनाएं करता है। स्वर्ग में शराब के चश्मे बहाता है। स्वर्ग में अप्सराओं को अपने चारों तरफ नचाता है।
यह तुमने एक अजीब बात देखी? कि चूंकि सारे शास्त्र पुरुषों ने लिखे--
और ये सारे भगोड़े पुरुष थे। पुरुष ऐसा लगता है ऊपर-ऊपर से ही बहादुर है, भीतर-भीतर बहुत कायर। भीतर-भीतर बहुत पोला। बाहर-बाहर बड़ी अकड़। चूंकि यह सारे स्वर्गों की योजनाएं और कल्पनाएं पुरुषों ने कीं, इसमें उन्होंने पुरुषों के भोग का तो इंतजाम किया है, लेकिन स्त्रियों के भोग का कोई इंतजाम नहीं किया है। सुंदर लड़कियां होंगी, बड़ी खूबसूरत अप्सराएं होंगी। मगर कुछ इंतजाम स्त्रियों के लिए भी तो करो! सुंदर युवकों का कुछ इंतजाम करो! जरूर कुछ धर्मों ने सुंदर युवकों का भी इंतजाम किया है, लेकिन वह भी स्त्रियों के लिए नहीं, वह भी पुरुषों के लिए। जिन देशों में समलैंगिकता की बीमारी प्रचलित रही है, उन देशों में वे सुंदर लड़के आयोजित किए हैं उन्होंने स्वर्ग में, लेकिन वे भी पुरुषों के लिए।

सच तो यह है कि बहुत-से देशों में यह धारणा रही कि स्त्री में कोई आत्मा ही नहीं होती। जब आत्मा ही नहीं, तो कैसा स्वर्ग! पुरुष मरता है तो देह तो भस्मीभूत होती है और स्त्री मरती है तो सब भस्मीभूत हो जाता है। पुरुष मरता है तो सिर्फ पींजड़ा अर्थी पर चढ़ता है, पक्षी स्वर्ग की तरफ चल पड़ता है--जीवात्मा, परमहंस। और स्त्री मरती है तो सभी राख हो जाता है--कोई आत्मा तो है ही नहीं स्त्री में! इसलिए स्त्री के लिए स्वर्ग में कोई इंतजाम नहीं है। कोई व्यवस्था नहीं। न साड़ियों की दुकानें; न जौहरी, न जवाहरात; न सोना, न चांदी; कुछ भी नहीं। कारण साफ है। इंतजाम पुरुषों ने किया है, वे क्या फिक्र करें स्त्रियों की! अपने लिए इंतजाम कर लिया है उन्होंने। अपने लिए सब व्यवस्था कर ली है। स्त्री तो आत्मारहित है! इसलिए बहुत-से धर्मों में स्त्रियों को मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं, स्वर्ग में प्रवेश का तो क्या अधिकार होगा! मस्जिदों में प्रवेश का अधिकार नहीं। सिनागागों में प्रवेश का अधिकार नहीं। स्वर्ग की तो बात ही छोड़ दो! और मोक्ष का तो सवाल ही न उठाना! इस देश के साधु-संत भी समझाते रहे कि स्त्री नरक का द्वार है।
और स्त्री अगर नरक का द्वार है तो ये उर्वशी और मेनकाएं स्वर्ग कैसे पहुंच गईं! ऋषि-मुनियों के लिए कुछ तो इंतजाम करना होगा--पीछे के दरवाजे से सही। इनको घुसा दिया होगा पीछे के दरवाजे से। और ये जो स्वर्ग में अप्सराएं हैं, ये सदा युवा रहती हैं। ये कभी वृद्धा नहीं होतीं। ये कर्कशा नहीं होतीं। ये लड़ाई-झगड़ा नहीं करतीं। इनका तो कुल काम हैः नाचना, गाना, देवताओं को लुभाना, भरमाना।
ये सारी कल्पनाएं किसने की हैं? ये गुफाओं में बैठे हुए लोग, जो कहते हैं हम छोड़ कर आ गए संसार; हमने पत्नी छोड़ दी, तो अब उर्वशी की आकांक्षा कर रहे हैं। कहते हैं हमने दुकान छोड़ दी, धन छोड़ दिया, तो अब स्वर्गों में वृक्षों पर फूल लगते हैं वे हीरे-जवाहरातों के हैं। और पत्ते लगते हैं वे सोने-चांदी के हैं। कंकड़-पत्थर तो वहां होते ही नहीं। राहें भी पटी हैं तो बस मणि-मुक्ताओं से पटी हैं। यही लोग हैं जो दुकानें छोड़ कर भाग गए हैं। इनकी कल्पनाओं का विस्तार तो मौजूद है।
और अपने लिए स्वर्ग; और अपने से जो भिन्न हैं या अपने से जो विपरीत हैं, उनके लिए नर्क। जो अपनी मान कर चलें, उनके लिए स्वर्ग। जो अपने से विपरीत धारणाएं रखें, उनके लिए नर्क। और नर्क में भी इन्होंने फिर कष्ट का जितना इंतजाम ये लोग कर सकते थे किया है। हिटलरों को माफ किया जा सकता है, चंगेजखां और तैमूर लंग पीछे पड़ जाते हैं तुम्हारे ऋषि-मुनियों के सामने। नर्क की उन्होंने जो कल्पना की है, वह महा दारुण है। उस कल्पना को करने के लिए भी बड़े दुष्टचित्त लोग चाहिए। और ये थे अहिंसक, शाकाहारी, दुग्धाहारी! सिर्फ दूध ही दूध पीएं। लेकिन हिंसा कहीं गई नहीं है, भीतर मौजूद है। लोभ कहीं गया नहीं है, भीतर मौजूद है। वासना मरी नहीं है, उसने नए रूप ले लिए, नयाशृंगार कर लिया, और भी ताजी हो गई।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि संसार बाहर नहीं है। संसार भी भीतर है और संन्यास भी भीतर है। संसार भी तुम्हारे मन की एक अवस्था है और संन्यास भी। संसार है अतीत और भविष्य में डोलना। और संन्यास है वर्तमान में थिर हो जाना।
पलटू यही कह रहे हैंः "लगन महूरत झूठ सब।"
ये तो सांसारिक चित्त की बातें हैं कि कल का इंतजाम कर लूं। यह जो ज्योतिषियों के पास जाता है हाथ दिखाने, हस्तरेखाएं पढ़वाने, भाग्य को, विधि को समझने, जन्म-कुंडली दिखाने, यह कौन है? यह कोई धार्मिक व्यक्ति है! यह अधार्मिक व्यक्ति है। भविष्य की इतनी चिंता, कल के लिए इतना आयोजन, स्वभावतः सिर्फ सांसारिक मन की ही पराकाष्ठा हो सकती है। और इसलिए अकारण नहीं है कि सब ज्योतिषियों का एक ही नारा हैः दिल्ली चलो। क्योंकि सब नालायक दिल्ली में इकट्ठे हो गए हैं। संसार के जितने भी महत्वाकांक्षी, पदाकांक्षी, धनाकांक्षी, उनकी जमात राजधानियों में बैठी है। तो ज्योतिषी बेचारे यहां-वहां क्या करें? उनका भी काम वहीं है।
सब राजनेताओं के ज्योतिषी हैं। चलते भी हैं तो फूंक-फूंक कर चलते हैं। कुछ भी काम करते हैं तो ज्योतिषी से पूछ कर करते हैं। चुनाव लड़ते हैं,

नाम दर्ज करते हैं चुनाव के लिए, तो ज्योतिषी इंतजाम करते हैं, चांद-तारों का हिसाब लगाया जाता है। कौन गधा दिल्ली में जीतता है, इसके लिए चांद-तारों को कोई चिंता पड़ी है! दिल्ली में न मालूम कितने गधे आते रहे, जाते रहे। दिल्ली बहुत गधों को देख चुकी। दिल्ली तो मरघट है--गधों का मरघट। लेकिन ज्योतिषी के लिए वहां धंधा है।
ये ज्योतिषी धर्म-स्थानों पर भी अड्डा जमाए बैठे हैं। यह बड़ी हैरानी
की बात। दिल्ली में तो समझ में आता है, मुझे कुछ एतराज नहीं, दिल्ली में होंगे ही, होना ही चाहिए, तर्कशुद्ध बात मालूम होती है। दिल्ली में न होंगे तो कहां होंगे। मगर काशी में ये क्या कर रहे हैं! काशी में भी ज्योतिषी इकट्ठे हैं। क्योंकि वहां भी संसारी ही जा रहे हैं। हां, उनका संसार जरा तुम्हारे संसार से भिन्न है, वे जरा ज्यादा लोभी हैं। तुम क्षणभंगुर से राजी हो, वे शाश्वत धन चाहते हैं। तुम थोड़े कम संसारी हो, वे थोड़े ज्यादा संसारी हैं।
तुम्हारे ऋषि-मुनि समझाते हैं तुम्हें कि क्या क्षणभंगुर में पड़े हो, अरे, उसको खोजो जो सदा तुम्हारा रहेगा! यह तुम्हारे लोभ को उकसाया जा रहा है। तुमसे कहते हैं कि क्षणभंगुर में समय मत गंवाओ, नहीं तो नर्क में सड़ोगे। यह तुम्हारे भय को प्रज्वलित किया जा रहा है। तुम्हारा तथाकथित धर्म भय और लोभ का ही जोड़ है। और भय और लोभ से धर्म का क्या संबंध! धार्मिक चित्त को तो आने वाले क्षण की भी कोई चिंता नहीं है। यह क्षण काफी है। जीसस ने कहा है अपने शिष्यों से--एक खेत के पास से गुजरते थे, खेत में जंगली लिली के सफेद फूल खिले थे, और जीसस ने अचानक कहा ठहर कर कि देखो, देखो लिली के इन फूलों को। इनके सौंदर्य का राज जानते हो? इनकी सुगंध का रहस्य पहचानते हो? और मैं तुमसे कहता हूं कि सम्राट सुलेमान भी अपनी बहुमूल्य वेशभूषा में, हीरे-जवाहरातों से लदा हुआ इतना सुंदर न था जितने ये लिली के सीधे-सादे फूल। इनके सौंदर्य की महिमा अद्वितीय है, अतुलनीय है। क्या है राज इनके सौंदर्य का कि सुलेमान को हरा दें?
एक क्षण सन्नाटा रहा। और फिर जीसस ने ही उत्तर दिया और कहा, इनका राज बहुत छोटा है। सोचोगे, चूक जाओगे। सोचो मत। इनका राज बहुत सीधा-सादा है। ये अभी और यहीं जीते हैं। कल की इन्हें कोई चिंता नहीं। सुलेमान कल के लिए चिंतित था। इसलिए हीरे-जवाहरातों से जरूर लदा था, सुंदर वस्त्र पहने हुए था, लेकिन मन में झंझावात थे, आंधियां थीं, चिंताएं थीं, तूफान ही तूफान थे। बीत गए कल की धूल अभी भी उड़ रही थी। और अभी जो दिन आया नहीं, उसकी चिंताओं ने आकर बसेरा कर लिया था।
दिन तो आएगा कि नहीं आएगा, पता नहीं, कल जरूरी तो नहीं है कि आए ही। एक दिन तो ऐसा होगा कि कल नहीं होगा। एक दिन तो तुम सुबह उठोगे नहीं। कल अनिश्चित है। और सच तो यह है, कल कभी आता ही नहीं। जब भी आता है, आज आता है। इसलिए पलटू ठीक कहते हैंः "लगन महूरत झूठ सब।"
इस बकवास में न पड़ो। अतीत और भविष्य में न उलझो। ज्योतिषियों के जाल में न पड़ो। इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं।
"और बिगाड़ैं काम।"
इन्हीं नासमझों ने तो काम बिगाड़ा है। ये ही तो अड्डा जमा कर बैठ गए हैं। ये ही ठेकेदार हो गए हैं। मंदिरों पर कब्जा, तीर्थों पर कब्जा, हर जगह यही बैठे हैं। हर जगह यही साजिश। सदियों से आदमी का शोषण चल रहा है।
"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी... "
पलटू कहते हैं मुझसे पूछो तो कहूंगा, वह घड़ी शुभ, वह दिन शुभ--
"याद पड़ै जब नाम।"
जब प्रभु की स्मृति आ जाए। याद पड़ै जब नाम! जब उसकी याद से दिल नाच उठे, डोल उठे। जैसे हवा का झोंका आए; या बेवजह मरीज को करार आ जाए। जैसे अचानक वसंत आ जाए, फूल खिल जाएं। ऐसे जिस घड़ी तुम्हारी चेतना में स्वरूप का स्मरण आता है, अपने भीतर छिपे हुए, अपने भीतर विराजे हुए प्रभु की स्मृति उठती है, सुरति उठती है, ध्यान का जिस क्षण जन्म होता है!
"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।"

ध्यान की वह शुभ घड़ी, सुरति का वह अपूर्व अवसर, वही सब कुछ है। वही लगन, वही महूरत। लेकिन वह परम अवसर केवल वर्तमान में घटित होता है। न बीते कल में, न आने वाले कल में। अभी हो सकता है। अभी या कभी नहीं।

कुछ इस अदा से...
कुछ इस अदा से आज वो पहलूनशीं रहे
जब तक हमारे पास रहे, हम नहीं रहे
कुछ इस अदा से आज वो...

या रब किसी के राजे-मुहब्बत की खैर हो
दस्ते-जुनूं रहे न रहे, आस्तीं रहे जब तक हमारे पास रहे, हम नहीं रहे
कुछ इस अदा से आज वो...

मुझको नहीं कुबूल दो आलम की वुसअतें
किस्मत में कूए-यार की दो गज जमीं रहे
जब तक हमारे पास रहे, हम नहीं रहे
कुछ इस अदा से आज वो पहलूनशीं रहे

"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।"
क्यों उस घड़ी को शुभ कहा? क्यों उस दिन को शुभ कहा? जब प्रभु का स्मरण
आ जाता है, तो उस क्षण में अपना स्मरण खो जाता है।
कबीर ने कहा हैः प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाएं।
उस प्यारे की गली बहुत संकरी है। प्रेम की गली बहुत संकरी है। इतनी संकरी कि उसमें दो न समा सकेंगे। वहां अगर मैं को लेकर गए तो मैं ही रह जाएगा, तू नहीं। और अगर तू को पुकारा, तो मैं को मिट जाना होगा; मैं को पीछे छोड़ आना होगा।
वर्तमान के क्षण में ज्यादा जगह नहीं है। बड़ी संकरी गली है। संकरी से संकरी गली है। इससे और ज्यादा संकरा कुछ भी नहीं हो सकता।
जीसस का भी वचन ठीक इस जैसा हैः उस प्रभु का रास्ता यूं तो बहुत सीधा है, मगर याद रहे--बहुत संकरा भी।
सीधा और संकरा। सीधा तो ऐसे जैसे तीर जाता है और बेध देता है अपने लक्ष्य को, इतना सीधा। लेकिन संकरा बहुत। एक छोटे-से विचार को भी लेकर जाना चाहोगे अपने साथ तो न जा सकोगे। उतना विचार ही बाधा बन जाएगा। सोचो-- और तुम पाओगे तत्क्षण कि जैसे ही तुमने सोचा, वर्तमान से चूक गए।
झेन फकीर रिंझाई ने जब अपने गुरु को जाकर पहली दफा प्रणाम किया और पूछा कि मैं कैसे पाऊं निर्वाण? कैसे मिलेगा बुद्धत्व?
तो गुरु ने कहाः बैठ, सोच मत, और सब मिला ही हुआ है!
मगर इतना आसान तो नहीं है सोचना छोड़ देना। रिंझाई बैठा और सोचने लगा
कि गुरु का मतलब क्या है? कि बैठ, सोच मत, सब मिला ही हुआ है! गुरु हंसने लगा और उसने कहा, तूने सोचना शुरू कर दिया। सोचा कि चूका। अरे, सोच मत!
जिस क्षण तुम्हारे भीतर विचार की प्रक्रिया बंद हो जाती है, तभी तुम
उस संकरी गली में प्रवेश कर सकते हो। विचार तो हटा देगा, च्युत कर देगा। यहां-वहां ले जाएगा। कहीं ले जाएगा। कहीं न कहीं ले जाएगा। वहां न रहने देगा जहां हो।
मुझको नहीं कुबूल दो आलम की वुसअतें
ये दो दुनियाओं का सारा साम्राज्य भी मिलता हो, यह सारी विशालता भी मिलती हो--इस दुनिया की और उस दुनिया की भी--तो भी प्रेमी को, भक्त को, खोजी को स्वीकार नहीं होता।
मुझको नहीं कुबूल दो आलम की वुसअतें
किस्मत में कूए-यार की दो गज जमीं रहे
बस, उस प्यारे का रास्ता, उसके रास्ते पर दो गज जमीं मिल जाए, बहुत। दो आलम की वुसअतों का क्या करेंगे!
किस्मत में कूए-यार की दो गज जमीं रहे

उस प्यारे की गली में बस जरा-सी जगह मिल जाए, दो गज जमीं मिल जाए।
जब तक हमारे पास रहे, हम नहीं रहे
कुछ इस अदा से आज वो पहलूनशीं रहे
जब तक हमारे पास रहे, हम नहीं रहे
जब परमात्मा तुम्हारे भीतर प्रकट होता है, तुम मिट जाते हो। व्यक्ति
का और परमात्मा का मिलन कभी नहीं होता। जब तक व्यक्ति होता है तब तक परमात्मा नहीं। जब परमात्मा होता है तो व्यक्ति नहीं। झुकने की कला सीखनी होती है। मिटने की कला सीखनी होती है। उस समर्पण को ही मैं संन्यास कहता हूं।
या रब किसी के राजे-मुहब्बत की खैर हो
वही है प्रेम। वही है राज मुहब्बत का।
या रब किसी के राजे-मुहब्बत की खैर हो
दस्ते-जुनूं रहे न रहे, आस्तीं रहे
बस, झुकने के लिए कोई एक स्थान मिल जाए। आस्तीं रहे। कोई चौखट मिल जाए जहां सिर को रख दूं। इतना भर हो जाए। और यही राज है मुहब्बत का।
या रब किसी के राजे-मुहब्बत की खैर हो
दस्ते-जुनूं रहे न रहे, आस्तीं रहे
जब तक हमारे पास रहे, हम नहीं रहे
कुछ इस अदा से आज वो...
कबीर ने कहा हैः जब तक मैं था, वह नहीं।
हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराइ।
मगर हेरते-हेरते, खोजते-खोजते वह शुभ घड़ी भी आ गई--"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी"--कि कबिरा रहा हेराइ।
हेरत हेरत हे सखी कबिरा रहा हेराइ।
और बस, फिर इस जगत का सबसे बड़ा अनुभव प्रकट होता हैः
बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाइ।
नहीं-नहीं--कबीर ने फिर बाद में बदल दिया और कहाः
समुंद समाना बुंद में सो कत हेरी जाइ।
पहले तो कहा था--बुंद समानी समुंद में। पहला वही अनुभव होता है। क्योंकि पहले तो मैं खोता है और तू प्रकट होता है। तो स्वभावतः बूंद खो जाती है और समुद्र प्रकट होता है। तो बुंद समानी समुंद में। मगर पीछे लौट कर पता चलता है कि बात कुछ और थी--समुंद समाना बुंद में--कि समुद्र ही बूंद में आकर उतर गया है। जिस दिन तुम शून्य होते हो, मौन होते हो, निर्विचार होते हो, निर्विकल्प होते हो; जिस दिन अ-मनी दशा होती है; जिस दिन न अतीत न भविष्य, बस वर्तमान का यह संकरा-सा रास्ता रह जाता है, यह कूए-यार, यह प्यारे की संकरी गली, यह सीधा और साफ रास्ता, बस, उस घड़ी समुद्र बूंद में उतर आता है। चमत्कारों का चमत्कार हो जाता है।
क्या इसे पूछने ज्योतिषी के पास जाओगे? क्या कोई ज्योतिषी बता सकेगा
कि कब आएगा वह लगन का क्षण? किस मुहूर्त में मैं प्रभु का स्मरण कर पाऊंगा? नहीं, उससे तो और काम बिगड़ जाएगा। क्योंकि ज्योतिषी तो हमेशा कल की बताएगा, परसों की बताएगा, और आज से चुका देगा।
किसी प्रेमी से पूछो! किसी बुद्ध से पूछो! किसी परवाने से पूछो! देखा
है किसी परवाने को नाचते हुए शमा के चारों तरफ? रक्स देखा है कभी परवाने का? वही भक्त की दशा है। भक्त यूं है जैसे परवाना। चला है मरने, चला है मिटने, चला है अपने को खोने। और भगवान जैसे शमा, ज्योति। नाचता है परवाना मस्ती में कि आ गई वह शुभ घड़ी, वह शुभ दिन, मिटने का मुहूरत आ गया। नाचते- नाचते पास आता चला जाता है, पास आता चला जाता है। जल जाते हैं पंख, जल जाता है स्वयं, हो जाता है राख। मगर यही ढंग है उसे पाने का। मिट जाना ही ढंग है।

वादा कर लेते हैं और साफ मुकर जाते हैं
ये हमीं हैं जो फकत बात पै मर जाते हैं
ले चला दिल हमें फिर कूचाए-जानां की तरफ
लाख चाहा था कि न जाएंगे, मगर जाते हैं
कोई इतना भी किसी से न खफा हो या रब

पास आते हैं तो कतरा के निकल जाते हैं हमको तूफानों से टकराना भी आता है "श.फक" और होते हैं जो अंजाम से डर जाते हैं वादा कर लेते हैं और साफ मुकर जाते हैं ये हमीं हैं जो फकत बात पै मर जाते हैं ले चला दिल हमें फिर कूचाए-जानां की तरफ लाख चाहा था कि न जाएंगे, मगर जाते हैं कोई इतना भी किसी से न खफा हो या रब
पास आते हैं तो कतरा के निकल जाते हैं
हमको तूफानों से टकराना भी आता है "श.फक"
और होते हैं जो अंजाम से डर जाते हैं
वादा कर लेते हैं और साफ मुकर जाते हैं
"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।"
मगर वह नाम याद तभी पड़ता है जब इतनी तैयारी हो--मिट जाने की, समर्पित
हो जाने की, समाप्त हो जाने की। कूचाए-जानां की तरफ आंख भी उठाना खतरे से खाली नहीं। उस परम प्रेमी की तरफ एक कदम भी उठाना अपनी मौत को अपने हाथ से बुलाना है।
ले चला दिल हमें फिर कूचाए-जानां की तरफ
मगर अगर दिल की सुनो तो आज ले चले, अभी ले चले, इसी क्षण ले चले। मगर दिल की सुनता कौन है! लोग तो खोपड़ी में जीते हैं। लोग तो सिर की ही सुनते हैं। और सिर में कचरा भरा है। सिर में तुम्हारे है ही क्या? शास्त्र होंगे, सिद्धांत होंगे, शब्द होंगे, हिंदू धर्म होगा, इस्लाम धर्म होगा, जैन धर्म होगा, ईसाइयत होगी। लेकिन इससे काम न चलेगा। ख्याल रहे, नानक सिक्ख नहीं थे और मोहम्मद मुसलमान नहीं थे और ईसा को ईसाइयत का कोई पता न था; और बुद्ध को बौद्ध होने की खबर भी न थी।
ले चला दिल हमें फिर कूचाए-जानां की तरफ
लाख चाहा था कि न जाएंगे, मगर जाते हैं
सिर तो कहेगा, मत जाओ। सिर तो कहेगा, किस खतरे में पड़ते हो। अरे, क्या आत्मघात करना है! क्या अपने को मिटाना है, बरबाद करना है! कहां जाते हो? धन की तरफ चलो, पद की तरफ चलो। यह है रास्ता दिल्ली का। दिल्ली चलो! दिल्ली दूर नहीं है! और तुम कहां चले?
दिल कुछ और कहता, मन कुछ और कहता। मन तो भरमाता है। मन संसार है। सारा संसार तुम्हारे सिर में है। और सारा परमात्मा तुम्हारे हृदय में है। क्योंकि जहां प्रेम है वहां परमात्मा है।
ले चला दिल हमें फिर कूचाए-जानां की तरफ
लाख चाहा था कि न जाएंगे, मगर जाते हैं
और जिसने दिल की सुनी, वह लाख चाहे कि न जाएं मगर जाना ही होता है। और दिल को तूफानों से टकराना आता है। मन तो कायर है। मन तो हिसाब-किताब बिठाता है। कौड़ी-कौड़ी का हिसाब-किताब बिठाता है। मन तो दुकानदार है। मन तो मारवाड़ी है। मन तो कहता है, दो पैसे लगाना तो चार पैसे बचने चाहिए। मन तो कहता है कि देना कम, लेना ज्यादा। तभी तो लाभ होगा।
मन गणित है। मन चालबाजी है। हृदय तो भोला-भाला है। हृदय तो देना जानता है, लुटाना जानता है। हृदय सम्राट है, मन भिखारी है।
हमको तूफानों से टकराना भी आता है "श.फक"
और होते हैं जो अंजाम से डर जाते हैं
और मन तो अंजाम की बात कहेगा। मन तो कहेगा, अंजाम सोच लो। परिणाम क्या होंगे? जाते तो हो, लौट पाओगे? जाते तो हो जरूर, बच पाओगे? जाते तो हो इस तूफान में, लेकिन कश्ती यह टूटी-फूटी, यह जराजीर्ण, पहुंच पाओगे दूसरे किनारे तक? छोड़ते तो हो यह किनारा सुरक्षित, और किसी अज्ञात की यात्रा पर निकलते हो! होश गंवा रहे हो? जरा समझो, सनको मत! सनकी न बनो! पागल न बनो!
और तुम्हारे सब समझदार तुम्हें यही समझाएंगे। तुम्हारे सब सयाने तुमको यही बताएंगे कि किनारे को जोर से पकड़ो, तूफान भारी है। यह तो तुम सौभाग्यशाली हो कि कोई दीवाना तुम्हें मिल जाए और कहे कि यह मौका छोड़ने जैसा नहीं; तूफान भारी है, यही क्षण है। यही है शुभ दिन, शुभ घड़ी, छोड़ दो

नाव। और पतवार भी मत ले जाओ। क्योंकि यह तूफान पतवारों से पार नहीं होता। यह अपने सहारे से पार नहीं होता। यह तो उसकी हवाएं ले जाएंगी, पाल खोलो! पतवारें फेंक दो!
हमको तूफानों से टकराना भी आता है "श.फक"
और होते हैं जो अंजाम से डर जाते हैं
ऐसी तैयारी हो, तो ही दिव्या, इस सूत्र को तू समझ पाएगी। और इस सूत्र में सारा राज है संन्यास का। इस सूत्र में सब शास्त्र आ गए। कृष्ण और बुद्ध और महावीर और जरथुस्त्र और लाओत्सू और कबीर और नानक और फरीद--सब आ गए।
हाथ की रेखाओं में मत उलझे रहो, हाथ की रेखाएं बस रेखाएं हैं। हृदय में तलाशो; हृदय में खोदो। और उसके खोदने की शुभ घड़ी अभी है।
लेकिन लोग बड़े अजीब हैं, टाले जाते हैं, टाले जाते हैं। मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि संन्यास लेना है, जरूर लेना है। तो मैं कहता हूं, लेना है? तो ले ही लो! कहते हैं, लेंगे, लेकिन जरा व्यवस्था जमा लें। इतनी जल्दी भी क्या है! संन्यास तो शास्त्रों में कहा है कि पचहत्तर साल के बाद लेना चाहिए।
शास्त्र लिखे होंगे सयानों ने। सयाने ही लिखते हैं। चालबाज, होशियार, काइयां; जमाने भर का गणित बिठाने वाले लोग। पचहत्तर साल के बाद ले लेना! उनकी हालत तो यूं है जैसे रामकृष्ण के पास एक आदमी आता था। हमेशा हर धार्मिक उत्सव मनाता था। और बड़े जोर-शोर से मनाता था। और जब धार्मिक उत्सव मनाता था तो बकरे कटते, मुर्गे कटते, बलिदान चढ़ता--धनी था। फिर अचानक उसने उत्सव मनाने बंद कर दिए। न बकरे कटते, न मुर्गे कटते, न लोग इकट्ठे होते, न जलसा होता। रामकृष्ण ने कहा, क्या हुआ तुझे? पहले तू बड़े जलसे मनाता था, बड़े उत्सव होते थे; अब क्या हो गया? उसने कहा, क्या करें, अब दांत ही न रहे। तब असलियत पता चली कि वह बकरे का कटना और वह मुर्गों का कटना, वह कोई धार्मिक उत्सव नहीं था, वह तो दांतों की वजह से चल रहा था। अब दांत ही न रहे, सो वह तपस्वी हो गया। अब उसने अहिंसा धारण कर ली। अब उसने हिंसा का त्याग कर दिया।
पचहत्तर साल के हो जाओगे तब तुम संन्यास लोगे? अरे कब्र में होओगे तब
तक तुम! संसार ही तुम्हें छोड़ चुका होगा, फिर तुम क्या छोड़ोगे! धक्के देकर तुम निकाले जाओगे तब तुम अपने मन को समझा लेना कि अरे, छोड़ते हैं! धक्के देकर निकाले जा रहे हो लेकिन कहना कि हम छोड़ते हैं।
संन्यास को लोग टालते हैं, स्थगित करते हैं। बेईमानी के सिवाय और कुछ
भी नहीं। मगर बेईमानी को हम समझदारी कहते हैं। इस दुनिया में बेईमान समझदार हैं, ईमानदार नासमझ।
एक क्षण भी मत टालो। क्योंकि एक क्षण का भी कोई भरोसा नहीं है। और यह
मत कहो कि ठीक घड़ी आएगी, ठीक क्षण आएगा, तब लेंगे। पचहत्तर साल के तो हो जाएं पहले, फिर ले लेंगे। अब भारत की तो औसत ही उम्र छत्तीस साल है। तो इसमें तो औसत अर्थों में तो कोई संन्यासी हो ही नहीं सकता।
और जिन ऋषि-मुनियों ने लिखा है कि पचहत्तर साल के होकर संन्यास ले लेना, उस समय भारत की उम्र आज से भी कम थी। इस भ्रांति में मत रहना कि उस समय लोग काफी लंबे देर तक जिंदा रहते थे। क्योंकि जितने भी अस्थि-पंजर पाए गए हैं अब तक, पांच हजार साल पुराने, उनमें से किसी की भी उम्र चालीस साल से ज्यादा नहीं सिद्ध हुई।
और यह बात इससे भी सिद्ध होती है कि उपनिषद के ऋषि आशीर्वाद देते थे
कि सौ वर्ष जीओ। अगर यह बात सच थी कि लोग सौ वर्ष जीते ही थे तो किसी को यह आशीर्वाद देना कि सौ वर्ष जीओ, आशीर्वाद नहीं मालूम होता। अरे, सौ वर्ष जीने का आशीर्वाद तो तभी आशीर्वाद हो सकता है जब लोग मुश्किल से पचास साल जीते हों। जब लोग सौ साल जीते ही हों तब किसी को आशीर्वाद देना कि सौ साल जीओ, निपट गंवारी होगी। और हिसाब यह था कि पचास साल में वानप्रस्थ। क्या हिसाब था! पच्चीस साल तक अध्ययन, तो ब्रह्मचर्य। फिर पच्चीस साल गृहस्थ; संसार का अनुभव। फिर पच्चीस साल वानप्रस्थ।
वानप्रस्थ शब्द बड़ा अदभुत है। जंगल की तरफ मुंह। जाना नहीं, सिर्फ मुंह रखना। मतलब ख्याल रहे कि जाना है। हिसाब लगाना कि अब गए, तब गए! कि अब

जाते हैं। शुभ घड़ी आ जाए, शुभ मुहूर्त आ जाए, तो अब जाते ही हैं! अब बच्चे बड़े भी हो गए, अब शादी-विवाह भी हो गया, अब बच्चों के बच्चे भी होने लगे, बस अब जाते ही हैं, अब जाते ही हैं! बिस्तर वगैरह बांध कर रखना, सूटकेस वगैरह तैयार कर लेना--जंगल की यात्रा पर जा रहे हो, पाथेय सजा लेना! पच्चीस साल वानप्रस्थ में गुजारना। अर्थात जंगल की तरफ मुंह रखना। रहना यहीं! करना वही सब जो करते रहे! और जो-जो चालबाजियां तुमने जिंदगी में सीखीं वह अपने बच्चों को सिखा देना जाने से पहले, नहीं तो ये क्या करेंगे बेचारे!
और पचहत्तर साल में फिर संन्यस्त! जब कि ये बच्चे तुम्हें धक्के देकर
ही निकालने लगें; जब कहने लगें कि पिता जी, अब क्षमा करो, कि अब बहुत हो गया, अब खोपड़ी और न खाओ; जब दुतकारने लगें; जब घर में कोई पूछताछ ही न रह जाए; जब कोई प्रतिष्ठा ही न रह जाए, तब फिर जंगल की तरफ चले जाना; फिर संन्यासी हो जाना।
यह तो यूं हुआ जैसा हम मरे हुए आदमी के साथ करते हैं। जिंदगी भर जिसने राम का नाम नहीं लिया, उसकी अरथी उठा कर कहते हैंः रामनाम सत्य है! वे बेचारे असत्य हो गए, अब तुम रामनाम सत्य कर रहे हो! अरे, रामनाम ही सत्य कहना था तो जिंदा आदमी से कहना था! मगर जिंदा से कहो तो लोग नाराज हो जाते हैं।
मैं छोटा विद्यार्थी था जब, तो स्कूल जाते वक्त बीच में एक मंदिर था,
और उसके जो पुजारी थे वे बड़े प्रसिद्ध थे, बंशीवाले उनका नाम था। और उनकी बड़ी ख्याति थी कि वे बड़े सज्जन, बड़े करुणावान, बड़े दानी, बड़े प्रेमी, बड़े भक्त! और जब प्रार्थना करते थे वे कृष्ण की तो आंखों से आंसू बह रहे! मगर मुझे देखते ही से वे एकदम डंडा उठा लेते थे। कि बस, बोलना मत, कहना मत! क्योंकि मैं जब भी वे मिलते, कहीं भी मुझे मिल जाते, मैं कहताः रामनाम सत्य है। इससे वे बहुत नाराज होते थे। कि तू है कैसा! तुझे कुछ पता है! कि जब कोई मर जाता है तब कहते हैं रामनाम सत्य है। मैं अभी जिंदा हूं!
वे पूजा कर रहे होते, बंशीवाले की पुकार लगा रहे होते कि मैं उनके मंदिर में पहुंच जाता। मुझे देख कर ही बंशीवाले को भूल जाते! कि तू बाहर निकल! देख, बोलना मत! वह बात मुंह से ही मत निकालना! वह बात ही गलत है! तुझे कुछ समझ ही नहीं है! जब देखो तब वही-वही कह देता है! मैं पूछताः क्या? वह कहते कि मैं नहीं कह सकता क्या।
जब उनको मैं बहुत सता चुका तो एक दिन आ गए वे, अपना डंडा लिए मेरे पीछे- पीछे मेरे घर पहुंच गए। मेरे पिता जी से बोले कि इसको रोको। यह गलत बातें कहता है। और मेरी पूजा में विघ्न-बाधा डालता है। यह राक्षस है! पता नहीं इसको कैसे पता चल जाता है कि मैं पूजा कर रहा हूं, बस वहीं पहुंच जाता है! अब मैं पूजा करूं कि इसकी फिकर करूं? और सब गड़बड़ हो जाता है। ऐसी बातें कह देता है!
तो मैंने उनसे कहा कि आप कम से कम बातें तो बताइए। कि तू चुप रह, तू बीच में मत बोल! तो मेरे पिताजी ने भी कहा कि यह बात तो तर्कसंगत है, कि आखिर उसने कहा क्या यह तो आप कहिए। कोई गाली दी, कोई बुरे वचन आपसे बोला, कोई आपका अपमान किया? अरे, कहा, कुछ भी गाली नहीं दी, कोई बुरा वचन नहीं कहा, मगर ऐसी बात कहता है जो बुरी से बुरी है।
तो मैंने कहा कि आप कम से कम उस बात को कहो। चलो, मेरे पिताजी के कान में कह दो--अगर मेरे सामने कहने में संकोच लगता है। और जब मैं तुमसे कहता हूं और संकोच नहीं खाता, तो तुम क्या संकोच खा रहे हो? कह दो, जी! वे मुझे डांटें कि तू चुप रह! दो बड़े बुजुर्ग बातें कर रहे हैं तो तुझे बीच में बोलने की जरूरत नहीं। मैंने कहा, बात मेरे संबंध में हो रही है! और निर्णय मेरे संबंध में होना है। इतना मुझे हक होना चाहिए। और अगर तुम न कह सकते होओ तो मैं कह दूं। कि नहीं, बिल्कुल मुंह से मत बोलना! वह बात कहने की है ही नहीं!
जब वे चले गए तब मेरे पिताजी ने मुझसे पूछा कि बात क्या है आखिर? ये आदमी तो सीधे-सादे हैं, भोले-भाले हैं, और इनकी तो गांव में बड़ी प्रतिष्ठा है; और ये एकदम भन्नाते हैं, तुझे देखते ही से एकदम इनको रोष चढ़ जाता है, डंडा हाथ में पकड़ लेते हैं, कंपने लगते हैं; बात क्या है? मैंने कहा, कुछ बात नहीं। जो आमतौर से लोग कहते हैं--रामनाम सत्य है। वही मैं इनसे कहता

हूं। मेरा कहना यह है कि मर कर किसी से कहने में क्या सार है? अब वह बेचारा सुन ही नहीं रहा--वह तो कभी के मर चुके, वह तो ठंडे हो चुके, अब उनसे तुम कह रहे होः रामनाम सत्य है! अरे, जिंदा को याद दिलाओ! मैं इनको याद दिला रहा हूं, बूढ़े हो गए, अब याद आ जाए तो अच्छा है।
वह बोले कि यह बात तो ठीक नहीं कहना! यह जिंदा आदमी से कहनी ही नहीं चाहिए। मैंने कहा, यह भी अजीब हिसाब है, मुर्दे से कहो कि रामनाम सत्य है और जिंदे से कहो मत! सोचने लगे वे। उन्होंने कहा कि बात तेरी ठीक है, तेरी बातें अकसर ठीक होती हैं, मगर उनमें कुछ न कुछ गड़बड़ जरूर होती है। तू भी कहां से खोज लाता है! यह मुझे भी हो गई जिंदगी सुनते--अरथियां निकलती हैं, रामनाम सत्य मैंने भी कई का किया है, मगर मुझे कभी यह ख्याल न आया कि यह जिंदा आदमी को कहना चाहिए।
मैंने कहा, जिंदा ही को कहना चाहिए। अब जैसे ये बंशीवाले हैं! अगर मेरा बस चले तो इनकी अरथी बांध कर, इनकी खटिया खड़ी करके और बाजार में घुमाऊं और रामनाम सत्य का ढिंढोरा पिटवाऊं। तो ये बेचारे सुनें, इनको कुछ अकल आए। नहीं तो बांसुरी वाले की बस पूजा ही करते रहे! और क्या यह पूजा सच हो सकती है जिसमें रामनाम सत्य है... इसमें कोई खराब बात तो है ही नहीं। राम का नाम सत्य है, इसमें कौन-सी खराब बात है? इसमें क्या इनको अड़चन है? मगर मौत की घबड़ाहट!
लोग मरने के बाद सुनना चाहते हैं रामनाम सत्य है, पहले मत कहना। पहले
तो उनको उलझे रहने दो उनके मन के जालों में। संन्यास को टाले जाते हैं, धर्म को टाले जाते हैं, सत्य को टाले जाते हैं, राम को टाले जाते हैं--सरकाए जाते हैंः आगे, और आगे, और आगे। सरकाते-सरकाते ही कब्र में गिर जाते हैं। एक पैर कब्र में पड़ जाता है तब भी अभी आशा संसार में ही लगी रहती है; अभी मन दौड़ता ही रहता है।
आनंद दिव्या! पलटू के इस प्यारे वचन को हृदय में खोद ले--
"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।"
जब राम याद आ जाए, तब वही घड़ी शुभ है, वही दिन शुभ है।
"लगन महूरत झूठ सब... "
मत पूछना लगन, मत पूछना महूरत।
"और बिगाड़ैं काम।।"

दूसरा प्रश्नः
ओशो, नारद परिव्राजकोपनिषद में संन्यासी के लिए यह कठोर वर्जना हैः
न संभाषेत्स्ति्रयं कांचित्यपूर्वदृष्टां न च स्मरेत। कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि।। एतच्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामाचरतो यतेः। चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात्प्रणश्यति।।
वह किसी स्त्री से बात न करे।... वह यानी संन्यासी।... संन्यासी किसी स्त्री से बात न करे। पूर्व परिचित स्त्री का स्मरण न करे। स्त्रियों के चित्रों को भी न देखे, तथा स्त्रियों से संबंधित चर्चा न सुने। क्योंकि स्त्री-संबंधी चर्चा, उनका स्मरण, चित्रावलोकन तथा संभाषण आदि से मन में विकार की उत्पत्ति होती है, और वह उसकी योग-भ्रष्टता का कारण होता है। आपके संन्यासी इस नियम का पालन उसके समग्र उल्लंघन में करते हैं और फिर भी संन्यासी हैं। क्यों?

श्यबक भावे, इसीलिए संन्यासी हैं। और यह जो नारद परिव्राजकोपनिषद में संन्यासी की लक्षणा है, यह संन्यासी की लक्षणा नहीं है। यह लक्षणा बिल्कुल गलत है। इसी गलती का तो हम परिणाम भोग रहे हैं सारी पृथ्वी पर। यह सड़ी-गली मनुष्यता इसी तरह के मूढ़तापूर्ण सिद्धांतों के कारण पैदा हुई है। सुबह ही सुबह आज मैंने जब तुम्हारा प्रश्न देखा तो अखबार उठा कर देखे। आज के अखबार तो आए नहीं थे, कल के अखबार थे। तो तीन खबरें थीं अखबारों में, वे तुम्हारे काम पड़ेंगी। और कहीं नारद जी मिल जाएं तो उनको भी बता देना।

पहली खबर थी अमरीका के एक ईसाई संप्रदाय के संबंध में, उसके प्रमुख की गिरफ्तारी की। यह संप्रदाय कठोर ब्रह्मचर्यवादी है। इस संप्रदाय की धारणा स्त्रियों के बिल्कुल विपरीत है। यह संप्रदाय विवाह को स्वीकार नहीं करता। यह संप्रदाय मानता है कि धार्मिक व्यक्ति को अविवाहित ही रहना चाहिए। इस संप्रदाय के लाखों अनुयायी हैं। इस संप्रदाय के प्रमुख की गिरफ्तारी कल हुई है। और गिरफ्तारी का कारण यह है कि उनका संबंध उनकी स्वयं की छः सेक्रेटरियों से था। और गिरफ्तारी के बाद जब उनको डांटा-डपटा गया तो उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि इन छः के अतिरिक्त तीन और महिलाओं के साथ भी उनके प्रेम-संबंध हैं।
यह प्रमुख की दशा है! बाकी की तुम समझ लेना!
दूसरी खबर थी कोरिया से। छियालीस बौद्ध भिक्षु अति कामनाग्रस्तता और कामविकारों के कारण ऐसे अपराध किए हैं जो अमानवीय हैं। उनकी गिरफ्तारी हुई है। बौद्ध भिक्षु! अपराध का कारण है काम-विकृति। छोटे बच्चों के साथ व्यभिचार किया है, छोटी बच्चियों के साथ व्यभिचार किया है। बलात्कार किया है। पुरुषों के साथ भी पुरुषों के संबंध थे। उन पर काम-विकृति के ही नहीं, वरन हिंसा, हत्या इत्यादि के भी जुर्म हैं। क्योंकि जब किसी छोटी बच्ची के साथ बलात्कार किया और फिर घबड़ाए कि अब यह बच्ची जाएगी और खबर कर देगी, तो उसको मार भी डाला। किसी स्त्री के साथ बलात्कार किया, फिर घबड़ाए, तो उसको रिश्वत दी, रुपए दिए। अब इन भिक्षुओं के पास रुपए कहां से आए? तो धन-संग्रह भी उन्होंने काफी कर रखा था।
नारद ने जो बात कही है, यह उस सबका परिणाम है।
और तीसरी खबर थी बगदाद के संबंध में।... बगदाद तो मुसलमानों का धर्मतीर्थ है।... बगदाद में एक विशेष स्त्री-बाजार है, जहां सुंदर स्त्रियां बिकती हैं--अभी भी, बीसवीं सदी में। जहां कोई भी पुरुष अगर पैसे चुका सकता है तो अपनी मनपसंद की स्त्री के साथ कुछ घंटों के लिए विवाह कर सकता है। क्योंकि इस्लाम धर्म वेश्याओं के विपरीत है। अब वेश्याओं से बचने के लिए कुछ इंतजाम तो करना ही होगा। तो यह तरकीब निकाली गई। कुछ घंटों के लिए विवाह। काजी आता है, बाकायदा निकाह करवाता है; और कुछ घंटों के बाद वही काजी आकर तलाक करवा देता है।
इस तरह बगदाद में वेश्यावृत्ति से पूरी तरह छुटकारा पा लिया गया है। बगदाद अकेला नगर है पूरी पृथ्वी पर जहां कोई वेश्यागिरी नहीं होती। काजी आ जाता है--धर्मगुरु--वह आकर निकाह करवा देता है। चार-छः घंटे के लिए। कैसा मजा है! और यह सब धर्म के नाम पर चलता है। और यह एक दिन की खबर है।
ये खबरें रोज होती हैं। यह तो संयोग की बात है कि मैंने अखबार उठा कर देखे कि तुम्हारे लिए कुछ सामग्री कल के अखबारों में है या नहीं? और यह सदियों से हो रहा है। जिम्मेवार कौन है?
यह नारद परिव्राजकोपनिषद में संन्यासी के लिए जो कठोर वर्जना है, वही जिम्मेवार है। यह वर्जना ही मूर्खतापूर्ण है। इस पृथ्वी पर आधी स्त्रियां हैं, आधे पुरुष हैं--सच तो यह है, स्त्रियां थोड़ी ज्यादा हैं, पुरुष थोड़े कम हैं। क्योंकि स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा मजबूत हैं। पुरुषों को यह भ्रांति है कि वे मजबूत हैं।
वे गलती में हैं। उनको विज्ञान का कुछ पता नहीं है। प्रकृति को ज्यादा पता है।
प्रकृति एक सौ पंद्रह लड़के पैदा करती है और सौ लड़कियां पैदा करती है। विवाह की उम्र आते-आते पंद्रह लड़के खतम हो जाते हैं, सौ ही बचते हैं। तो प्रकृति पहले से ही "स्पेयर" तैयार करती है। पंद्रह "स्पेयर"। क्योंकि इनका कोई भरोसा नहीं। ये कब टांय-टांय फिस्स हो जाएं, इनका कुछ पक्का नहीं। लड़की मजबूत काठी की होती है। ऐसे कोई टांय-टांय फिस्स होने वाली नहीं है। सौ लड़कियां और एक सौ पंद्रह लड़के, यह अनुपात है। और शादी की उम्र होते-होते बराबर हो जाते हैं।
फिर लड़कियां पांच साल ज्यादा जीती हैं। अगर पुरुष पचहत्तर साल जीएगा
तो लड़की अस्सी साल जीएगी। तो स्वभावतः पृथ्वी पर हमेशा ज्यादा स्त्रियां होंगी। क्योंकि कई पुरुषों को दफना चुकी होंगी। और पुरुष की मूर्खता और यह है कि वह शादी करते वक्त अपनी उम्र ज्यादा चाहता है लड़की से। लड़की की

उम्र अगर बीस तो लड़के की पच्चीस। इसका मतलब यह हुआ कि पांच साल का यह फर्क और पांच साल का प्रकृति का फर्क, दस साल का अंतर पड़ जाएगा आखिर में। यह भइया दस साल पहले रामनाम सत्य हो जाएगा इनका।
अगर थोड़ी समझदारी हो तो पांच साल बड़ी उम्र की लड़की से शादी करनी चाहिए। ताकि कम से कम दोनों का रामनाम सत्य करीब-करीब हो। जब भी दुनिया में थोड़ी वैज्ञानिकता होगी तो यही होगा। पच्चीस साल की लड़की, पच्चीस साल का लड़का नहीं होना चाहिए, बीस साल का लड़का। बराबर उम्र का भी नहीं, पांच साल कम। लेकिन पुरुष को इसमें बड़ी दिक्कत मालूम होती है। क्योंकि अपने से कमजोर, हर हालत में कमजोर स्त्री से विवाह करना चाहता है पुरुष, क्योंकि अकड़।
स्त्री पढ़ी-लिखी कम होनी चाहिए। इसलिए सदियों सेः वेद न पढ़े, उपनिषद न पढ़े। उसके लिए तो कचरा! --रामायण वगैरह पढ़ती रहे! ये बाबा तुलसीदास जो लिख गए हैं, उसको पढ़ती रहे। बाकी असली कोई चीजें न पढ़े। रामलीला देखती रहे। और देखती रहे स्त्री के साथ होता हुआ अत्याचार, कि जब मर्यादा पुरुषोत्तम तक यह व्यवहार कर रहे हैं सीता के साथ, तो उसके पतिदेव उसके साथ जो कर रहे हैं, वह ठीक ही है। स्त्री को चुपचाप स्वीकार करना चाहिए। गर्भवती स्त्री को घर से निकाल रहे हैं। तो अगर पतिदेव गर्भवती स्त्री को भी घर से निकाल दें, तो भी उसे स्वीकार करना चाहिए।
और मजा देखते हो, रावण के यहां से जब राम लेकर आए सीता को तो अग्नि- परीक्षा अकेली सीता को देनी पड़ी! और ये भइया! भइया ही थे! कम से कम इतना तो करते कि जब सात चक्कर लगाए थे और घनचक्कर बने थे, तब साथ-साथ चक्कर लगाए थे, कम से कम अग्नि-परीक्षा में साथ-साथ उतरे होते। यह भी कोई बात हुई! और सीता अगर इतने दिन अलग रही थी, तो ये भइया भी तो अलग रहे थे! और न मालूम किस-किस तरह के लोगों के साथ रहे थे--अंदरों-बंदरों के साथ, इनका क्या भरोसा! कौन-कौन से काम न करते रहे हों! कम से कम सीता तो एक भले आदमी के हाथ में थी, जिसने कोई दुर्व्यवहार नहीं किया।
रावण ने सीता के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया। रावण ने सीता के शरीर को भी स्पर्श नहीं किया। इससे ज्यादा दुर्व्यवहार तो राम और लक्ष्मण ने किया--शूर्पणखा की नाक काट ली। राम के सामने। और राम कुछ बोले नहीं; विरोध भी न किया। और शूर्पणखा ने ऐसा कौन-सा कसूर किया था! प्रणय-निवेदन किया था। प्रत्येक स्त्री को हक है। और प्रत्येक पुरुष को हक है। इनकार कर देते कि भई, मैं राजी नहीं, कि मेरा इरादा नहीं, कि मैं विवाहित हूं। नाक वगैरह काटने की क्या जरूरत आ गई थी! ये लक्ष्मण आदमी हैं? यह भली स्त्री प्रेम का निवेदन कर रही है, तो कह देते कि नहीं भई, मैं पहले ही से नियोजित हूं, पहले ही से फंस गया, अब क्या करूं? अब मुझे माफ करो, कहीं और खोजो! लक्ष्मण पर सीता को भी भरोसा नहीं था। क्योंकि जब राम स्वर्णमृग की तलाश में चले गए... क्या गजब के राम थे! अरे, कहीं सोने के हिरण होते हैं! किसी बुद्धू को भी भरोसा दिलाना मुश्किल है। स्वर्णमृग दिखाई पड़ गया और उसकी खोज में चले गए। और यह राम थे! और इनको तीनों काल का ज्ञान है! और यह मृग झूठा है, इतना ज्ञान नहीं! त्रिकालज्ञ हैं! सर्वांतर्यामी हैं! घट-घट का इनको पता है! इसी एक घट का पता नहीं है! चल पड़े! और लक्ष्मण को कह गए-- पहरा देना। और जब राम ही धोखा खा गए... !
और जब पुकार उठी जोर से कि मैं संकट में हूं, मुझे बचाओ, तो सीता बेचारी क्या करे? उसने लक्ष्मण को कहा कि जाओ, बचाओ! लक्ष्मण दुविधा में पड़ा। क्योंकि राम ने आज्ञा दी थी कि पहरा देना। और सीता कहती है--जाओ, बचाओ! उसकी झिझक देख कर सीता ने जो शब्द कहे हैं, वे सूचक हैं। सीता को जरूर शक रहा होगा इस आदमी पर।
और शक के कई कारण भी हैं। जब स्वयंवर हो रहा था तब भी सीता देख रही होगी कि रामचंद्र जी तो बैठे थे शांति से, मगर लक्ष्मण एकदम उठ-उठ खड़ा होता था! उसको बिठलाना पड़ता था; भइया, तू बैठ! जब बड़े भाई मौजूद हैं, तू चुपचाप रह! उसको ऋषि-मुनि समझाते तब वह थोड़ा बैठता, मगर फिर उठ कर खड़ा हो जाता। वह धनुष तोड़ने को एकदम आतुर हो रहा था। तब से ही सीता को शक रहा होगा कि यह आदमी कुछ गड़बड़ है।

फिर अपनी पत्नी को छोड़कर--इसको तो कोई वनवास दिया नहीं था--उर्मिला को छोड़ कर चुपचाप सीता मइया के पीछे चला आया, सीता को और भी शक हुआ होगा। कि चौदह साल जंगल में भटकना! कोई भाई वगैरह के पीछे भटकता है? ऐसा भाईचारा वगैरह कहीं होता है? यह आदमी कुछ गड़बड़ है! और चौदह साल से पीछे ही लगा हुआ है! रामचंद्र जी तो आगे-आगे, सीता मइया उनके पीछे, उनके पीछे लक्ष्मण जी! अब पता नहीं पीछे-पीछे क्या कहता था! क्या व्यवहार करता था! क्योंकि सीता ने जो वक्तव्य दिया उससे कुछ जाहिर होता है। सीता ने कहा कि मुझे मालूम है कि तेरी यही इच्छा है कि किसी तरह राम समाप्त हो जाएं तो तू मुझ पर कब्जा कर ले।
यही वक्तव्य बताता है कि सीता को इस आदमी पर शक निश्चित रहा, संदेह रहा। और इस बात के कहते ही से लक्ष्मण को एकदम चोट भी पड़ गई, इससे भी पता चलता है। चोट ही उस बात की पड़ती है जिसका भीतर डर हो। अभी जाने को राजी नहीं था, कि रामचंद्र जी आज्ञा दे गए हैं, मैं तो यहीं रहूंगा; भाई की आज्ञा है, नहीं छोड़ सकता। और जब सीता ने यह कहा कि मुझे पता है कि तू यहां क्यों है, भाई की आज्ञा वगैरह का कोई सवाल नहीं है, सवाल यह है कि किसी तरह राम खतम हो जाएं तो तू मुझ पर कब्जा कर ले। तेरी नजर खराब है, तेरी नीयत खराब है। बस, यह कहते ही से लक्ष्मण जी चल पड़े। एकदम क्रोध में आ गए। क्रोध ही तब आता है जब कोई घाव को छू देता है।
रावण ने तो कोई दुर्व्यवहार नहीं किया। और सीता की अग्नि-परीक्षा ली गई! रामलीला दिखाई जा रही है स्त्रियों को कि देखो, तुम्हारे पतिदेव ऐसी परीक्षा लेंगे। घबड़ाना मत, परीक्षा देना। देखो, सीता मइया आग में से निकलीं और बिल्कुल बच कर निकल आईं। ऐसे ही तुम भी आग में से निकलो। तुम भी बच कर निकल आओगी।
इस पागलपन में मत पड़ना। आग-माग में से कोई बच कर नहीं निकलता। न सीता मइया निकली हैं, न कोई और मइया निकल सकती हैं। आग को कुछ नहीं पड़ी है।
और इसके बावजूद भी, एक धुब्बड़ ने कह दिया कि मुझे शक है--उसे अपनी पत्नी पर शक था--कि तू रात भर कहां रही? मैं कोई राम नहीं हूं कि वर्षों रावण के घर रह आई सीता और फिर भी रख लें। बस, इतनी-सी बात और अग्नि-परीक्षा व्यर्थ हो गई। जिसने अग्नि-परीक्षा दे दी थी, उसके साथ कुछ तो सदव्यवहार होना चाहिए था। उसको निकाल फेंक दिया। जैसे आदमी दूध में से मक्खी निकाल कर फेंक देता है।
यह रामलीला दिखाई जाती है स्त्रियों को। रामचरितमानस पढ़ो, तुलसीदास
की चौपाइयां रटो, "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी"--इनको कंठस्थ करो। मगर वेद, उपनिषद, ब्रह्मज्ञान की बातों में मत पड़ना। उन ऊंचाइयों से स्त्रियों को वंचित रखा जाता है। ताकि पतिदेव ब्रह्मज्ञानी मालूम पड़ें, स्त्री अज्ञानी मालूम पड़े।
आज भी वही की वही हालत है। अगर स्त्री एम.ए. हो तो बी.ए. लड़का उससे शादी करने को राजी नहीं होता। उसको लगता है बेइज्जती हो रही है। कोई पूछेगा कि पत्नी कहां तक पढ़ी है? एम.ए.। और आप? बी.ए.। तो जरा चोट पहुंचेगी कि यह बात ठीक नहीं। पत्नी हर हालत में छोटी होनी चाहिए। पढ़ाई-लिखाई में छोटी होनी चाहिए। शरीर में भी छोटी होनी चाहिए--लंबी पत्नी से कोई शादी करने को राजी नहीं होता। कि तुम अपनी पत्नी के साथ चले जा रहे हो, वह तुमसे लंबी है, तो डर यह रहता है कि कोई पूछने लगे कि ये क्या आपकी माता जी हैं या कौन हैं? घबड़ाहट लगती है!
अब वह चितरंजन हंस रहे हैं! उनकी पत्नी वीणा उनसे मजबूत और बड़ी है। वे जहां जाते हैं बेचारे, लोग उनसे यही पूछते हैं कि भैया, माता जी को लेकर कहां जा रहे हो? मगर चितरंजन ने हिम्मत का काम किया है। इसको ही कहते हैं मर्दानगी! अरे, डरे नहीं!
हमको तूफानों से टकराना भी आता है "श.फक"
और होते हैं जो अंजाम से डर जाते हैं
कोई फिक्र न की कि पत्नी एक फीट ऊंची है, जहां जाएंगे वहीं मुसीबत खड़ी करेगी! और वीणा बेचारी बहुत झुक-झुक कर भी चले तो भी क्या करे। शरीर से भी मजबूत है।

तो पुरुष को तो हर तरह अकड़ होनी चाहिए। ऊंचा होना चाहिए, मजबूत होना चाहिए। वह जो पहलवान छाप बिड़ी होती है न, वही तस्वीर होनी चाहिए--पहलवान छाप! पढ़ा-लिखा भी ज्यादा होना चाहिए, नौकरी भी बड़ी होनी चाहिए, तनख्वाह भी ज्यादा मिलनी चाहिए--हर स्थिति में स्त्री से ऊपर होना चाहिए।
यह स्त्रियों के साथ सदियों से दुर्व्यवहार चल रहा है। और यह दुर्व्यवहार साधारणजन करें तो भी समझ में आता है, लेकिन उपनिषदों तक में इस तरह के दुर्व्यवहार की बातें लिखी हों तो बड़ी हैरानी होती है। अब ये वचन क्या हैं?
"न संभाषेत्स्ति्रयं--स्त्री से बात न करे।"
बड़े डरपोकपन की बात है। यह कोई संन्यासी का लक्षण हुआ! स्त्री से बात
न करे। इतनी स्त्रियां हैं, सारी पृथ्वी उनसे भरी है, कहां जाओगे? कैसे बचोगे? और स्त्रियों से बात न करे, और स्त्रियां ही सत्संग करने आती हैं। मार डाला संन्यासी को! गर्दन में फांसी लगा दी उसके! पुरुष जाते ही कहां हैं सत्संग करने! पुरुष तो अगर जाते भी हैं कभी सत्संग करने तो उन्हीं स्त्रियों को देखने जाते हैं जो सत्संग करने गई हैं। या उन्हीं स्त्रियों के पति पीछे-पीछे चले जाते हैं--रक्षा की दृष्टि से। क्योंकि धर्मशास्त्र कह गए हैं कि जब लड़की हो तो बाप रक्षा करे, और जब युवती हो जाए तो पति रक्षा करे, और जब वृद्धा हो जाए तो बेटा रक्षा करे। स्त्री हुई कि कोई सामान हुआ! रक्षा ही रक्षा! उसमें कोई आत्मा स्वीकार करते हो या नहीं? तुम्हीं रक्षक हो उसके। और भक्षक कौन है फिर? जब सभी तुम रक्षक हो तो भक्षक तो कोई होना ही नहीं चाहिए। तुम्हीं भक्षक हो।
स्त्रियों से बात न करे, यह तो बड़े डरपोकपन की बात हो गई। और जो पुरुष इतना स्त्रियों से डरा हुआ है, तुम सोचते हो उसके जीवन में ध्यान फलित हुआ होगा! तुम सोचते हो उसके जीवन में आनंद फलित हुआ होगा! तुम सोचते हो उसके जीवन में परमात्मा की कोई झलक मिली होगी! जिसको परमात्मा की झलक मिल जाए उसे तो स्त्री में भी परमात्मा की ही झलक मिलेगी।
फूलों के सौंदर्य से तो कोई विरोध नहीं है नारद को, चांद सुंदर निकलेगा उससे तो कोई विरोध नहीं है, पक्षी गीत गाएंगे उससे तो कुछ विरोध नहीं है, कोयल कुहू-कुहू करेगी उससे तो कुछ विरोध नहीं है, संगीत बजेगा उससे तो कुछ विरोध नहीं है--और सब सौंदर्य स्वीकार है, सिर्फ स्त्री के सौंदर्य से क्या डर है?
डर का कारण सिर्फ इतना ही है कि ये भगोड़े संन्यासियों के कारण यह सूत्र बनाया है। ये भाग गए हैं, कच्चे घड़े हैं। कच्चे घड़े को कहना पड़ता है कि भैया वर्षा से बचना! जहां बूंदा-बांदी हो रही हो, फौरन छाता खोल लेना। तत्क्षण छत्रपति हो जाना!
मेरे एक प्रोफेसर थे। वे छत्रपति थे। एक तो बंगाली थे, सो बंगाली वैसे
ही छत्रपति होते हैं। छाता बड़े काम की चीज है। अरे वर्षा हो तो बचाता है, धूप हो तो बचाता है, कुत्ता वगैरह भौंकने लगे तो बचाता है, कोई लड़के-बच्चे डरवाने लगें तो बचाता है, स्त्री वगैरह दिखाई पड़ जाए तो बचाता है। वे उसे स्त्री से बचाने के लिए उपयोग में लाते थे। जब मैं पहली दफा उनका विद्यार्थी हुआ तो हम तीन ही विद्यार्थी थे--दो लड़कियां थीं और मैं। दर्शनशास्त्र पढ़ने लड़के तो जाते ही नहीं। मैं तो गया था क्योंकि मुझे कोई पढ़ना-लिखना था नहीं। सो दर्शनशास्त्र हो कि भूगोलशास्त्र हो कि इतिहासशास्त्र हो, कुछ भी हो, जहां जगह थी... !
मुझसे उपकुलपति ने पूछा, क्या पढ़ना है? मैंने कहा, जहां जगह हो। उन्होंने कहा, तुम कुछ पढ़ने का इरादा लेकर नहीं आए? मैंने कहा कि पढ़ना है किसको? वक्त गुजारने आए हैं। वे थोड़े चौंके, उन्होंने कहा, तुम बात कैसी करते हो! वक्त गुजारने आए हो? मैंने कहा, मैं सच्ची-सच्ची बात कह रहा हूं आपसे। पढ़ना वगैरह मुझे नहीं है। और मुझे जो पढ़ना है वह मैं खुद ही पढ़ लूंगा। वह मुझे कौन पढ़ाएगा? आप पढ़ाएंगे? इसलिए जहां जगह हो वहां रख दो। न मुझे कक्षा में जाना है ज्यादा। यूं कभी-कभी आहे-गाहे चला जाऊंगा। यूं ही चहलकदमी के लिए। जाना-करना मुझे है नहीं।
दो लड़कियां थीं। लड़कियां दर्शनशास्त्र पढ़ती हैं; क्योंकि दर्शनशास्त्र पढ़ कर कोई नौकरी वगैरह तो मिलती नहीं। नौकरी उन्हें करनी

नहीं। उन्हें डिग्री लेनी है, ताकि ठीक जगह विवाह हो जाए। कोई डिप्टी कलेक्टर से हो जाए, किसी डाक्टर से हो जाए, किसी इंजीनियर से हो जाए। वह सर्टिफिकेट विवाह के काम आता है। नौकरी तो उन्हें कोई करने नहीं देता। क्योंकि नौकरी स्त्रियां करें तो वहां लोगों को भ्रष्ट करेंगी। लोगों को बचाने के लिए ये स्त्रियों को कहीं जाने नहीं दिया जाता। स्त्रियों से तो ऐसा घबड़ाया हुआ है पूरा मुल्क कि जहां गईं वहीं लोगों को भ्रष्ट किया, नरक भेजा; नरक के द्वार हैं।
तो वे दो लड़कियां थीं और मैं। और वे आंख बंद करके पढ़ाते थे, क्योंकि लड़कियों को वे देख नहीं सकते थे। उन्होंने ब्रह्मचर्य का भारी व्रत ले रखा था। मालूम होता है यह जो श्यंबक भावे ने पूछा है, नारद परिव्राजकोपनिषद, इसी का वे अध्ययन करते रहे होंगे। आज राज खुला! तो वे आंख बंद करके पढ़ाते थे। मैं उनकी क्लास में जरूर जाता था, क्योंकि मैं आंख बंद करके सोता था। न वे देखते थे, न कोई सवाल उठता था। वे मुझसे बड़े प्रसन्न थे। कभी-कभी रास्ते पर मुझे मिल जाते, कहते, विद्यार्थी हो तो एक तुम हो। दोनों लड़कियां इतनी सुंदर हैं फिर भी तुम आंख बंद करके बैठते हो। मैंने उनसे कहा कि मैं यह पूछूं कि लड़कियां सुंदर हैं, यह आपको पता कैसे चला? आप तो आंख बंद करके पढ़ाते हैं। अरे, मुझे तो यह भी पता नहीं कि कौन-सी लड़कियां हैं, क्योंकि मैं तो सोता हूं। इधर फुरसत किसको पड़ी! मेरा समय वह सोने का है। इसलिए मैं आपकी कक्षा में जरूर आता हूं, क्योंकि वहां कोई बाधा नहीं; आप आंख बंद किए हैं, देखने वाला कोई है नहीं, मैं तब तक सोता हूं।
मैंने उनसे पूछा कि आप यह छाता जो लगाते हैं, बड़ी तरकीब से लगाते हैं। छाता बिल्कुल यूं लगाते थे कि उनके सिर से लग जाता था। तो वे कहते थे, इसका भी कारण यही है ताकि छाता बिल्कुल आंखों को ढांके रहे। अरे, स्त्रियों का क्या, कहीं से भी निकल आती हैं! इधर जा रही हैं, उधर जा रही हैं। और स्त्रियों से बचना है।
मगर इस तरह का डरा हुआ आदमी कितनी देर बच सकता है! आखिर वे एक स्त्री
के चक्कर में फंस गए। उस स्त्री ने उन्हें डुबाया। मैंने उनसे कहा कि मैंने पहले ही आपको चेताया था कि आप स्त्रियों के चक्कर में फंसोगे! इतने डरोगे, इतना दमन करोगे, तो भीतर वासना इकट्ठी होगी; और एक न एक दिन फूटेगी, विस्फोट होगा।
यह कहना कि स्त्री से बात न करे, एकदम अवैज्ञानिक है। इसका परिणाम तो यही होगा कि तुम्हारे भीतर स्त्री के प्रति बहुत-बहुत विकार, विचार, वासना, कामना इकट्ठी होने लगेगी। सपने तैरने लगेंगे। और स्त्रियां सपनों में जितनी सुंदर होती हैं उतनी असलियत में नहीं होतीं। मैं तो कहता हूं, जी खोल कर बात कर लेना। तब तुम्हें पता चल जाएगा कि अरे, बड़ी कर्कशा है। बाई से बात कर ली तो अच्छा हुआ! पहचान में आ गई। तुम तो जितनी घुसफुस करके बात कर सको कर लेना, बिल्कुल पास बैठ-बैठ कर बात कर लेना, ताकि असलियत जाहिर हो जाए। दूर-दूर रहे, बचे-बचे रहे; असलियत जाहिर न होगी, सपना सपना ही बना रहेगा। अनुभव के अतिरिक्त इस जगत में कोई मुक्ति नहीं है।
इसलिए मैं कहता हूं, श्यंबक भावे, मेरे संन्यासी संन्यासी हैं। तुम यहां पूछो, मेरे आश्रम की संन्यासिनियों से पूछो। मेरे पास रोज संन्यासिनियों के पत्र होते हैं कि मामला क्या है, कि यह अजीब दुनिया है आपकी! सारी दुनिया में हम हो आए, पुरुष हमारा पीछा करते हैं, यहां हमें पुरुषों का पीछा करना पड़ता है--और पुरुष भागते हैं!
भागें न तो क्या करें! अरे, कोई एकाध स्त्री पीछे पड़ी हो तो भी ठीक, इतनी पिटाई-कुटाई उनकी हो चुकी है, अनुभव से सीख लिया। कितने ही गधे हों, मगर इतने कुट-पिट चुके हैं।
मैं छोटा था तो मुझे गधों पर बैठने का शौक था। गांव में मेरे घोड़े ज्यादा थे भी नहीं। थोड़े-से घोड़े थे, वे तांगे खींचते थे। मगर गधे मुक्त विचरण करते थे। मैं शाम से गधों की तलाश में निकल जाता। मैं तो पहले सोचता था कि गधे सच में ही गधे होते हैं, मगर मैं चकित हुआ यह जान कर कि गधे मुझे पहचानने लगे। अरे, मुझे ही नहीं पहचानने लगे, मुझे सौ कदम की दूरी से भी--

मेरे पैरों की आवाज पहचानने लगे। बस, मुझे उन्होंने देखा कि भागे। और कोई गुजर जाए, खड़े रहें, मुझे देखते ही से भाग जाएं। एकदम चीपों-चीपों मचा दें। जो भी मेरे साथ हो, वह कहे कि बात क्या है? तुम्हें गधे देख कर एकदम चीपों-चीपों करने लगते हैं, एकदम भागने लगते हैं! एक कुम्हार जिसके गधों पर मैं अकसर सवार होता था, वह भी मुझसे बोला कि बात क्या है कि तुम जब भी इधर से निकलते हो तो मेरे सारे गधे एकदम शोरगुल मचाने लगते हैं! ऐसे चुपचाप खड़े रहते हैं, अपनी धुन में मस्त! तुमने क्या किया इनके साथ? मैंने कुछ नहीं किया। इतना ही कि जब ये मुझे मिल जाते हैं एकांत में कभी तो मैं इन पर सवारी करता हूं। ये मुझे पहचानने लगे। तो मुझे धारणा जो थी कि गधे गधे होते हैं, वह गलत सिद्ध हुई। गधे भी बड़े समझदार होते हैं। ऐसे बने खड़े रहते हैं, बिल्कुल सीधे-सादे, भोले-भाले; बिल्कुल दार्शनिक मालूम होते हैं; चिंतित, बड़े मग्न, सारे जगत का विचार कर रहे हैं कि तीसरा महायुद्ध होगा कि नहीं होगा, कि अब ईराक-ईरान में क्या होता है देखें, कि अयातुल्ला खोमेनी अब और क्या दिखाते हैं देखें--ऐसे तो लगते हैं कि बड़े चिंता में मग्न हैं, मगर होते बड़े समझदार हैं। मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि बड़े समझदार होते हैं।
तो यहां मेरी संन्यासिनियां मुझे पत्र लिखती हैं कि अजीब दुनिया आपने बनाई है! यहां हम तो पीछा करते हैं, पुरुष एकदम भागते हैं। वे कहते हैं, नहीं-नहीं। आमतौर से सारी दुनिया में यह बात जाहिर है कि जब स्त्री कहे नहीं-नहीं तो उसका मतलब होता हैः हां-हां। मगर मेरे इस आश्रम में जब पुरुष कहे नहीं-नहीं, तो उसका मतलब होता हैः नहीं-नहीं। अनुभव तो किसी को भी सिखा देता है।
रसरी आवत जात है सिल पर परत निशान
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान
जड़मति भी सुजान हुए जा रहे हैं और तुम कहां, श्यंबक भावे, कहां की बातों में पड़े हो! किसी स्त्री से बात न करे! अपनी मां से बात करोगे कि नहीं? अपनी बेटी से बात करोगे कि नहीं? अपनी बहन से बात करोगे कि नहीं? लेकिन संन्यासी तो इन सबको छोड़ कर भाग खड़ा होता है। इसीलिए भागना पड़ता है उसको बेचारे को कि इनसे अगर बात करनी पड़ी तो सब बिगाड़ हो जाएगा।
इतने डरपोकपन से कभी कोई संन्यास हुआ है! और होगा भी तो बिल्कुल पोला होगा। फुफ्फस! बंगाली बाबू! मछली और भात, और भीतर कुछ भी नहीं--कितना ही खोजो, आत्मा का पता ही न चले! कितना ही खोदते चले जाओ, फिर मछली, फिर भात, फिर मछली, फिर भात! इधर से जाओ, उधर से बाहर निकल आओ, मछली और भात के सिवाय कुछ भी न मिले।
और तुम कहते होः "पूर्व परिचित स्त्री का स्मरण न करे।"
अरे, इतना स्मरण तो रखना ही पड़ेगा कि स्मरण नहीं करना है! उसी में गड़बड़
हो जाएगी। पूर्व परिचित स्त्री का स्मरण न करे--इतना स्मरण तो रखोगे! स्मरण छोड़ोगे तो हो जाएगा स्मरण। स्मरण करोगे तो हो जाएगा स्मरण।
एक आदमी ने एक साधु से जाकर कहा--तिब्बती कथा है--कि मुझे कुछ मंत्र दे दें, सिद्धि हो जाए। बड़ी सेवा की, हाथ-पैर दाबे। साधु ने कहा कि भाई, तू नहीं मानता, जानता मैं कुछ नहीं। अरे, उसने कहा कि आप जानते हैं; यह तो ज्ञानियों का लक्षण है कहना कि नहीं जानते। मुझे आपकी सिद्धि पता है। आपके हाथ में सब है। जरा-सा मंत्र दे दो। अरे, कर दो कृपा।
साधु ने देखा कि यह दुष्ट पीछा नहीं छोड़ेगा तो उसे एक मंत्र दे दिया।
एक कागज पर लिख दिया छोटा-सा मंत्र--कुछ भी लिख दिया होगा, कोका-कोला कोका- कोला--या कुछ भी। मतलब जो समझ में न आए ऐसी कोई चीज लिख दी होगी। और कहा कि यह ले जा भइया, पांच दफे पढ़ लेना। बस, इतना ख्याल रहे कि जब भी पांच दफे पढ़े तो बंदर की याद न आए।
अरे, उसने कहा, बिल्कुल बेफिकर रहो। बंदर की जिंदगी भर मुझे याद नहीं आई, साठ साल की उम्र हो गई और बंदर की कभी याद नहीं आई, अब क्यों आएगी? और पांच ही दफे पढ़ना है न? मिनट भर का काम है। अभी जाता हूं, नहा-धो कर बैठता हूं पूजागृह में, पांच दफे पढ़ कर सिद्धि किए लेता हूं।
भागा! लेकिन बड़ा हैरान हुआ। सीढ़ियां भी नहीं उतर पाया मंदिर की कि बंदरों की याद आने लगी। बहुत झिड़का, खांसा-खखारा, कि हट, भागो, धत तेरे की,

तू क्यों पीछे पड़ा है? मगर बंदर तो बंदर। मुंह बिचकाएं। कहीं बाहर तो हैं नहीं, भीतर ही। एक नहीं, दो नहीं, कतारों पर कतारें। कहा, मार डाला, ये बंदर सब कहां छिपे थे! अब तक कभी निकले ही न थे।
घर पहुंचते-पहुंचते तो सारी दुनिया खो गई, बंदर ही बंदर थे। जहां देखे, बंदर ही बंदर दिखाई पड़ें। अरे, अपनी पत्नी को देखा और देखा कि बंदर बैठा हुआ है। आंखें मीड़ीं, पानी छिड़का, कि हे प्रभु, यह क्या हो रहा है? बेटे को देखा, लगा बंदर चला आ रहा है। तब तक भी ठीक था, जब बाप को देखा और देखा कि बंदर, तो उसने कहा कि मैं पागल हो गया। जल्दी से नहाया-धोया, मगर नहाना-धोना क्या? बंदर नहा-धो रहे। जा कर पूजागृह का दरवाजा बंद करके बैठ गया। पांच दफे पढ़ना तो दूर, कागज हाथ में ले और बंदर की तस्वीर। इधर बंदर, उधर बंदर, सब तरफ बंदर। कई दफे कोशिश की, कई दफे नहाया, कई दफे धोया।
पत्नी ने कहा, तुम कर क्या रहे हो, आज रात सोना नहीं है? अरे, उसने कहा,
तू जा। बंदरिया कहीं की। पीछे पड़ी है। पत्नी ने कहा, बंदरिया! होश में हो? बाप ने सुना कि पत्नी से बंदरिया कह रहा है, बाप ने कहा, क्या कहता है रे, नालायक! अरे, कहा, बंदर! तू चुप रह, खूसट! मैं क्या घर के बाहर गया, सब बंदरों ने ही कब्जा कर लिया है। पता नहीं आज बाप कहां गए, पत्नी कहां गई। लड़का बोला, पप्पा, आप क्या कहते हैं! अरे, उसने कहा, चुप रे, बंदर की औलाद! घर के लोगों को शक हुआ कि यह आदमी पागल हो गया है। कहा, तू होश में है? पकड़ कर उसको आईने के सामने ले गए कि आईने में देख! उसने देखा, बंदर खड़ा है आईने में। उसने कहा, हे प्रभु, यह क्या हो रहा है! अपने मुंह पर हाथ फेरा कि मैं आदमी था, भला-चंगा गया था, यह कौन-सी सिद्धि हो गई कि दर्पण में बंदर दिखाई पड़ रहा है!
रात ही पहुंचा साधु के पास भागता हुआ कि भइया, यह मंत्र तुम्हारा सम्हालो, यह सिद्धि मुझे नहीं करनी। मार डाला! मुझे ही नहीं मार डाला, मेरे परिवार को भी मार डाला! यह तुमने क्या बात कह दी कि बंदर को याद मत करना! बस, अड़चन उसी से हो गई। वह जो याद न करना!
अब यह तुम्हें पता नहीं कि अगर तुम यह सूत्र मान कर चलोगे कि पूर्व परिचित स्त्री का स्मरण न करे, तो पूर्व परिचित स्त्री ही स्मरण आएगी। वही-वही स्मरण आएगी।
"स्त्रियों के चित्रों को भी न देखे।"
क्या डरपोकपन है, हद हो गई! चित्र में क्या है! कागज है, लकीरें खिंची हैं, उससे भी डर लग रहा है! लेकिन दमित काम यही उपद्रव खड़ा कर देता है--कागज में भी स्त्री दिखाई पड़ने लगेगी चलती-फिरती! निकल आएगी कागज में से बाहर, बातें करने लगेगी कि स्वामी जी, भले पधारे, पवित्र कर दिया घर को! और तुम्हारे प्राणों पर सांप लोट जाएंगे कि मारा, अब भाषण भी हुआ जा रहा है। अब न बोलें तो नहीं बनता, बोलें तो नहीं बनता। कागजों में से स्त्रियां निकलने लगेंगी।
"स्त्रियों से संबंधित चर्चा न सुने।"
और यह क्या है? श्यंबक भावे, यह क्या हो रहा है यहां? स्त्रियों से संबंधित चर्चा चल रही है। और ये नारद क्या कर रहे हैं उपनिषद में? स्त्रियों की चर्चा कर रहे हैं। और जितने तुम्हारे शास्त्रों में स्त्रियों की चर्चा है, कहीं और नहीं। स्त्रियों ही स्त्रियों की चर्चा है। खूब वर्णन किया है स्त्रियों का! जैसा तुम्हारे महात्माओं ने स्त्रियों का नख-शिख वर्णन किया है, कवियों को भी मात दे दी! पानी पिला दिया! चारों खाने चित कर दिया! क्या वर्णन किया है!
और क्या बाहर-भीतर की बातें कहीं--गहरी बातें कह दीं! कि स्त्री के भीतर क्या है वह भी बता दिया, कि मल-मूत्तर, कफ-वात-पित्त! ... क्या-क्या ज्ञानी थे! ... हड्डी-मांस-मज्जा! और जैसे खुद के भीतर सोना-चांदी भरा हो! शर्म भी न आई यह सब कहते हुए!
"क्योंकि स्त्री-संबंधी चर्चा और उसका स्मरण, चित्रावलोकन तथा संभाषण आदि से मन में विकार की उत्पत्ति होती है।"
इससे झूठी और कोई बात नहीं हो सकती। मन में विकार है, इसलिए स्त्री में विकार दिखाई पड़ता है। स्त्री के कारण मन में विकार नहीं होता। मन में विकार है, इसलिए धन में लोभ मालूम पड़ता है। नहीं तो धन में क्या लोभ है? सौ

का नोट पड़ा रहे पड़ा रहे, तुम्हारा क्या ले रहा है! सौ का नोट कुछ तुम्हारा बिगाड़ सकता है? सौ का हो कि हजार का हो! नोट तुम्हारा क्या करेगा, कागज कागज है!
मगर ले जाओ सौ का नोट तुम विनोबा भावे के पास, वह फौरन आंख बंद कर लेते हैं। यही नारद परिव्राजकोपनिषद उनको भी दिक्कत दे रहा है। आंख बंद कर लेते हैं, कि सौ का नोट, हरियल, घबड़ाहट फैल जाती है भीतर! कहीं लोभ पैदा न हो जाए!
सौ का नोट लोभ पैदा करेगा? नोट लोभ पैदा कर सकता है? लोभ होगा तो नोट प्रकट करेगा। और तब तो मैं कहूंगा कि खोल कर आंख देख लो, ताकि जो भीतर है वह प्रकट हो जाए। मन में विकार की उत्पत्ति बाहर से नहीं आती, मन में विकार है, बाहर तो पर्दे हैं। तुम्हारे विकार बाहर जाकर आरोपित हो जाते हैं।
और तुमने पूछा कि यह सूत्र कहता है कि ऐसा करेगा तो योग-भ्रष्टता का कारण होता है।
नहीं, अगर योग ही हो तो फिर कोई भ्रष्ट नहीं होता। योग न हो तो भ्रष्ट
है ही! योग का अर्थ समझो। योग का अर्थ हैः व्यक्ति और परमात्मा का मिलन।
जहां व्यक्ति और परमात्मा मिल जाता है, वहां योग है। वहां से कोई कभी न भ्रष्ट हुआ है, न हो सकता है।
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।
लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
दूसरा प्रवचन

कच्ची कंध उते काना ऐ

पहला प्रश्नः
ओशो, पंजाबी भाषा में एक टप्पा है, जिसमें एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहता है--
कच्ची कंध उते काना ऐ
मिलणा तां रब नूं है
तेरा पिआर बहाना है।
अर्थात कच्ची दीवार पर कौवा बैठा है। और मिलना तो परमात्मा से है, तेरा प्यार बहाना है।
ओशो, क्या लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम का साधन है? कृपया समझाएं।

विनोद भारती, टप्पा तो यह प्यारा हैः
"कच्ची कंध उते काना ऐ--कच्ची दीवार पर कौवा बैठा है।"
अधिकतर लोगों की जिंदगी बस ऐसी--दीवार कच्ची और कच्ची दीवार पर कौवा बैठा है। जिंदगी भी कच्ची और काली भी। हंस भी नहीं, कौवा बैठा है। और दीवार भी रेत की है। अभी है, अभी नहीं हो जाएगी। कब गिर जाएगी, पता नहीं। किस क्षण समाप्त हो जाएगी, कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता। और इस कच्ची दीवार पर बैठा भी कौन है? कुछ मूल्यवान नहीं। सब दो कौड़ी का है।
"कच्ची कंध उते काना ऐ।"
ये टप्पे सदियों-सदियों में लोकमानस में उभरे हैं। किसी एक व्यक्ति
ने इन्हें लिखा नहीं, ये सदियों की मनुष्य की अनुभूति है। सदियों का सार है। ऐसे छोटे-छोटे टप्पों में उपनिषद समा गए हैं। और सच तो यह है, बहुत बार उपनिषद भी फीके पड़ जाते हैं। क्योंकि सीधा-सादा आदमी सीधा-सादा देखता है। जैसा देखता है वैसा ही कह देता है। न कोई पांडित्य, न कोई शब्दों की लफ्फाजी, न कोई सिद्धांतों का जाल, न कोई शास्त्रों की चिंता--जिंदगी जैसी झलकती है उसके दर्पण में, बस वैसी कह देता है।
गांव के ग्रामीण जनों ने अपने सीधे-सादेपन में ही यह बात कही होगी। और सदियों तक निखरती है फिर यह बात। जैसे गंगोत्री से कोई पत्थर गंगा में बह चलता है, तो खाता है चोटें, गिरता है पहाड़ियों से, जलप्रपातों से उतरता है-- और जैसे-जैसे गंगा में बहता है वैसे-वैसे उसका तिरछापन टूटता जाता है, उसमें एक गोलाई आ जाती है, एक सौंदर्य आ जाता है। वैसे ही पत्थर तो गंगा में सरकते-सरकते शिवलिंग बन जाते हैं। अपूर्व सौंदर्य को उपलब्ध हो जाते हैं। ईश्वरीय हो जाते हैं। परमात्मा की प्रतिमा बन जाते हैं।
ऐसे ही ये टप्पे हैं। सदियों तक बहते रहे हैं मनुष्य की चेतना की गंगा में। इनमें माधुर्य भी आ गया, इनका तिरछापन भी कट गया। सिद्धांत जब नए-नए जन्मते हैं किसी विचारक में तो उनमें थोड़ा तो तिरछापन होता है; थोड़ा अहंकार होता है, अकड़ होती है; मैं सही, दूसरा गलत, ऐसी भ्रांति होती है। लेकिन इस तरह के टप्पे किसी ज्ञानी से नहीं जन्मे हैं, किसी व्यक्ति के हस्ताक्षर नहीं हैं इन पर, इन्हें किसी ने बनाया नहीं है, ये बने हैं, इनका विकास नैसर्गिक है। इसलिए सरल तो बहुत, सीधे तो बहुत, पर रसपूर्ण भी उतने। "कच्ची कंध उते काना ऐ।"
कच्ची है दीवार और दीवार पर कौवा बैठा है। कैसी प्यारी बात और किसने
और कितने प्यारे ढंग से कह दी! और सीधी-साफ। न जैन धर्म आएगा, न हिंदू धर्म, न इस्लाम--धर्मों के पार की बात हो गई, शास्त्रों का अतिक्रमण हो गया। यही तो मामला है, इतनी ही तो बात है। यह जिंदगी की दीवार कच्ची है। बहुत कच्ची है। यह नाव कागज की है। इससे तुम भवसागर पार न हो सकोगे। लाख करो उपाय, यह तो डूबेगी ही डूबेगी। इसका डूबना सुनिश्चित है। इधर से बचाओ, उधर से बचाओ-- बचाने में ही नष्ट हो जाओगे। नाव ही कागज की है, सिर्फ दिखाई पड़ती है कि नाव है।

कोई धन पर भरोसा किए बैठा है। कैसी कच्ची दीवार है! कोई पद पर भरोसा किए बैठा है। कैसी कच्ची दीवार है!
सिकंदर जब भारत आया और पोरस युद्ध में हार गया, तो सिकंदर के दरबार में जंजीरों और बेड़ियों में बंधे हुए पोरस को लाया गया। युद्ध तो सघन हुआ था, पोरस कुछ सिकंदर से कमजोर आदमी न था--शायद ज्यादा बलशाली ही था--लेकिन भारतीय मूढ़ता के कारण हारा। भारत हमेशा अपनी मूढ़ता के कारण परेशान हुआ है। न तो शक्ति की कमी है, न सामर्थ्य की कमी है, लेकिन मूढ़ता शक्ति और सामर्थ्य के ऊपर ऐसी सवार है कि शक्ति को भी नष्ट कर देती है, सामर्थ्य को भी विकृत कर देती है। पोरस हारा सिर्फ एक कारण से कि सिकंदर तो घोड़ों पर आया था लड़ने और पोरस हाथियों को लेकर युद्ध करने गया।
हाथी बारात वगैरह के लिए अच्छे, साधु-संतों की जमात के लिए अच्छे, किसी महंत की शोभा-यात्रा निकल रही हो तो अच्छे, युद्ध के लिए बिल्कुल बेकार है। हाथी युद्ध के लिए बना नहीं है--जगह ज्यादा घेरता है, मुड़ना हो तो भी स्थान चाहिए, और अगर विकृत हो जाए, विक्षिप्त हो जाए--जिसकी कि बहुत संभावना है; तीर चुभें, गोलियां छिदें, अगर पगला जाए तो फिर उसे होश नहीं रहता, फिर वह अपनी ही सेना को रौंद डालता है। और वही हुआ। घोड़े ज्यादा सजग, ज्यादा त्वरावान, गतिवान, थोड़ी जगह में घूम जाएं, थोड़ी जगह में मुड़ जाएं, शीघ्रता से पलट जाएं, बिजली की कौंध से लड़ें, बचाव आसान, आक्रमण आसान, और कोई खतरा नहीं कि अपनी ही सेना को रौंद डालें, ज्यादा सरलता से वश में किए जा सकें।
यह जो लड़ाई हुई, इसमें सिकंदर नहीं जीता और पोरस नहीं हारा, इसमें घोड़े जीते और हाथी हारे। मगर यही भारत का दुर्भाग्य है। आज भी हालत वही है। हम हमेशा पीछे। अभी भी हम बैलगाड़ियों पर भरोसा किए हैं। अभी हमारे नेतागण चरखा चला रहे हैं। हारोगे नहीं तो क्या होगा? मिटोगे नहीं तो क्या होगा?
और जब पोरस को बंदी बना कर लाया गया तो सिकंदर ने पूछा कि बोल, तेरे साथ कैसा व्यवहार करूं? तो पोरस ने बड़ी प्यारी बात कही है। हीरों- जवाहरातों में तौली जाए, ऐसी बात कही है। पोरस ने कहा, व्यवहार? वही व्यवहार जो एक सम्राट दूसरे सम्राट के साथ करता है! और याद रखना, कल तक मैं भी सम्राट था, आज जंजीरों में बंधा तुम्हारे सामने खड़ा हूं। आज तुम सम्राट हो, कल का ख्याल रखना, कल का कुछ पक्का नहीं। कल मुझे भी पता नहीं था कि एक ही दिन बाद यह हालत हो जाएगी।
सिकंदर को बात समझ में आई। आंखें बंद कर लीं कहते हैं सिकंदर ने, क्षण
भर चुप रहा और कहा, जंजीरें अलग कर दो, बेड़ियां तोड़ दो, और लाओ दूसरा सिंहासन, मेरे पास ही पोरस को बिठाओ; वह ठीक कहता है।
"कच्ची कंध उते काना ऐ।"
कच्ची दीवार पर कौवा बैठा है। कब उड़ जाएगा, कुछ भरोसा नहीं। दीवार बड़ी कच्ची है, कौवा न भी उड़ेगा तो भी गिरेगी। कौवे को उड़ना ही पड़ेगा। मगर कितने अकड़ते हैं लोग! पद पर होते हैं तो कैसे अकड़ जाते हैं! पैर जमीन नहीं छूते, पंख लग जाते हैं। होश ही नहीं रह जाता। पद जैसी बेहोशी लाता है, कोई चीज और नहीं लाती। धन क्या पास हो, दीवाने हो जाते हैं। जैसे सब पा लिया! और सब यहीं पड़ा रह जाएगा; कुछ साथ न जाएगा, "जब बांध चलेगा बंजारा"। सब यहीं पड़ा रह जाएगा। और सारी मेहनत जो इसे जुटाने में गई, पानी में गई। पानी पर लकीरें खींच रहे हैं लोग। पानी पर हस्ताक्षर कर रहे हैं लोग।
जैन शास्त्रों में एक बड़ी प्यारी कथा है। तुमने चक्रवर्ती शब्द सुना होगा, लेकिन ठीक-ठीक शायद उसका अर्थबोध तुम्हें न हो। चक्रवर्ती का अर्थ होता हैः वह व्यक्ति जो छहों महाद्वीपों का सम्राट हो, सारी पृथ्वी का। जिसका राज्य कहीं भी समाप्त न होता हो, जिसके राज्य की कोई सीमा न हो, जिसका चक्र पृथ्वी के चारों तरफ घूमता हो। तो चक्रवर्ती सम्राट बड़ी मुश्किल से कोई हो पाता है। बड़ी मुश्किल से। करीब-करीब असंभव है मामला। एक व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट हो गया। और चक्रवर्ती सम्राटों के लिए जैन शास्त्रों में ऐसा कहा है कि चूंकि वे इतना महान कार्य कर लेते हैं, उनके लिए एक विशेष सुविधा मिलती है जो किसी को नहीं मिलती। जब वे स्वर्ग

जाते हैं तो स्वर्ग में मेरु पर्वत है--जैन शास्त्रों की पुराणकथा है-- सुमेरु है। वह पर्वत सच में ही अचल है।
इस पृथ्वी के पर्वत तो कहने को ही अचल हैं। आज हैं, कल नहीं हो जाते हैं। पृथ्वी के पर्वत भी नहीं हो जाते हैं। जमीन पर बहुत से नए पर्वत पैदा हो गए हैं, पुराने पर्वत विदा हो गए हैं। विंध्याचल सबसे पुराना पर्वत है। उसकी कमर झुक गई है, वह बूढ़ा हो गया है, वह मर रहा है--मरणशय्या पर पड़ा है। और हिमालय अभी बच्चा है। अभी बढ़ रहा है, अभी बड़ा हो रहा है। रोज थोड़ा-सा ऊपर उठ रहा है। हर साल कोई एक फिट ऊपर उठ जाता है। अभी विकासमान है। विंध्याचल सबसे पुराना पर्वत है, हिमालय सबसे नया। एक दिन विंध्याचल समाप्त हो जाएगा। महाद्वीप उभरे और विदा हो गए, पहाड़ों की क्या गिनती!
अटलांटिस कभी बड़ा महाद्वीप था। उसकी बड़ी सभ्यता थी। विराट सभ्यता थी। लेकिन अब तो अटलांटिस कहीं भी नहीं है। अटलांटिक महासागर है। पूरा का पूरा महाद्वीप खो गया अतल सागर में। आज भी सागर की गहराइयों में उसके अवशेष मौजूद हैं।
इस पृथ्वी पर तो हम कामचलाऊ रूप से कहते हैं कि पर्वत अचल हैं; वे भी चलते हैं। वे भी गिरते हैं, उठते हैं। वे भी बच्चे होते हैं, जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं। लेकिन स्वर्ग में वह जो सुमेरु पर्वत है जैन शास्त्रों का, वह अडिग है, अचल है। वह जैसा है वैसा ही है। चक्रवर्ती सम्राट को उस पर हस्ताक्षर करने का अवसर मिलता है। वह हर किसी को नहीं मिलता।
तो यह एक व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट हो गया। इसके आनंद का ठिकाना न रहा। बस, इसके जीवन में एक ही आकांक्षा थी कि सुमेरु पर्वत पर हस्ताक्षर कर दूं--क्योंकि और कहीं भी हस्ताक्षर करो तो मिट जाएंगे। अरे, पर्वत ही खो जाएगा तो हस्ताक्षर कहां बचेंगे! पानी पर हस्ताक्षर करो, जल्दी मिट जाते हैं, पहाड़ पर करोगे, थोड़ी देर में मिटेंगे--मगर मिटेंगे जरूर। देर-अबेर की बात है।
"कच्ची कंध उते काना ऐ--कच्ची दीवार पर कौवा बैठा है।"
यह सम्राट बड़ा प्रसन्न था--मरणशय्या पर भी प्रसन्न था। पूछा भी किसी
ने कि आप इतने प्रसन्न हैं, क्या बात? तो उसने कहा, बस, एक ही आकांक्षा थी, वह अब पूरे होने के करीब आ रही है, कि सुमेरु पर हस्ताक्षर कर सकूंगा। उस पर किए हस्ताक्षर कभी नहीं मिटते। मिटते ही नहीं, क्योंकि सुमेरु ही नहीं मिटता है।
वजीर हंसा। सम्राट ने कहा, तुम क्यों हंसते हो? उसने कहा कि अभी कहूंगा तो समझ में न आएगा। लेकिन सुमेरु पर्वत पर पहुंच कर समझ में आ जाएगा कि मैं क्यों हंसा था।
एक पहेली हो गई! सम्राट मरा, मगर वह पहेली उसे याद रही। वजीर हंसा था। क्यों हंसा था? सुमेरु पर्वत पर जाकर राज खुलेगा। सुमेरु पर्वत के द्वार पर पहरेदारों ने कहा कि रुकिए, आप अकेले ही भीतर जा सकते हैं। वह ले गया था अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को, अपने मित्रों को। वे सब उसके साथ मरे थे। उनके मरने का इंतजाम किया गया था। क्योंकि अकेले क्या मजा कि तुमने सुमेरु पर हस्ताक्षर किए। अरे, अपने वाले मौजूद न हों, कोई देखने वाला ही न हो, पत्नी देख न सकेगी कि पति सुमेरु पर हस्ताक्षर कर रहा है, तो क्या मजा! बच्चे न देख सकें, मित्र न देख सकें! तो ले गया होगा मित्रों को, बच्चों को, अखबार वालों को, फोटोग्राफरों को, जनसंपर्क अधिकारियों को--ले गया होगा! मगर पहरेदार ने कहा कि आप अकेले ही जा सकेंगे, इन सबको बाहर ही छोड़ना होगा। यह नियम है।
उसे बड़ा दुख हुआ। उसने कहा, यह कैसा नियम! जीवन भर मेहनत की, सारा जीवन बर्बाद किया सिर्फ इस आशा में कि दिखा दूंगा! जिनको दिखाना है उनको बाहर छोड़ दूं! कृपा करो, जाने दो! वह पहरेदार हंसा। वह हंसी ठीक वैसी ही थी जैसी वजीर की। वजीर की याद आ गई। पूछा सम्राट ने पहरेदार से, हंसते क्यों हो? उसने कहा कि जब तुम पहुंचोगे सुमेरु पर्वत पर तो तुम्हें समझ आ जाएगा। मगर मेरी मानो, मत आग्रह करो इनको ले जाने का, नहीं तो पीछे पछताओगे।
जब उसने यह कहा तो सम्राट अकेला ही गया लेकर छैनी-हथौड़ा, क्योंकि सुमेरु पर नाम खोदना है। और जाकर चकित हो गया! तब वजीर की हंसी भी समझ में आ गई, तब पहरेदार की हंसी भी समझ में आ गई, तब यह बात भी समझ में आ गई कि अच्छा

हुआ मैंने पहरेदार की बात मान ली और अपने संगी-साथियों को साथ न लाया, नहीं तो बड़ी भद्द हो जाती!
और वजीर क्यों हंसा? बूढ़ा होशियार था। और पहरेदार ने क्यों रोका? यह नियम उचित है। मामला यह था कि वह--सुमेरु पर्वत तो बड़ा पर्वत था; न ओर न छोर; विराट था, अंतहीन था--लेकिन उस पर जगह ही न थी जहां हस्ताक्षर करो! इतने हस्ताक्षर हो चुके थे, इतने चक्रवर्ती सम्राट पहले हो चुके थे! खोज-खोज मर गया, जगह न मिले! सोच कर तो गया था बड़े-बड़े अक्षरों में हस्ताक्षर करूंगा, ऐसे कि किसी ने भी न किए हों, मगर जगह ही न थी। लौट कर पहरेदार से पूछा कि क्या करूं? वहां तो कोई जगह ही नहीं है!
पहरेदार ने कहा कि मेरे पिता भी यहां पहरेदार का काम करते थे, उनके पिता भी यहां पहरेदार का काम करते थे, उनके पिता भी--यह हमारा वंशानुगत काम है। और यह हमेशा हुआ है, यह कोई नई बात नहीं है। जहां तक मुझे याद है, जहां तक मेरे पिता को याद था, उनके पिता को याद था, जब भी कोई चक्रवर्ती आया, यही झंझट खड़ी हुई कि वहां जगह नहीं। और उपाय एक ही है कि तुम पुराने कुछ नाम पहले साफ कर दो और अपना नाम लिख दो। यही होता रहा है। पुराने नाम साफ करने पड़ते हैं और नया नाम लिखना होता है।
सम्राट के हाथ से हथौड़ी और छैनी गिर गई। उसने कहा, वजीर ठीक हंसा था।
तो क्या मतलब हुआ! आज मैं हस्ताक्षर करके जाऊंगा, कल कोई मेरे नाम को पोंछ कर हस्ताक्षर करेगा। कल कोई लिख गया है, उसका नाम मैं पोंछूंगा और हस्ताक्षर करूंगा। मजा ही जाता रहा।
चाहे जल पर हस्ताक्षर करो और चाहे सुमेरु पर्वत पर--कच्ची कंध उते काना ऐ--यह दीवार ही कच्ची है। और इस कच्ची दीवार पर कौवा बैठा है।
कौवा प्रतीक है चालबाजी का। लोकमानस में कौवा चालबाजी का प्रतीक है। बहुत चालबाज है। कहते हैं कौवे की एक ही आंख होती है मगर दोनों तरफ देखता रहता है--एक ही आंख से। पक्का चालबाज है। काना है, मगर दुनिया को धोखा देता है दो आंखों का। उसी आंख से बाएं देखता है, उसी आंख से दाएं, गटर-पटर करता रहता है। यहां से वहां आंख को दौड़ाता रहता है। कौवा बहुत चालबाज है! बड़ा होशियार है!
लोकमानस में कौवे का जो प्रतीक है, वह चालबाजी का, बेईमानी का, धोखाधड़ी का। सार-संक्षेप में कहो तो राजनीति का, कूटनीति का।
इतनी कूटनीति, इतनी चालबाजी, इतनी बेईमानी, और हाथ क्या लगेगा? यह कच्ची दीवार! और अभी उड़े! अभी वक्त आ जाएगा! अभी खबर आती होगी कि बस समय समाप्त हुआ, कि अब चलो, कि यमदूत द्वार पर आकर खड़े हो गए! चार दिन की जिंदगी में कितना धोखा देते हो! कितनी बेईमानी करते हो! और क्या पा लेते हो! हाथ क्या लगता है! कुछ भी तो हाथ नहीं लगता। हां, चालबाजियों में कुछ गंवा जरूर देते हो। वह जो सरलता लेकर आए थे जगत में, वह गंवा देते हो।
सरलता का प्रतीक है हंस। शुभ्रता का, शुक्लता का। इसलिए जब कोई ज्ञान
को उपलब्ध हो जाता है, उसे हम परमहंस कहते हैं। वह पुनः बच्चे की भांति सरल हो गया। जैसे बच्चा होता है, कोरी किताब की तरह, जिस पर अभी कुछ लिखा नहीं गया है, वैसा चित्त हंस कहा जाता है। इसको पुनः पा लेना परमहंस की अवस्था है।
बच्चे को तो विकृत होना पड़ेगा। उसकी विकृति सुनिश्चित है। क्योंकि बूढ़े कौवों के हाथों में उसको पड़ना पड़ता है। एक से एक चालबाज कौवे, सयाने कौवे!
मेरे दादा--मेरे पिता के पिता--थोड़ी-सी ही बातें कहते थे, सीधे-सादे आदमी थे, ग्रामीण आदमी थे, मगर जो थोड़ी बातें कहते थे वे मतलब की बातें थीं। उनकी कुछ बातों में एक बात मुझे याद है। काम वे छोटी-सी दुकान करते थे कपड़े की। चेष्टा उनकी यही होती थी कि व्यर्थ मोल-तोल में समय खराब न हो। तो वे पूछ लेते ग्राहक से कि क्या मर्जी? मोल-तोल करना? तो ध्यान रख, लाख मोल-तोल कर, चाहे खरबूज छुरी पर गिरे, चाहे छुरी खरबूज पर गिरे, हर हालत में खरबूज कटेगा, यह मैं तुझे बताए देता हूं। मोल-तोल से तुझे कुछ लाभ न होगा। तू हमें न काट सकेगा। हमें पता है कि यह चीज कितने की है। उससे कम पर तो हम देने वाले नहीं। तो तू सोच ले! और अगर एक बात पर राजी हो, तो हम उतना ही बता दें जितना कम से कम हम दे सकते हैं।

जो सीधे-सादे लोग होते, वे कहते कि बात तो समझ में आती है। मोल-तोल में कोई सार नहीं। यह तो बात जाहिर है। हर हालत में हम कटेंगे। तो आप एक ही बात कह दो। मगर जो चालबाज होते, वे कहते कि बिना मोल-तोल कैसे बात बन सकती है! तो उनकी दूसरी कहावत थी। वे कहते थे, फिर ठीक है, फिर मोल-तोल हो जाए। मगर ख्याल रख, सयाना कौवा गंदे घूरे पर बैठता है। ये उनकी दो कहावतें थीं, जो मैंने उनको बार-बार ग्राहकों से कहते सुना। कि सयाना कौवा गंदे घूरे पर बैठता है! तू सयाना कौवा मालूम होता है! तू बैठेगा किसी गंदे घूरे पर। तू ठीक जगह पर नहीं बैठ सकता। तो हो जाए, मोल-तोल हो जाए।
कुछ लोग मोल-तोल के इतने आग्रही होते कि वे आकर पूछते थे--क्योंकि मेरे पिता को यह आदत न थी, वह सीधी एक बात करते--तो कुछ ग्राहक आकर पूछते कि दादा कहां हैं? क्योंकि आपसे तो एक बात होती है, मजा ही नहीं आता! खरीद-फरोख्त का मजा! दादा कहां हैं? जरा घिसा-पिसी होती है, खरीद-फरोख्त का मजा आता है! नहीं तो देर ही नहीं लगती! आपने इधर कहा इतने दो, उतने हमने दिए और गए! शापिंग का मजा! जरा दादा को बुलाओ!
वह जो सयाना कौवा, वह तो मोल-तोल करेगा। वह चालबाजी करेगा। वह दूसरों
को ही नहीं धोखा देगा, अपने को भी धोखा देगा। धोखा देना उसकी जीवन-शैली हो जाती है। वह बिना धोखा दिए नहीं बच सकता है। इसलिए कौवे का प्रतीक उपयोग किया, विनोद!
"कच्ची कंध उते काना ऐ।"
एक तो कच्ची दीवार और उस पर इतना कौवापन, इतना सयानापन, इतनी होशियारी, इतनी चालबाजी, इतनी राजनीति, इतनी कूटनीति! किसको काट रहे हो? क्या पा लोगे?
"मिलणा तां रब नूं है
तेरा पिआर बहाना है।"
सच में ही प्यारी बात है! कि मिलना तो है परमात्मा से और तेरा प्यार तो बहाना है। जो जानते हैं, वे सभी इस बात पर राजी होंगे कि हमारा प्रेम यूं है जैसे पूर्णिमा का चांद झील में झलकता हो। माना कि झील में झलकता चांद सच्चा चांद नहीं है, मगर सच्चे चांद की ही झलक है। माना कि झील में कूदोगे तो चांद को नहीं पाओगे--कूदोगे तो वह जो झलक भी दिखाई पड़ रही थी चांद की, वह भी खो जाएगी। चांद को पाने के लिए तो झील में कूदने से कुछ सार नहीं, कितनी ही डुबकी मारो; वहां चांद है नहीं।
मगर चांद हो या न हो, है तो असली चांद का ही प्रतिबिंब। जो समझदार हैं,
वे झील में चांद को देख कर असली चांद की यात्रा पर निकल जाते हैं। तब झील का चांद चांद की तरफ अंगुली का इशारा बन जाता है। चांद तो ऊपर है, दूर है, मगर झील का चांद उसकी तरफ इशारा बन जाता है। झील में नहीं उतरना है। मगर वह जो पार चांद है, उसकी यात्रा पर जाना है। झील तब सहयोगी हो जाती है। तब झील शास्त्र बन जाती है।
तो शास्त्र का दो तरह से उपयोग किया जा सकता है। जो समझदार हैं, वे शास्त्र का इशारा पकड़ कर निःशब्द की यात्रा पर निकल जाते हैं। शब्द का इशारा, निःशब्द की यात्रा। संसार का प्रेम और परमात्मा की खोज। क्योंकि प्रेम तो प्रेम है। संसार में केवल उसका प्रतिफलन बन रहा है। संसार दर्पण है। लेकिन जो नासमझ हैं, वे शास्त्रों में ही डुबकी मारते रहते हैं। वे शब्दों के ही ऊहापोह में पड़ जाते हैं। वे शब्दों के जाल में उलझ जाते हैं। वे भूल ही जाते हैं कि शब्द तो केवल तस्वीर हैं, उसे खोजना है जिसकी तस्वीर है।
सदियों के प्रेमियों का अनुभव इसमें समाया हुआ है। जैसे कोई हजारों गुलाब के फूल इकट्ठे करे और उनसे इत्र निचोड़ ले! तो शायद कुछ बूंद ही इत्र बने, मगर उस बूंद में हजारों फूलों का रस होगा, सुगंध होगी, सार होगा, प्राण होगा, आत्मा होगी।
मनुष्य-जाति का सदियों-सदियों का अनुभव यह है। कितने लोगों ने प्रेम नहीं किया! ऐसा कौन है जिसने थोड़ा न बहुत प्रेम न किया हो! कंजूस से कंजूस भी थोड़ा न बहुत प्रेम करता है। गलत से गलत आदमी भी प्रेम से एकदम नहीं बच पाता, कुछ न कुछ गंध तो हाथ लगती है, कुछ न कुछ तो गीत हृदय में गूंज लेता है, कुछ तो पैरों में घूंघर बंधते हैं। फिर चाहे प्रेम तुम अपने बेटे को

करो, चाहे पत्नी को करो, पिता को करो, मां को करो, मित्र को करो, प्रेयसी को करो, संगीत को करो, काव्य को करो, मगर प्रेम कहीं न कहीं से तो तुम्हारे भीतर झांकेगा।
इन सारे प्रेमों के अनुभव का जो इत्र है वह यह है कि कोई भी प्रेम तृप्त नहीं कर पाता। चाहे तुम अपनी पत्नी को कितना ही प्रेम करो, अपने पति को कितना ही प्रेम करो, तृप्ति नहीं मिलेगी। तृप्ति न मिलने के कारण भ्रांति पैदा होती है। लगता है यह पत्नी ठीक नहीं, लगता है यह पति गलत मिल गया, यह दुर्भाग्य मेरा कि किस दुष्ट से साथ हो गया; यह कुछ भूल हो गई, चूक हो गई। मगर यह तुम्हारे गणित की भूल-चूक हो रही है और कुछ भूल-चूक नहीं हुई। तुम पत्नी बदल सकते हो--अब तो सारी दुनिया में तलाक की व्यवस्था हो गई है--तुम पत्नी बदल सकते हो... ।
मैंने सुना, अमरीका में एक आदमी ने आठ बार पत्नियां बदलीं और चकित हुआ
यह बात जान कर कि हर बार चार-छह महीने के बाद उसे लगा कि मैंने फिर नई शक्ल में--मॉडल नया, संस्करण नया--फिर पुरानी पत्नी खोज ली! वही की वही! नाक-नक्श अलग है, बाल के रंग अलग हैं, ऊंचाई अलग है, लंबाई अलग है--सब कुछ अलग है, मगर न मालूम क्यों सब मामला वही का वही है! वही कलह, वही उपद्रव, वही झगड़ा, वही परेशानी। बात क्या है?
बात सीधी-साफ हैः खोजने वाला वही है। तो वह बार-बार उसी तरह की स्त्री
के प्रेम में पड़ेगा। तुम कितनी ही पत्नियां बदलो, कितने ही पति बदलो, कितने ही मित्र बदलो, तुम्हारे जीवन में प्रेम से तृप्ति नहीं आएगी, क्योंकि यह झील में कूद कर तुम चांद को पाने की कोशिश कर रहे हो। और तृप्ति न आने की बात अगर ठीक से समझ में आ जाए तो द्वार खुल जाए--रहस्य का द्वार खुल जाए।
इस जगत की कोई भी प्रीति नहीं भर पाती, यह सौभाग्य है, दुर्भाग्य नहीं। क्योंकि अगर इस जगत की कोई प्रीति तुम्हें भर दे, तो फिर परमात्मा को तुम खोजने ही क्यों निकलोगे? फिर परमात्मा की तलाश का सवाल ही नहीं उठता! इस जगत की हर प्रीति असफल हो जाती है। गिर ही जाती है।
क्यों गिर जाती है? इसीलिए कि तुम्हारे भीतर आकांक्षा तो परमात्मा को पाने की है, परम प्रीति को पाने की है और उसी आकांक्षा को लेकर तुमने किसी स्त्री के सामने झोली फैलाई या किसी पुरुष के सामने झोली फैलाई। वह गरीब स्त्री करे भी तो क्या करे! तुम्हारी झोली कैसे भर दे अमृत से! उसके पास हो तो भर दे! वह खुद भिखारिन है। वह खुद ही झोली फैलाए तुम्हारे सामने खड़ी है। तुम भी पागल हो।
मैंने सुना है, एक गांव में दो ज्योतिषी थे। वे रोज सुबह-सुबह जब अपने काम-धंधे पर बाजार की तरफ जाते, रास्ते पर उनका मिलन होता, तो कहते, भाई, जरा मेरा हाथ देखना! एक-दूसरे का हाथ देखते, चवन्नी एक-दूसरे को थमा देते-- हर्जा भी नहीं था कुछ, चवन्नी मिल भी जाती, चवन्नी दे भी दी जाती; पैसा जितना था अपने पास, अपना, जितना उसके पास था, उसका और हाथ मुफ्त में दिखाई हो जाती। और एक-दूसरे से पूछ लेते कि आज धंधा कैसा चलेगा? ये ज्योतिषी हैं! ये दूसरों का भाग्य बताने निकले हैं!
मनोवैज्ञानिकों के संबंध में तो मैंने और भी एक अदभुत कहानी सुनी है।
दो मनोवैज्ञानिक सुबह ही सुबह अपने दफ्तर जाते हुए रास्ते पर मिले, नमस्कार-वंदना इत्यादि के बाद एक ने पूछा कि आप तो बिल्कुल चंगे हैं, मेरे संबंध में क्या ख्याल? आप तो बिल्कुल ठीक हैं, मैं गारंटी देता हूं। अब मेरे संबंध में कुछ कहो।
अपना पता नहीं है, दूसरे के संबंध में गारंटी देने को आदमी तैयार है। अपने बाबत दूसरे से पूछ रहा है। खुद की खबर नहीं है, औरों की खबर रखता है। मनोवैज्ञानिक एक-दूसरे के पास जाते हैं मनोविश्लेषण के लिए कि भई, जरा हमारा मनोविश्लेषण करो। बड़ी बेचैनी है, बड़ी चिंता है, रात नींद नहीं आती, आत्महत्या के विचार उठते हैं।
यह जान कर तुम चकित होओगे कि दुनिया में जितनी आत्महत्या मनोवैज्ञानिक करते हैं उतना कोई दूसरे धंधे के लोग नहीं करते। अनुपात दो गुना है। न जुआरी, न शराबी, न दलाल--कोई इतनी आत्महत्या नहीं करते जितनी मनोवैज्ञानिक करते हैं। दो गुनी। और मनोवैज्ञानिक दुगुने पागल भी होते

हैं। कोई इतना पागल नहीं होता। राजनीतिज्ञ भी इतने पागल नहीं होते। उनको भी मात दे दी मनोवैज्ञानिकों ने। और ये दुनिया भर का पागलपन ठीक करने का धंधा कर रहे हैं!
अजीब अवस्था है यहां। यहां भिखमंगे भिखमंगों के सामने झोली फैलाए खड़े हैं, कि कुछ मिल जाए, कि आज बिना लिए नहीं हटूंगा। पत्नी तुमसे मांग रही है कि प्रेम दो! तुम पत्नी से मांग रहे हो कि प्रेम दो! प्रेम दे कौन? दोनों मांगने वाले हैं, देने वाला तो कोई भी नहीं है, दाता तो कोई भी नहीं है, दोनों भिखमंगे हैं। फिर झोली तुम्हारी भी खाली, उसकी भी खाली, तो क्रोध आता है। लगता है कि धोखा दिया गया।
धोखा किसी ने भी नहीं दिया है! जब तुम दूर होते हो तो खुद ही धोखा खाते हो। दूरी से धोखा होता है। चौपाटी पर मिल लेते हो किसी स्त्री से... । अब चौपाटी पर कौन चौपट नहीं हो जाता। जिन्होंने भी चौपाटी नाम रखा है, गजब किया है। चौपाटी पर मिलते हो जब तो स्त्री भी सजी-बजी होती है, तुम भी सजे- बजे होते हो, इत्र-फुलेल लगा होता है। न तुम्हारी असली गंध का पता चलता है, न उसकी असली गंध का पता चलता है। तुम भी कपड़ों में छिपे होते हो, वह भी कपड़ों में छिपी होती है।
कपड़े बड़ा धोखा देते हैं। आदमी सोचता है कि कपड़ा नग्नता को छिपाने के लिए ईजाद किया गया है, गलत सोचता है। कपड़ा नग्नता को प्रकट करने के लिए ईजाद किया गया है, उभारने के लिए। नग्न स्त्रियां इतनी सुंदर नहीं होतीं जितनी वस्त्रों में दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि वस्त्र बहुत तरह के धोखे दे सकते हैं। ढले हुए स्तन ऐसे मालूम हो सकते हैं जैसे जवान हों। छातियां जिनकी हड्डियां निकली हों, लेकिन कोट के भीतर भरी हुई रुई ऐसी भ्रांति दे सकती है कि ठेठ हनुमान जी चले आ रहे हैं। कंधे बिल्कुल बैठे हों कि कोई देख ले एक दफा कंधा तो फिर लौट कर न देखे, ऐसा भागे, मगर कंधों में रुई भरी हुई है।
मेरी एक संन्यासिनी है, माधुरी। पूरा परिवार संन्यासी है। माधुरी संन्यासिनी है, उसकी बहन सरिता संन्यासिनी है, उन दोनों की मां संन्यासिनी है। माधुरी की मां ने मुझे कहा कि उसको स्तन का कैंसर हो गया था--उम्र होगी कोई पचपन वर्ष--तो स्तन काट देने पड़े, दोनों स्तन काट देने पड़े। एक का तो काटना निश्चित ही था, दूसरे में खतरा था कि फैल सकेगा, तो पहले से ही काट देना ठीक था। वह बहुत परेशान थी। हिंदुस्तान तो है नहीं, अमरीका है। अमरीका में दोनों स्तन न हों स्त्री के तो मरी ही हुई समझो। जिंदा ही क्या रहा फिर! सारा खेल स्तन का है! बच्चे ही नहीं जी रहे हैं स्तन से, बूढ़े भी स्तन से ही जी रहे हैं। बच्चे भी दूध पी रहे हैं, बूढ़े भी दूध पी रहे हैं। तो बहुत दुखी थी। डाक्टर ने कहा कि दुखी होने की कोई भी जरूरत नहीं है, अब तो प्लास्टिक के स्तन उपलब्ध हैं।
तो स्तन तो दोनों कट गए और प्लास्टिक के स्तन उसे दे दिए गए। मुझसे कह रही थी कि मैं मैक्सिको से लौट रही थी तो एक चौराहे पर रुकी पुलिस वाले से पूछने को रास्ता, उसकी नजरें मेरे स्तन पर अटक गईं। आपकी संन्यासिनी हूं, मजाक सूझा। कभी जिंदगी में ऐसा मजाक मैंने किया भी नहीं था। मगर आपकी संन्यासिनी हुई, तब से मजाक भी करना आने लगा। मैंने उससे पूछा, पसंद आए? वह थोड़ा हिचकिचाया, माथे पर पसीना आ गया, घबड़ाया, इधर-उधर देखा। मैंने कहा, घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं; पसंद आए? सच-सच बोलो। उसने कहा, पसंद! सुंदर हैं! तो माधुरी की मां ने दोनों स्तन निकाल कर उसको दे दिए कि फिर तुम्हीं रख लो। तुमको पसंद आ गए, तुम्हीं रख लो।
वह मुझसे कह रही थी, उसकी हालत देखने जैसी थी। हाथ में प्लास्टिक के स्तन लिए वह ऐसा खड़ा था कि उसे कुछ सूझा ही नहीं, अब करे क्या, करे क्या न। किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया बिल्कुल। कह रही थी, मैं तो गाड़ी लेकर आगे बढ़ गई, उस गरीब पर क्या गुजरी वही जाने!
कपड़े छिपाए रखते हैं। चौपाटी पर मिले किसी से, कुछ पक्का थोड़े ही है
कि कौन कैसा है। यह तो असलियत बाद में पता चलेगी। यह तो जब पास आओगे तब पता चलेगी। कोई किसी को धोखा नहीं दे रहा है। कोई किसी को धोखा देने नहीं निकला है। लेकिन दूरी धोखा पैदा कर देती है। दूरी भ्रम पैदा कर देती है। मृग-मरीचिका पैदा हो जाती है। तुम सोचते हो कि मिल गई वह स्त्री जिसकी

तलाश थी जन्मों-जन्मों से। स्त्री सोचती है, मिल गया वह व्यक्ति जिसकी तलाश थी जन्मों-जन्मों से। और जब पास आते हो तो पता चलता है कि साधारण स्त्री है, साधारण पुरुष है; कहीं कुछ मिला नहीं, फिर धोखा हो गया, फिर धोखा खा गए। और यह धोखा जन्मों-जन्मों से खा रहे हो।
"कच्ची कंध उते काना ऐ।"
कच्ची दीवार पर कौवा बैठा है।
"मिलणा तां रब नूं है।"
और मिलना तो है परमात्मा से। उससे कम में दिल भरेगा नहीं। जब तक सागर
ही बूंद में न उतरेगा तब तक तृप्ति असंभव है। और--
"तेरा पिआर बहाना है।"
यह समझ में आ जाए तो फिर प्यार में भी कोई कसूर नहीं।
"तेरा पिआर बहाना है।"
अगर तुम अपनी पत्नी को यूं प्रेम करो कि जैसे उसके माध्यम से परमात्मा को प्रेम कर रहे हो, तो कुछ हर्ज नहीं। यही मेरी शिक्षा है। विनोद, यही मैं शिक्षा दे रहा हूं! यही समझा रहा हूं। प्रेम से भागो मत! प्रेम में तलाश करो कि वस्तुतः खोज क्या है? तो फिर तुम्हारे बेटे में, तुम्हारी मां में, तुम्हारी पत्नी में, तुम्हारे पति में, मित्र में, उसी की तलाश चल रही है।
सुबह सूर्योदय जब हो और आकाश सुंदर बादलों से भर जाए और रंगीन चारों तरफ जैसे होली हो गई हो ऐसी गुलाल उड़ने लगे सुबह के सूरज की, पक्षी गीत गाएं, फूल खिलें, तब भी ख्याल रखना--यह सौंदर्य उसका है। रात जब आकाश तारों से भर जाए, तब भी ख्याल रखना--ये आंखें उसकी हैं। कोई बांसुरी पर जब गीत छेड़ दे और तुम्हारे प्राण जब नाच उठें, तो याद रखना--यह बांसुरी उसकी है, यह गीत उसका है।
तो फिर जहां भी तुम्हारा प्रेम हो--काव्य में हो, संगीत में हो, कला में हो, नृत्य में हो, स्त्री में हो, पुरुष में हो, जिसमें भी तुम्हारा प्रेम हो--इतनी भर याद बनी रहे कि यह प्रेम उसी की तरफ इशारा करता हुआ तीर है। जाना तो वहां है।
"मिलणा तां रब नूं है।"
जाना तो वहां है। मिलना तो रब से है। मिलना तो है उस प्यारे से।
"तेरा पिआर बहाना है।"
और बाकी सब बहाने हैं। बहाने बुरे नहीं। अगर बहाने बहाने समझे जाएं
तो बुरे नहीं हैं, खूंटियां हैं। टांगो उन खूंटियों पर, लेकिन जो टांगो वह रहे परमात्मा का ही प्रेम। काश, तुम अपनी पत्नी में परमात्मा को देख सको, पति में परमात्मा को देख सको, तो फिर किसी और मंदिर में जाने की कोई जरूरत नहीं।
कैसे पागल लोग हैं। जिंदा बच्चों में उन्हें परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता और बैठ कर भागवत की कथा सुन रहे हैं! और उसमें केवल एक जिंदा बच्चे की कहानी है, और कुछ भी नहीं। एक शानदार बच्चे की कहानी है, और कुछ भी नहीं। सूरदास का पद सुन रहे हैंः मैया मैं नहिं माखन खायो। और घर में बच्चा यही कह रहा है कि मैया मैं नहिं माखन खायो, तो उसकी पिटाई हो रही है कि तूने ही खाया है! अरे कमबख्त, तूने नहीं खाया तो किसने खाया? मक्खन गया कहां? और सूरदास जी का वही भजन गुनगुना रहे हो कि मैया मैं नहिं माखन खायो। क्या गजब हो रहा है!
कृष्ण किसी की मटकी में कंकड़ मार कर फोड़ देते हैं। अहा, गदगद हो रहे हैं भक्त! डोंगरे महाराज की आंखों से आंसू बह रहे हैं। भक्तों की आंखें गीली हुई जा रही हैं। आंसू ही नहीं टपक रहे, बूंदी टपक रही है। और खुद का लड़का किसी की गगरी फोड़ आए तो उसकी पिटाई हो रही है। अरे तो डोंगरे महाराज की पिटाई करो न! कि पकड़ो सूरदास को कि भाग न जाए कहीं! लगाओ ठिकाने इसको! कृष्ण जी स्त्रियों के कपड़े लेकर झाड़ पर बैठ गए हैं, भक्त लोग कह रहे हैं--अहा, क्या लीला हो रही है! और तुम्हारा लड़का किसी के कपड़े लेकर बैठ गया है झाड़ पर, तो उतर हरामजादे! नीचे आ! अब तुझे वह पाठ सिखाऊंगा कि जिंदगी भर याद रहेगा!

जिंदगी को प्रेम करो! तुम कहानियों में उलझ गए हो! यह जिंदगी बहुत प्यारी है! इस जिंदगी में सब तरफ से परमात्मा की झलक आ रही है! लेकिन तुम न मालूम किस कचरे में पड़े हो! टप्पा प्यारा है! इसे याद रखना--
"कच्ची कंध उते काना ऐ
मिलणा तां रब नूं है
तेरा पिआर बहाना है।"
जिंदगी क्या है इक पहेली है
कभी दुश्मन, कभी सहेली है
छू के देखा तो महफिले-यारां अपनी-अपनी जगह अकेली है
कभी दुश्मन, कभी सहेली है दिल के सहरा में साथ की कश्ती डगमगाते हुए धकेली है
कभी दुश्मन, कभी सहेली है इसको पढ़ना बड़ी तवज्जो से यही तकदीर की हथेली है
कभी दुश्मन, कभी सहेली है
छिल गईं उंगलियां इसे छू के
तुमसे किसने कहा, चमेली है
कभी दुश्मन, कभी सहेली है
जिंदगी क्या है इक पहेली है
कभी दुश्मन, कभी सहेली है
लेकिन सब तुम पर निर्भर है। जिंदगी न तो दुश्मन है और न जिंदगी सहेली है। तुम समझो तो सहेली है, तुम न समझो तो दुश्मन है। तुम समझो तो परमात्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं है, और तुम न समझो तो--कच्ची कंध उते काना ऐ--कच्ची दीवार है और कौवा बैठा है। और तुम समझो तो शाश्वत है, और हंसों की पंक्तियां उड़ी जा रही हैं, परमहंसों की पंक्तियां उड़ी जा रही हैं। सब तुम्हारे हाथ में है।

हां मैं दीवाना हूं, चाहूं तो मचल सकता हूं
खिल्वते-हुस्न के कानून बदल सकता हूं
खार तो खार हैं, अंगारों पै चल सकता हूं
मेरे महबूब, मेरे दोस्त, नहीं ये भी नहीं
मेरी बेबाक तबीयत का तकाजा है कुछ और
इसी रफ्तार से दुनिया को गुजर जाने दूं
दिल में घुट-घुट के तमन्नाओं को मर जाने दूं तेरी जुल्फों को सरे-दोश बिखर जाने दूं
मेरे महबूब, मेरे दोस्त, नहीं ये भी नहीं
मेरी बेबाक तबीयत का तकाजा है कुछ और
एक दिन छीन लूं मैं अज्मते-गाफिल का जुनूं तोड़ दूं मैं तोड़ दूं मैं शौकते-दुनिया का फुसूं और बह जाए यहीं नब्जे-जरोसीं का खूं गैरते-इश्क को मंजूर तमाशा है यही
मेरी फितरत का मेरे दोस्त तकाजा है यही
हां मैं दीवाना हूं, चाहूं तो मचल सकता हूं
खिल्वते-हुस्न के कानून बदल सकता हूं
खार तो खार हैं, अंगारों पै चल सकता हूं
मेरे महबूब, मेरे दोस्त, नहीं ये भी नहीं
मेरी बेबाक तबीयत का तकाजा है कुछ और
इस छुद्र में ही समाप्त नहीं हो जाना है। विराट को पाना है। समय में
ही समाप्त नहीं हो जाना है। शाश्वत में घर बनाना है।
मेरी बेबाक तबीयत का तकाजा है कुछ और

दूसरा प्रश्नः

ओशो, दत्ताबाल के संबंध में और थोड़ी जानकारी--
तीन साल पहले मैं मिरज में था तो उन्होंने मिलने की आकांक्षा प्रकट की। जिस शिष्या के घर ठहरे थे, वहां हमारी मुलाकात हुई। पूरे समय वे इतने बेचैन थे कि पांच मिनट भी वे एक जगह बैठते नहीं थे। बार-बार उठ कर अपने कमरे के भीतर चले जाते थे। आते तो जिस हॉल में हम बैठे थे वहां का फर्नीचर इधर-उधर करने को कहते थे।
आखिर वे बोले कि कुछ बातचीत चलने दें। मैंने कहा कि मैं कुछ बातचीत करने यहां आया नहीं; अगर आपको कुछ पूछना हो तो पूछिए। नहीं तो हम सब मिल कर दस मिनट मौन में सत्संग करें। इस पर मेरी तरफ इशारा करते हुए उन्होंने कहा अपने बैठे हुए शिष्यों से, "सीखिए, इनसे कुछ सीखिए।" लेकिन खुद वहां से उठ कर चले गए। शिष्यों ने कहा कि डायबिटीज के कारण वे ऐसे बेचैन हैं!
फिर आए तो वही बेचैनी--जैसे कि पिंजड़े में बंद जानवरों की होती है। बैठे तो अपनी प्रिय शिष्या से, जो कि उनके चरित्र की लेखिका भी हैं, कहा कि तेरी लिखी हुई पुस्तक तो इन्हें भेंट कर। वह शिष्या उठ कर पुस्तक ले आई तो वे पेन ढूंढ़ने लगे। मेरा पेन मैंने उन्हें दिया तो उसी बेचैनी में उस पुस्तक पर अपने हस्ताक्षर करके उन्होंने मेरा पेन ही खराब कर दिया--इतने जोर से उन्होंने लकीर खींची कि पन्ना ही फटने लगा।
उस चरित्र को मैंने गौर से पढ़ा तो पाया कि पूरी की पूरी किताब उनके दंभ से भरी हुई है। कुछ अतींद्रिय शक्ति के वे दावेदार हैं--जिन प्रयोगों की वही एक शिष्या मात्र गवाह है। वे मानते हैं कि दूर बैठे वे केवल इच्छा- शक्ति से चीजों को हिलाते हैं या बादलों से पानी गिराते हैं। बस, इसी तरह के विस्तार से पूरी पुस्तक भरी है।
ओशो, दत्ताबाल तो इतने भटके हुए भगवान हैं कि उनके बारे में आप कुछ कहते भी हैं तो उनका सम्मान ही होता है। मेरे देखे तो वे सिर्फ उपेक्षा- योग्य हैं। ओशो, इन मूढ़ों पर आप क्यों इतनी मेहनत खराब करते हैं?

अजित सरस्वती, मूढ़ हैं, इसलिए ही। भटके हैं, इसलिए ही। सोए हैं, इसलिए ही। और ये साधारण मूढ़ नहीं हैं, ये ऐसे मूढ़ हैं कि औरों को भी मूढ़ बना रहे हैं। इसलिए इन पर थोड़ी ज्यादा ही मेहनत करनी पड़ती है। कुछ तो मूढ़ होते हैं खुद ही मूढ़ हैं, बस अपने में ही उनकी मूढ़ता सीमित है। ज्यादा खतरा नहीं। संक्रामक नहीं हैं। बीमारी फैलाते नहीं हैं। उनकी बीमारी छूत की बीमारी नहीं है। मगर ये उन मूढ़ों में से हैं जिनकी बीमारी छूत की बीमारी है। अजित सरस्वती का प्रश्न महत्वपूर्ण है। क्योंकि कई बार अनेक मित्रों
ने यह प्रश्न पूछा है कि आपको क्यों समय खराब करना चाहिए? जाने दो भाड़ में! कैसे जाने दूं भाड़ में! वह तो जा रहे हैं, मगर औरों को भी ले जा रहे हैं। अकेले भी जाते हों तो मैं भी सोचूं कि ठीक है, प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता है। किसी को भाड़ में ही जाना है तो कोई क्या कर सकता है? इतना ही कह सकते हैं कि जाओ भाई, तुम्हारी इच्छा पूरी हो! मगर ये औरों को भी ले जा रहे हैं। और जो जा रहे हैं, वे इतने मूढ़ नहीं हैं लेकिन भोले-भाले हैं। भोले-भाले हैं, इसलिए फंस जाते हैं। उन भोले-भालों को जगाने के लिए इतनी मेहनत करनी पड़ती है।
यह पूरा प्रश्न महत्वपूर्ण है। दत्ताबाल अजित सरस्वती से मिलने की आकांक्षा प्रकट करते हैं। और ऐसी शक्तियों के मालिक हैं कि दूर बैठे इच्छा-शक्ति से चीजों को हिलाते हैं, बादलों से पानी गिराते हैं। अगर ऐसी इच्छा-शक्ति है तो कम से कम अजित सरस्वती को तो बिना बुलाए खींच लेना था। इधर मुझसे भी मिलने आने को आकांक्षा की थी, लेकिन एकांत में मिलना चाहते थे। इस तरह के लोग हमेशा एकांत में मिलना चाहते हैं। क्योंकि डर उनको यह होता है कि औरों के सामने कुछ पूछेंगे तो भद्द खुलेगी। ढोल के भीतर बड़ी पोल है। ऊपर से बजाओ तो बड़ी आवाज करता है; मगर खोल कर देखो कि कौन आवाज कर रहा है तो सब गड़बड़ हो जाता है। भीतर कुछ होता ही नहीं।
किसी उपद्रवी ने चंदूलाल के बेटे को--टिल्लू गुरु उनका नाम है-- जन्मदिन पर एक ढोल भेंट कर दिया। और टिल्लू गुरु दिन-रात ढोल ही बजाएं।
नींद हराम कर दी उन्होंने घरवालों की। बीच रात को उठ कर ढोल बजा दें।

मोहल्ले वाले परेशान। चंदूलाल पगलाने लगे। चंदूलाल की पत्नी घबड़ाने लगी, कि करना क्या? और टिल्लू गुरु को मजा आए। और ढोल लिए घूमें।
चंदूलाल ने मुझसे कहा कि करें क्या अब? मोहल्ले के लोग मारने को उतारू हैं। और हम भी अब पगलाए जा रहे हैं। और यह दुष्ट कभी रात में नहीं उठता था, यह बीच-बीच रात में उठ कर ढोल बजा देता है। दिन भर परेशान, रात सोने भी नहीं देता। तो मैंने कहा, तुम कुछ न करो, यह चक्कू ले जाओ। उन्होंने कहा, चक्कू से क्या होगा? मैंने कहा, टिल्लू गुरु को दे देना और कहना, जरा खोल कर भी देख भीतर क्या है? आवाज कौन कर रहा है? उन्होंने कहा, यह बात जंचती है।
दे दिया चाकू टिल्लू गुरु को। उन्होंने फौरन खोल कर देख लिया। जैसे
ही ढोल खोला कि पोल खुल गई। भीतर तो कुछ नहीं था, मगर ढोल भी गया।
इस तरह के लोग एकांत में मिलना चाहते हैं। आचार्य तुलसी एकांत में मिलना चाहते हैं। किसी के सामने नहीं। क्यों? क्योंकि एकांत में पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें? सबके सामने कैसे पूछें! सबके सामने पूछें तो यह सात सौ साधु-साध्वियों का समूह जो उन्होंने इकट्ठा कर रखा है, वह कहेगा, अरे, गुरुदेव, आपको ध्यान का पता नहीं अभी तक?
दत्ताबाल एकांत में मिलना चाहते थे। मैंने कहा कि मिल तो सकते हैं, मगर एकांत में नहीं। सबके सामने जो पूछना हो पूछ लेना। फिर नहीं आए। क्योंकि एक तो सबके सामने आना, तो उसका मतलब यह हुआ कि अभी कुछ कमी है। नहीं तो आने की क्या जरूरत है? क्या मिलने की जरूरत है? जब सब पा ही लिया-- जैसा कि दावा है उनका--तो अब किससे मिलना, क्या पूछना है? मुझसे तो नहीं मिल सके, तो सोचा होगा कि चलो अजित सरस्वती को बुला लें। शायद इनसे कुछ राज हाथ लग जाए।
बुला तो बैठे, लेकिन बात कैसे शुरू करें? कहें क्या? इसीलिए उन्होंने कहा कि कुछ बात शुरू करिए। और ठीक किया अजित सरस्वती ने कहा कि मैं कुछ बात करने आया नहीं। आपने बुलवाया, मैं तो आया भी नहीं। अगर आपको कुछ पूछना हो तो पूछिए। बस, बिल्कुल ठीक यही प्रत्येक संन्यासी को स्मरण रखना चाहिए। उनकी बोलती बंद हो जाएगी। पूछना उन्हें है नहीं--कम से कम सबके सामने तो नहीं पूछना है--तुम्हीं अपने आप कह जाओ, कुछ ऐसा बन जाए मामला तो ठीक, तो वह सुन लें। पूछें, तब तो बात गड़बड़ हो जाएगी।
और ठीक कहा अजित सरस्वती ने कि अच्छा हो कि हम दस मिनट मौन में सत्संग करें।
इन बेचारों को कहां मौन का सत्संग! इनको मौन का कहां पता! यह पांच मिनट
एक जगह शांति से नहीं बैठ सकते। और यह बात तो सरासर झूठ है कि शिष्यों ने कहा कि डायबिटीज के कारण वे ऐसे बेचैन हैं। यह बिल्कुल झूठ बात है। क्योंकि मेरे दादा को डायबिटीज थी, मेरे पिता को डायबिटीज थी, मुझको डायबिटीज है, मेरे चाचाओं को डायबिटीज है, मेरे भाइयों को डायबिटीज है-- वंश-परंपरा से यह ज्ञान चला आ रहा है--मुझे तो कोई अड़चन नहीं होती है शांति से बैठने में! डायबिटीज है तो रही आए, कोई आत्मा को थोड़े ही डायबिटीज हो जाती है। और बैठना आत्मा को है शांत। शरीर में डायबिटीज रहे तो डायबिटीज। और डायबिटीज से शरीर में भी क्या अशांति होगी। अरे, थोड़ी शक्कर होती है। तो इसमें अशांति क्या होनी, थोड़ा माधुर्य हो जाता है, थोड़ी बूंदी फैल गई, इसमें बिगड़ा क्या? इसमें तुम्हें अशांत होने की क्या बात है? चींटे- चींटियां अशांत होने लगें, यह तो समझ में आता है। मगर तुम्हें अशांत होने की क्या जरूरत है? और तुम तो साक्षीभाव रखो, शरीर को डायबिटीज होगी! अरे, शरीर तो मिट्टी है! कच्ची कंध उते काना ऐ। कच्ची दीवार पर कौवा बैठा भइया, कौवा को डायबिटीज हो गई, हो जाने दो! दीवार में शक्कर है कि रेत, क्या करना है तुमको!
मगर अजित कहते हैं कि "वे पूरे समय इतने बेचैन थे कि पांच मिनट भी एक जगह बैठते नहीं थे।"
इसी तरह के बेचैन लोग इस देश को सदियों से चला रहे हैं। खुद बेचैन हैं
और दूसरों को बेचैन कर रहे हैं। उनकी सत्य की खोज और परमात्मा की खोज इत्यादि सब सिर्फ बेचैनियों के लक्षण हैं, और कुछ भी नहीं।
"बार-बार उठ कर अपने कमरे के भीतर जाते थे।"
क्या जरूरत बार-बार कमरे के भीतर जाने की और आने की?

सोहन, बाबा मुक्तानंद का सत्संग करने गई थी एक दिन। मैंने पूछा, सोहन, फिर क्या हुआ? उसने कहा कि बड़ा गजब का सत्संग हुआ! बस, दो मिनट बाबा बैठें और फिर बाबा भीतर गए। फिर बाबा बाहर आए, फिर बाबा भीतर गए, फिर बाबा बाहर आए, बस यही होता रहा। भक्तगण खबर दें कि बाबा भीतर गए। देखते रहो बैठे, बाबा भीतर चले गए। फिर दो मिनट बाद भक्त खबर दें कि बाबा आ रहे हैं। फिर बाबा आ जाएं, फिर बैठ गए बाबा, फिर खड़े हो गए, फिर भीतर चले गए। जब बहुत इस तरह का सत्संग हो गया तो सोहन ने कहा, अपन भी अपने घर जाएं! अरे, जब बाबा ही बाहर-भीतर हो रहे हैं तो हम क्यों बाहर रहें! सत्संग खतमः बाबा बाहर-भीतर होते रहें।
ये तुम्हारे आबा-बाबा... इसका मतलब ही यह होता हैः आए, गए; आबा, बाबा!
मैं एक गांव में सतना के पास मेहमान था। वहां लोग आदर से गांव में जो बाबा हैं उनको बाबाजू कहते हैं। मैंने कहा, यह और अच्छा शब्द तुमने खोज लिया, बाबाजू! यानी बाजू, दूसरी बाजू--बाबाजू। यह भी ठीक है! इस बाजू भी आते-जाते हैं? कहे कि इसी बाजू रहते हैं ज्यादातर तो। मगर उन लोगों को बड़ी हैरानी हुई जब मैंने उनसे कहा कि बाबाजू का मतलब तो हुआ कि उस बाजू, इस बाजू, आ रहे, जा रहे, नाव चला रहे।
यह ठीक तुमने देखा। यही हालत है तुम्हारे साधु-संन्यासियों की--बेचैन हैं, परेशान हैं। अपने हाथ से परेशान हैं। क्यों? क्योंकि शांति का कोई सूत्र तो समझा नहीं। शांति का सूत्र समझने के लिए किसी के चरणों में बैठना पड़े। वह साहस नहीं, वह समर्पण नहीं। मौन होने के लिए कोई कला सीखनी पड़े। उस सीखने के लिए झुकना पड़े। झुकना तो केवल कुछ दुस्साहसी लोगों के हिम्मत की बात है, सबकी बात नहीं। अकड़े हुए लोग, अहंकारी लोग, दंभी लोग, ये तो बिना जाने दावा करने लगते हैं जानने का। तब फिर यह अड़चन खड़ी होती है। अब वे कैसे बैठें शांति से? दस मिनट इतने लंबे मालूम पड़ेंगे जिसका हिसाब नहीं!
एक गांव में सत्संग हो रहा था। बहुत शोरगुल मच रहा था। तो जो बाबाजू सत्संग करवाने आए थे, उन्होंने कहा कि भाइयो एवं बहनो, अरे शांति ऐसी होनी चाहिए कि सुई भी गिरे तो आवाज सुनाई पड़े। सब शांत हो जाओ! सब शांत हो गए। एक मिनट शांति रही, उन्हीं बाबाजू के शिष्य ने पूछा, गुरुदेव, अब तो सुई गिराइए! अरे, बहुत देर हुई जा रही है, अब तो सुई गिराइए!
ये तुम्हारे सब तथाकथित आध्यात्मिक व्यक्ति, काश तुम इनकी थोड़ी जांच-परख करो, तो जरूर हैरानी में पड़ोगे। अजित सरस्वती ने वह किताब भी कल मुझे भेज दी है जिस पर उन्होंने दस्तखत किए हैं। सच में ही सुमेरु पर्वत पर जैसे दस्तखत किए जाते हैं वैसे ही दस्तखत किए हैं। फाड़ ही डाला पन्ना! और उनकी कलम भी खराब कर दी।
"पूरे समय बेचैन, एक जगह बैठते नहीं। बार-बार उठ कर कमरे के बाहर-भीतर आते-जाते और जिस हॉल में बैठे थे वहां का फर्नीचर इधर-उधर करने को कहते थे। आखिर वे बोले कि कुछ बातचीत चलने दें। मैंने कहा, मैं कुछ बातचीत करने यहां आया नहीं; अगर आपको कुछ पूछना हो तो पूछिए। नहीं तो हम सब मिल कर दस मिनट मौन में सत्संग करें। इस पर मेरी तरफ इशारा करते हुए उन्होंने वहां बैठे अपने शिष्यों से कहा, सीखिए, इनसे कुछ सीखिए।"
उनको तो सीखना नहीं, वे तो सीख चुके, शिष्यों से कहा, सीखिए। तो ये क्या करते रहे हैं शिष्यों को अब तक? उनको क्या सिखाया? यही आना-जाना सिखाया? फर्नीचर जमाना सिखाया?
"लेकिन खुद वहां से उठ कर चले गए।"
दस मिनट बैठना तो उन्हें मुश्किल हो जाता। दस मिनट बैठना तो असंभव हो जाता।
"शिष्यों ने कहा कि डायबिटीज के कारण वे ऐसे बेचैन हैं!"
शिष्य बेचारे एक से एक तर्क खोजते रहते हैं गुरुओं को बचाने का। क्या तर्क खोजा! डायबिटीज से क्या बेचैनी का संबंध है? डायबिटीज से तो और माधुर्य फैल जाता। इसलिए लोग मुझ से पूछते हैं कि आपकी बातों में इतना माधुर्य क्यों है? आज राज बताए देता हूंः डायबिटीज! इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है, मेरा कोई कसूर नहीं है। और जब डायबिटीज होगी तो शब्दों में माधुर्य होगा ही! और मैं तो तुमसे कहूंगा कि सभी डायबिटीज कर लो, क्योंकि

बाहर तो शक्कर नदारद हुई जा रही है, अब तो भीतर ही शक्कर होनी चाहिए। अब प्रसाद बाहर वगैरह का ज्यादा नहीं बंटेगा।
सुभाष सरस्वती ने लिखा है कि भगवान, सुना था कि गुरुकृपा से सब कुछ हो जाता है। अरे, आपने क्या जवाब दिया, तत्क्षण सब कुछ हो गया... ।
उन्होंने प्रश्न पूछा था कि डोंगरे महाराज के प्रवचन के बाद लस्सी और बूंदी प्रसाद में बंटते हैं। सो मैंने बताया कि लस्सी से बल बढ़ता है-- शक्ति। और शक्ति से आती भक्ति। और भक्ति से ध्यान में थिरता। और ध्यान में मिठास, सो फिर बूंदी बंटती। बुंद में समुंद समाना। और सुभाष बेचारे उदास खड़े रहते थे गर्दन लटकाए, क्योंकि उनकी पत्नी गई हुई हैं राजकोट। और पुराने ढब के संन्यासी हैं, सो वह पत्नी की राह देखते रहते हैं। ऐसी गर्दन तिरछी किए, राजकोट की तरफ सिर झुकाए।
सो उन्होंने लिखा है कि आपने गजब कर दिया, आपने उत्तर क्या दिया, उसी दिन कृष्णा और अद्वैत बोधिसत्व ने बुला कर लस्सी पिलाई, बूंदी खिलाई। अब भगवान कुछ ऐसा करो कि रसमलाई भी हो जाए!
होगी भाई, जरूर होगी! अभी मैंने सोहन का नाम लिया न, यह बड़ी सत्संगी है!
और रसमलाई की जानकार! बस, तुम वहीं खड़े रहना बाहर और जैसे ही सोहन वहां से निकले, एकदम गिर पड़ना चरणों में कि जय हो माई! आज ही रसमलाई! करांची वाला की रसमलाई! और जब भी तुम्हें रसमलाई चाहिए हो, सोहन के पैर पकड़ लेनाः जय हो माई! वह समझ जाएगी, कि रसमलाई। ये तो छोटी-सी बातें हैं। तुम आज ही करके देखो!
और लिखा है उन्होंने कि आपने गजब की बात कही। जब से लस्सी पी है, गर्दन सीधी हो गई। शक्ति भी आ रही है। और बूंदी जब से खाई है, बड़े ऊंचे-ऊंचे ख्याल आ रहे हैं।
वह तो तुम सम्हालना अब, क्योंकि गर्दन अगर ऊंची हो गई तो खतरा है। क्योंकि तुम शक्ति और भक्ति से कुछ और मत समझ लेना। शक्ति मेरी एक संन्यासिनी है और भक्ति भी मेरी एक संन्यासिनी है। अब जरा सम्हल कर रहना, गर्दन ऊंची हुई कि शक्ति आएगी, पीछे से भक्ति आएगी। और तुम्हारी पत्नी गई है राजकोट। कच्ची कंध उते काना ऐ। कच्ची दीवार पर कौवा बैठा। मिलणा तां रब नूं है, तेरा पिआर बहाना है। ख्याल रखना कि तुम्हारा रब तो राजकोट गया और ये भक्ति-शक्ति आएं तो घबड़ाना मत! तुम तो साफ कह देनाः कच्ची कंध उते काना ऐ। अरे, यह तो कच्ची दीवार है, कौवा बैठा है, हम तो रसमलाई खाएंगे! हमें न भक्ति चाहिए, न शक्ति चाहिए। और गर्दन सीधी करना ही मत! सीधी गर्दन में बड़े खतरे हैं। वह तो तुम राजकोट की तरफ ही झुकाए रखो।
"अब उन्होंने शिष्यों से कहा, सीखिए, इनसे कुछ सीखिए। लेकिन खुद वहां
से उठ कर चले गए। शिष्यों ने कहा कि डायबिटीज के कारण वे ऐसे बेचैन हैं!" डायबिटीज से क्या बेचैनी का संबंध है! अरे, डायबिटीज तो यूं समझो कि रसमलाई फैल गई। इसीलिए तो मुझे कोई रसमलाई वगैरह लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती। आज कोई पंद्रह वर्ष हो गए, बस आखिरी रसमलाई सोहन ने खिलाई थी, उसके बाद नहीं खाई।
"फिर आए तो वही बेचैनी--जैसे कि पिंजड़े में बंद जानवरों की होती है।"
हैं ही पिंजड़े में बंद जानवर। वे खुद ही कहते हैं अपने को कि मैं छत्रपति शिवाजी की इस भूमि में पैदा हुआ सिंह हूं। सिंह हो तो पिंजड़े में बंद होओगे। अब आजकल सिंह कोई ऐसे इधर-उधर तो घूमते-फिरते मिलते नहीं, सर्कस में ही होते हैं। सर्कसी सिंह। और सर्कस में कोई भी सिंह रहे, वह कितना ही सिंह हो, हालत तो उसकी रास्तों पर घूमते कुत्तों से भी बदतर हो जाती है। क्योंकि कम से कम कुत्ता स्वतंत्र तो है।
अब वे बेचैन हो रहे हैं! बेचैनी का कारण यह हैः आकांक्षा थी बड़ी, महत्वाकांक्षा थी बड़ी--प्रसिद्धि मिले, यश मिले, जगत में ख्याति मिले, झंडा फहरा दूं हिंदू धर्म का दुनिया में। वह कोल्हापुर में ही नहीं फहरा पा रहे हैं झंडा! कोल्हापुर में ही कोई नहीं सुनता। कौन सुने! आखिर कुछ कोई एकाध बुद्धू बन जाए तो बन जाए।
इसलिए वह तुमने जो लिखा अजित कि वही देवी एक जिन्होंने उनका जीवन लिखा, वही उनकी शिष्या है, उसके ही अनुभव में ये सब चमत्कार हुए हैं... ।

अब ये चमत्कार सब ऐसे हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं! कि चमत्कार से पानी गिरा देते हैं! अगर चमत्कार से पानी गिरा सकते हो, तो इस देश की गरीबी मिटा दो। जहां पानी गिराना है वहां पानी नहीं गिरता इस देश में। जहां पानी नहीं गिराना है वहां पानी गिरता है। जहां पानी की जरूरत है वहां अकाल, दुष्काल, सूखा; और जहां पानी की जरूरत नहीं, वहां बाढ़। तो दत्ताबाल की तो बड़ी जरूरत है। यह तो चमत्कार कर दें! कुछ दिखाओ करके!
"और इच्छा-शक्ति से चीजों को हिलाते हैं।"
पहले कम से कम शरीर को तो ठहराओ!
परसों ही एक संन्यासिनी ने पत्र लिखा था कि उनका व्याख्यान हो रहा था, सोफा पर बैठे थे, डोलते थे, सोफा पर भी ठीक नहीं बैठ सकते थे। बाएं-दाएं डोल रहे थे। वह खुद ही नहीं डोल रहे थे, उनके पाजामा के दो फुंदे भी लटके थे नीचे, वे भी डोल रहे थे। सो उसने लिखा है कि तभी मुझे हंसी आ रही थी बड़ी कि पाजामा के फुंदे क्यों डोल रहे हैं?
अरे, डायबिटीज! पाजामा के फुंदों में भी आ गई होगी! सत्संग खराब चीज है! अब ऐसे आदमियों के सत्संग में पाजामा रहेगा तो बिगड़ेगा! वह पाजामा, कम से कम इच्छा-शक्ति से पाजामा के फुंदे तो ठहरा दो! फिर कुछ और ठहराना!
मगर नहीं, इस देश में इस तरह की मूढ़ताओं की बातों का खूब समादर होता है। अब वे अपना पेन ढूंढ़ने लगे, वही न मिले। इनको क्या खाक आत्मा मिली होगी! और इच्छा-शक्ति से ये दूसरों तक को ठीक कर दें और अपना पेन नहीं खोज पा रहे हैं! अरे, इच्छा-शक्ति से इतना तो करना था कम से कम कि अजित का पेन सरक कर उनकी जेब में पहुंच जाता। इतना ही करके दिखा देते! वह भी अजित को देना पड़ा।
और दस्तखत जो उन्होंने किए हैं, वह सिर्फ पागल के ही मालूम होते हैं। ऐसा घसीटा है कि कहीं मिट न जाएं, कि कहीं कोई मिटा न दे, फाड़ डाला पन्ने को! लोग दस्तखत भी करते हैं तो उसमें भी दंभ होता है।
अमरीका में तो एक अभिनेत्री शादी कर रही थी। जैसे ही रजिस्टर पर दोनों ने दस्तखत किए पति और पत्नी ने, उस अभिनेत्री ने मजिस्ट्रेट को कहा कि मुझे शादी नहीं करनी है, तलाक चाहिए, इसी वक्त तलाक चाहिए। मजिस्ट्रेट ने कहा, तू पागल है? अभी दस्तखत ही हुए हैं, अभी स्याही भी नहीं सूखी और तुझे तलाक चाहिए! उसने कहा, इसी वक्त! तलाक का फार्म कहां है? पर मजिस्ट्रेट ने पूछा, कारण तो मेरी समझ में आए। तुममें बात भी नहीं हुई, दोनों चुप ही हो अभी, दस्तखत ही पूरे हुए हैं! उसने कहा, बात समझने की जरूरत नहीं, जरा दस्तखत देखो! इस आदमी ने इतने जोर से दस्तखत किए हैं गड़ा-गड़ा कर और इतने बड़े-बड़े अक्षरों में किए हैं कि यह मुझे सताएगा! यह मुझे परेशान करेगा! यह मुझे नहीं चाहिए--यह आदमी चाहिए ही नहीं मुझे! अरे, पूत के लक्षण पालने में! इस कमबख्त ने दस्तखत तो देखो कैसे किए हैं? आधा पेज रजिस्टर का दस्तखत से भर दिया। यह इसकी अकड़ का सबूत है।
आदमी के छोटे-छोटे कृत्य में भी सबूत तो होते हैं। छोटी-छोटी बात में
भी लक्षण तो होते हैं। वह भीतर की बेचैनी दस्तखत तक में उतर आई है।
अब तुम पूछते हो कि "मैंने उनकी किताब पढ़ी, वह दंभ से भरी हुई है।" होगी ही। और तुम पूछते हो, "दत्ताबाल तो इतने भटके हुए भगवान हैं कि उनके बारे में आप कुछ भी कहते हैं तो उनका सम्मान ही होता है। मेरे देखे तो वे सिर्फ उपेक्षा-योग्य हैं।"
नहीं अजित, उपेक्षा-योग्य कोई भी नहीं। भगवान कितना ही भटका हो, है तो भगवान ही। नाली में पड़ा हो, गटर में सड़ रहा हो, तो भी उसको निकालना पड़ेगा, तो भी उसे बचाना पड़ेगा। तो जो भी बन सके, वह करना जरूरी है। वह प्रेम का लक्षण है। मैं अपने प्रेम के कारण ही बोलता हूं!
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
तीसरा प्रवचन

मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष और लब्ध हूं

पहला प्रश्नः
ओशो, पैंगल उपनिषद के अनुसार चार महावाक्य हैं।
पहलाः तत्वमसि, वह तू है; दूसराः त्वं तदसि, तू वह है; तीसराः त्वं ब्रह्मास्मि, तू ब्रह्म है; और चौथाः अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। ओशो, इन महावाक्यों के अर्थ और अर्थभेद बताने की अनुकंपा करें।

चिदानंद, उपनिषद सदगुरु और शिष्य के बीच शून्य में हुआ संवाद है।
आंखों-आंखों में बात हो गई है। हृदय ने हृदय पर गीत गाया है। न तो गुरु ने कुछ कहा है और न शिष्य ने कुछ सुना है, फिर भी गुरु ने सब कह दिया और शिष्य ने सब सुन लिया है।
गुरु के साथ तीन प्रकार के संबंध हो सकते हैं। विद्यार्थी का; तब गुरु केवल शिक्षक होता है। वहां वाणी आवश्यक है। संवाद जरूरी है। क्योंकि बात बुद्धि से बुद्धि तक होगी। वह सबसे ऊपरी नाता है। विद्यार्थी जिज्ञासु है, मुमुक्षु नहीं। जानना चाहता है, होना नहीं। होने के लिए तो न होने की तैयारी चाहिए। जानने में कुछ कीमत चुकानी नहीं पड़ती। जानकारी इकट्ठी करके और भी अहंकार को रस आता है। जैसे-जैसे जानकारी बढ़ती है वैसे-वैसे अहंकार और परिपुष्ट होता है।
इसीलिए तो उपनिषद कहते हैं कि अज्ञान तो थोड़ा ही भटकाता है, ज्ञान बहुत भटका देता है। अज्ञान ले जाता है अंधकार में, ज्ञान ले जाता है महाअंधकार में।
उपनिषद अनूठे हैं। पृथ्वी पर कहीं भी किसी काल, किसी देश में वैसी अपूर्व घटना नहीं घटी है। गुरु और शिष्य के बीच यह जो पहला नाता है, इसमें उपनिषद निर्मित नहीं होते। शास्त्र बन सकते हैं, तर्क निर्मित हो सकता है, दर्शन स्थापित हो सकता है, लेकिन बात ऊपर-ऊपर की ही रहेगी, भीतर की नहीं हो सकती।
दूसरा नाता है गुरु और शिष्य के बीच शिष्यत्व का। विद्यार्थी अब केवल पूछने में उत्सुक नहीं है; प्रश्न ही नहीं है, अब विद्यार्थी स्वयं प्रश्न बन गया। अब जानकारी इकट्ठी नहीं करनी है। अब जानना है। और जो भी कीमत चुकानी पड़े, चुकाने की तैयारी है। जानने में मिट भी जाना पड़े तो भी पीछे पैर नहीं लौटेगा। इतने साहस से ही विद्यार्थी का रूपांतरण शिष्य में होता है।
इसलिए नानक ने अपने सत्संगियों को सिक्ख कहा। वह पंजाबी रूपांतरण है शिष्य का।
शिष्य के साथ ही धर्म की शुरुआत है। विद्यार्थी दर्शन के जंगल में भटकता, शब्दों के जाल में अटकता, शिष्य सुलझने लगता, राह पाने लगता है। राह प्रेम की है, भटकाव तर्क का है। उलझाव बुद्धि का है, सुलझाव हृदय का है। जब ऊर्जा बुद्धि से हृदय में प्रवेश करती है तो विद्यार्थी रूपांतरित होता है। उसके भीतर आत्म-क्रांति घटित होती है। वह शिष्य होता है।
शिष्य और गुरु के बीच पहली बार कुछ सार्थक जन्म पाता है। उसके पहले तो बातचीत ही बातचीत थी। उसके पहले तो संभाषण था, अब कुछ गहराई में उतरना हुआ। अब चले उस प्रगाढ़ता की तरफ। जैसे नमक का पुतला सागर में डुबकी मारे थाह का पता लगाने को, थाह मिलते-मिलते खुद भी खो जाए; थाह मिले, लेकिन खुद न बचे। शिष्य करीब सरकने लगा गुरु के। कुछ-कुछ, दूर जैसे कोयल बोले, ऐसे गुरु की बात समझ में आनी शुरू होगी। शब्द अब भी गुरु बोलेगा, लेकिन शिष्य अब शब्दों के बीच में जो खाली जगह है वह सुनेगा। वह जो विराम है, वह जो विश्राम है, ज्यादा महत्वपूर्ण हो उठेगा। शब्द उसको उभारने के काम में आएंगे। शब्द उसे पृष्ठभूमि देंगे। अभी शब्दों की जरूरत रहेगी, लेकिन बड़ी बदली हुई जरूरत।

विद्यार्थी सिर्फ शब्द को सुनता था, लकीरों को पढ़ता था, शिष्य शब्दों
के बीच में जो शून्य है, उसे गुनता है; पंक्तियों के बीच में जो रिक्त स्थान है, उसे सुनता है। गुरु क्या कहता है, यह कम महत्वपूर्ण है, गुरु क्या है, यह ज्यादा महत्वपूर्ण होने लगता है। यह नाता प्रेम का है। यह मामला तर्क, समझ, गणित के पार गया।
इसलिए विद्यार्थी तो दुनिया में सब जगह हुए हैं--स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय विद्यार्थियों से भरे हुए हैं--लेकिन शिष्य कभी-कभी हुए हैं। किसी जीसस के पास, किसी बुद्ध के पास, किसी नानक के पास, किसी कबीर के पास, शिष्य कभी-कभी हुए हैं। शिष्य होने के लिए अहंकार को छोड़ने का साहस चाहिए। क्योंकि जब तक अहंकार है तब तक प्रेम नहीं।
और तीसरा जो संबंध है गुरु और शिष्य के बीच उसे संबंध भी कैसे कहें? क्योंकि जहां दो न बचे वहां कैसा संबंध? मगर वही परम संबंध है। विद्यार्थी से जो यात्रा शुरू हुई थी, वह उसी परम संबंध पर जाकर समाप्त होती है। शिष्य का तो पड़ाव है। इसलिए तीसरा जो रूप है, वह भक्त का है।
विद्यार्थी बाहर-बाहर, परिधि पर, भक्त केंद्र पर; दोनों के मध्य में शिष्य। शिष्य को शब्दों की जरूरत होती है--विद्यार्थी को सिर्फ शब्दों की जरूरत होती है, शिष्य को शब्दों की और शब्दों के साथ शून्य की जरूरत होती है। भक्त को शब्दों की कोई जरूरत नहीं रह जाती, शून्य पर्याप्त होता है। उपनिषद प्रारंभ होता है शिष्य के साथ और पूर्ण होता है भक्त के साथ। बुद्धि विद्यार्थी बनाती है, हृदय शिष्य बनाता है, और हृदय से भी गहरा जो तुम्हारे प्राणों का प्राण है, तुम्हारी आत्मा है, वह भक्त बनाती है। भक्त का संबंध आत्मीय है। संबंध नहीं कहना चाहिए। मजबूरी है भाषा की, इसलिए संबंध कह रहा हूं। दो तो मिट गए, दुई गई, अब तो न गुरु है न शिष्य है, एक सन्नाटा है, एक शून्य है, जिसमें दोनों लीन हैं। और तभी असली गुफ्तगू है। वहीं उपनिषद घटे हैं।
उपनिषदों में सच में ही महावाक्य हैं। महावाक्य कहते हैं उन वाक्यों
को जो महाशून्य में घटे हों। अनुकंपा है कि किन्हीं ने उन्हें संकलित कर लिया है।
ये चारों महावाक्य बड़े महत्वपूर्ण हैं। पहले तीन, गुरु ने शिष्य से कहे हैं; चौथा, शिष्य समझा है गुरु ने जो कहा है, उसे जीआ है, पहचाना है और अपने पहचान की उदघोषणा की है। चौथा वक्तव्य शिष्य का है। तीन वक्तव्य गुरु के हैं। तीन में गुरु तैयारी करवा रहा है, चौथे में शिष्य ने उदघोषणा की अपनी तैयारी की।
पहला हैः "तत्वमसि, वह तू है।" दूसराः "त्वं तदसि, तू वह है।" तीसराः "त्वं ब्रह्मास्मि, तू ब्रह्म है।" और चौथाः "अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं।"
तीन गुरु के द्वारा कहे गए वचन हैं--सीढ़ियां--चौथा मंदिर में प्रवेश है। जो चला था खोजी, वह आ गया मंजिल पर। मंजिल पर आने की घोषणा की है उसने गुरु को। यह उसका निवेदन है गुरु के चरणों में कि जो आपने कहा था, जाना, चखा, पीआ, हुआ--"अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूं।"
फिर ये जो तीन पहले वचन हैं, इनमें भी क्रम है। पहलाः "तत्वमसि, वह तू है।"
जोर है वह पर। ताकि तू मिट सके। तू को मिटाना है। जितना तू गलेगा, जितना तू मिटेगा, उतना वह विराट होगा, प्रकट होगा प्रखर रूप से, उदघाटित होगा, अनावृत होगा। तू में आच्छादित है। तू को हटाना है, ताकि उसे निर्बाध जाना जा सके।
इसलिए पहला सूत्र हैः "तत्वमसि, वह तू है।"
याद रख, वह है, असली वह है, तू तो बस छाया है। तू उसकी छाया, उसका प्रतिबिंब। वह आकाश में ऊगा पूर्णिमा का चांद, तू झील में बनी उसकी छाईं, परछाईं। जोर वह पर है।
जब गुरु देखता है कि बात समझ में आ गई, तू खो गया, वह ही शेष रहा, तब दूसरे महावाक्य की उदघोषणा हैः "त्वं तदसि, तू वह है।"
अब जोर तू पर है। क्योंकि जब तू न रहा, तो वही रहा। जब तू न रहा, तब उसके सिवाय और क्या बचा? तो कहीं भ्रांति न हो जाए कि मुझे छोड़ कर और सब ब्रह्म

है। उस भ्रांति को न बनने देने के लिए दूसरा महावाक्य है कि मत घबड़ा; अब तू नहीं है इसलिए इस योग्य हुआ है कि तुझसे कहा जा सकता है कि तू भी वही है। चिंता न कर, यूं न सोच कि और सब परमात्मा है मुझे छोड़ कर। जब सब वही है, तो तू भी सबमें सम्मिलित है। सम्मिलित ही नहीं है, अब यह भी कहा जा सकता है कि तू प्रथम है। क्योंकि सारी यात्रा अपने से ही शुरू होगी। यह जरा बारीक और नाजुक बात है, सूक्ष्म है। जब तू मिट जाए तो फिर तू की बात की जा सकती है। फिर कोई अड़चन नहीं है, फिर कुछ हर्जा नहीं है।
"त्वं तदसि, तू वह है।"
लेकिन अभी इन दोनों महावाक्यों में वह शब्द का प्रयोग हुआ है। वह शब्द दूरी का प्रतीक है। जैसे हम किन्हीं वस्तुओं की बात कर रहे हों, तटस्थ; जैसे अभी जीवंत ब्रह्म की बात नहीं छेड़ी, अभी थोड़ी-सी दूरी बचा रखी है--कहीं भी कोई खतरा न हो जाए। गुरु तो फूंक-फूंक कर कदम रखता है। खतरे की बहुत संभावना है। क्योंकि हम सदियों-सदियों से, जन्मों-जन्मों से भ्रांति में जीए हैं। हम भ्रांतियों में लिपटे हैं। हमारे रोएं-रोएं में भ्रांति समाई हुई है। हमें धोना है, निखारना है, साफ करना है गुरु को।
कबीर ने कहा है, गुरु तो रंगरेज है। मगर इसके पहले कि वह रंगे, सफाई करेगा, धोएगा, निखारेगा, गंदगी वस्त्र की दूर करेगा। साफ-स्वच्छ हो जाए वस्त्र तो ही रंगा जाए; तो ही रंग अपनी परिपूर्णता में प्रकट होंगे।
जब ये दो बातें पूरी हो गईं, यह बात साफ हो गई कि शिष्य समझ गया कि वह नहीं है, स्वयं नहीं है, अस्तित्व है, तो उससे दूसरी बात कही कि भय मत कर, तू भी वह अस्तित्व है। मगर अभी वह का प्रयोग किया जा रहा है। जब यह भी बात समझ में आ गई कि अस्तित्व, वह सब कुछ है, तो अब बात को थोड़ा और गहराया जा सकता है। अब थोड़ा और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म में प्रवेश कराया जा सकता है। "त्वं ब्रह्मास्मि।" वह ही नहीं है तू, ब्रह्म भी तू है।
ब्रह्म का अर्थ होता हैः अब हमने वह को व्यक्तित्व दिया। वह को चेतना
दी, वह को जीवन दिया। अब वह कोई वस्तु न रही, कोई मंदिर की प्रतिमा न रही, अब तटस्थ रहने की कोई जरूरत न रही, अब तैयारी इतनी है कि हम उसको व्यक्ति की भांति स्वीकार कर सकते हैं। अब उसे निर्विकार, निराकार ऐसा कहने की कोई जरूरत नहीं है; वह तो खतरा था तुम्हारे साथ।
अगर पहले यह कहा जाता तो मंदिर की मूर्ति पकड़ जाती। अगर पहले तुमसे कहा जाताः त्वं ब्रह्मास्मि, कि तुम ब्रह्म हो, तो बड़ी अकड़ आ जाती। तब तो भ्रांति होने वाली थी। लेकिन क्रम से, आहिस्ता-आहिस्ता, नेति-नेति, धीरे- धीरे; जैसे कि मूर्तिकार मूर्ति को गढ़ता है। छैनी उठा कर धीरे-धीरे पत्थर को तोड़ता है। जो-जो अनावश्यक है, अलग करता जाता है, तब जो प्रकट हो जाती है मूर्ति। ऐसे तो वह छिपी ही पड़ी थी, पत्थर में छिपी थी, लेकिन अनावश्यक से जुड़ी थी। अनावश्यक अलग हो गया, अब मूर्ति अपनी प्रगाढ़ता में प्रकट हो गई है। अब मूर्ति बन सकती है। अब हम वह शब्द का प्रयोग न करें, अब अस्तित्व को अस्तित्व कहना उचित नहीं, अब प्रकृति कहना उचित नहीं, अब परमात्मा शब्द को लाया जा सकता है।
देखना, कितनी समझपूर्वक एक-एक सूत्र आगे बढ़ रहा है! इससे नास्तिक भी बेचैन नहीं होगा। दो सूत्रों से तो नास्तिक भी राजी हो जाएगा। अस्तित्व के सूत्र हैं, परमात्मा की बात ही नहीं उठाई है अभी। तार्किक भी राजी हो जाएगा। क्योंकि अस्तित्व तो है, यह तो दिखाई ही पड़ रहा है, और मैं भी अस्तित्व हूं, सभी कुछ अस्तित्व है। अस्तित्व यानी समग्रता का नाम।
इन दो सूत्रों से कार्ल मार्क्स को एतराज नहीं होगा, चार्वाकों को एतराज नहीं होगा, इपिकुरस को एतराज नहीं होगा; पदार्थवादी को, विज्ञानवादी को, भौतिकवादी को, किसी को एतराज नहीं होगा। और प्रथमतः सभी लोग वहीं हैं, उसी अवस्था में हैं।
तीसरा सूत्र तो केवल उससे कहा जा सकता है, जिसने दो सूत्र पूरे कर लिए हों।
"त्वं ब्रह्मास्मि।"
अब गुरु आहिस्ता से कहता हैः अब तू पते की बात सुन! अस्तित्व कोई जड़ पदार्थ मात्र नहीं है, ब्रह्म है, चिदानंद है, चैतन्य है। त्वं ब्रह्मास्मि का अर्थ हुआः तू शरीर नहीं है, तू मन नहीं है, तू आत्मा है।

ये तीन घोषणाएं गुरु की। फिर गुरु प्रतीक्षा करता है। जब शिष्य समझ लेता है, और समझ का यहां अर्थ होता है कि जब पी लेता है, जब डोलने लगता है, जब मस्ती में आ जाता है--तब उसके भीतर से उदघोष होता है--वह उदघोष करता नहीं, उदघोष होता हैः "अहं ब्रह्मास्मि!" अनलहक! मैं ब्रह्म हूं!
इन्हें महावाक्य कहा है, क्योंकि इन चार वाक्यों में सब शास्त्र आ जाते हैं। कुछ शेष नहीं बचता। क्या शेष बचा अब और?
लेकिन शर्तें समझ लेनाः मैं जाए, तो ही संभावना है यह जानने की कि मैं कौन हूं। मैं जाए, तो ही ब्रह्म आए। और फिर अदभुत अवस्था हो जाती है। सहजानंद ने पूछा है कि संन्यास उपनिषद में यह श्लोक मिलता है। यह श्लोक, भगवान, बड़ा अटपटा है। यह कैसी आराधना है? क्या इसका अभिप्रेत हमें बताने की कृपा करेंगे?
अगर तुमने यह चिदानंद का पहला प्रश्न समझा तो दूसरे प्रश्न का अर्थ अपने आप प्रकट हो जाएगा।
संन्यास उपनिषद में यह अपूर्व श्लोक है। निश्चित अटपटा लगता है।
क्योंकि वे चार महावाक्य अभी पूरे नहीं हुए, तो अटपटा लगेगा ही।
आत्मन्ेऽस्तु नमस्तुभ्यमविच्छिन्न चिदात्मने।
परासृष्टोऽस्मि बुद्धिऽस्मि प्रोदितोऽस्म्यस्यचिरादहम्।।
उद्धृतोऽस्मि विकल्पेभ्यो योऽस्मि सोऽस्मि नमोऽस्तुते।
तुभ्यं मह्यमनन्ताय तुभ्यं मह्यं चिदात्मने।
नमस्तुभ्यं परेशाय नमो मह्यं शिवाय च।।
मुझ अविच्छिन्न रूप आत्मा को नमस्कार है। मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष, लब्ध और उदित हूं। मैं विकल्पों से रहित हूं; मैं जो हूं, सो हूं, मुझे नमस्कार है। तू और मैं अनंत हैं, मैं और तू चिदात्मा हैं; (दोनों को) नमस्कार है। मुझ परमेश्वर और मुझ शिव रूप को नमस्कार है।
सहजानंद ठीक ही पूछते हैं कि कैसा अटपटा सूत्र है! मुझको ही नमस्कार है! यह कोई बात हुई! यह तो बड़े अहंकार की घोषणा मालूम पड़ती है।
"मुझ अविच्छिन्न रूप आत्मा को नमस्कार है।"
संत नानक और कबीर के समय एक जैन फकीर हुए, संत तारण। उन्होंने एक पूरा
का पूरा शास्त्र ही लिखाः आत्म-पूजा। अपनी ही पूजा। अपनी ही उतारनी है आरती। धूप-दीप जलाना अपने लिए। फूल चढ़ा लेना अपने ही सिर पर।
यूं तो पागलपन लगेगा, लेकिन अगर चार महासूत्र समझ में आ गए तो फिर पागलपन नहीं लगेगा, फिर तो यह बड़ा प्यारा सूत्र है। क्योंकि कौन नमस्कार करे और किसको नमस्कार करे? यहां एक ही है। वही नमस्कार करने वाला है, उसी को नमस्कार किया जाना है। वही एक दो में बंट कर खड़ा है।
इसीलिए तो इस देश ने नमस्कार का एक अदभुत ढंग निकाला। दुनिया में वैसा कहीं भी नहीं है। इस देश ने कुछ दान दिया है मनुष्य की चेतना को, अपूर्व! यह अकेला देश है जहां जब दो व्यक्ति नमस्कार करते हैं तो दो काम करते हैं। एक तो दोनों हाथ जोड़ते हैं। दो हाथ जोड़ने का मतलब होता हैः दो नहीं हैं, एक। दो हाथ दुई के प्रतीक हैं, द्वैत के प्रतीक हैं। उन दोनों को जोड़ लेते हैं कि दो नहीं हैं, एक ही है। उस एक का ही स्मरण दिलाने के लिए दोनों हाथों को जोड़ कर नमस्कार करते हैं। और, दोनों हाथ जोड़ कर जो भी शब्द उपयोग करते हैं, वह परमात्मा का स्मरण होता है। कहते हैंः राम-राम, जयराम, या कुछ भी, लेकिन वह परमात्मा का नाम होता है। दो को जोड़ा कि परमात्मा का नाम उठा। दुई गई कि परमात्मा आया। दो हाथ जुड़े और एक हुए कि फिर बचा क्या; हे राम!
दुनिया में नमस्कार के बहुत ढंग हैं। कहीं हाथ मिला कर लोग नमस्कार करते हैं, कहीं नाक से नाक रगड़ कर नमस्कार करते हैं। और भी पहुंचे हुए लोग हैं--जीभ से जीभ मिला कर नमस्कार करते हैं। कहीं कहते हैं शुभ संध्या या शुभ प्रभात--गुड मार्निंग या गुड इवनिंग।
लेकिन यह देश अकेला है जो दूसरे को छूता ही नहीं, सिर्फ अपने दोनों हाथों को जोड़ देता है। ऐसे एक की उदघोषणा कर देता है और फिर राम का स्मरण करता है। और जय भी बोलता है तो राम की। क्या सुबह की बात करनी! क्या सांझ की बात करनी! सुबहें आती हैं, सांझें आती हैं; सुबहें जाती हैं, सांझें जाती

हैं; जो सदा टिका है वह राम है। उसी में सुबह होती है, उसी में सांझ होती है, उसकी बात कर ली तो सबकी बात कर ली। उस एक को मांग लिया तो सब मांग लिया।
एक सम्राट विजय-यात्रा को निकला। सारी दुनिया को विजय करके जब लौटता था, तो उसकी सौ पत्नियां थीं, उसने खबर भिजवाई कि जिसकी जो मांग हो, उसके लिए मैं वही ले आऊं। निन्यानबे पत्नियों ने अपनी-अपनी मांगें भेजीं। किसी ने कहा कोहिनूर ले आना और किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। एक पत्नी ने सिर्फ इतनी खबर भेजी कि तुम जल्दी घर लौट आओ, बस! और क्या चाहिए, तुम आ गए तो सब आ गया!
सम्राट सभी के लिए लाया जो जिसने मांगा था। जिन्होंने कोहिनूर मांगे थे, उनके लिए कोहिनूर, हीरे-जवाहरात, सोने-चांदी के जेवर--जो जिसने मांगा था, सबके लिए ले आया। सबको दे दिए। लेकिन गया उस पत्नी के पास जिसने सिर्फ उसे ही मांगा था।
वे निन्यानबे रानियां हैरान हुईं और उन्होंने कहा कि आप आए इतने लंबे दिनों बाद, क्या कारण है कि आप उस एक पत्नी को सौ में से चुन रहे हैं? वह सबसे सुंदर भी नहीं है। वह सबसे युवा भी नहीं है। सम्राट ने कहा, उसका कारण है कि उसने भर मुझे मांगा। तुमने कुछ और मांगा। तुम्हारा मेरा नाता वस्तुओं का नाता। उसका मेरा नाता हृदय का नाता। तुमने जो मांगा, तुम्हें मिल गया। उसने जो मांगा, मुझे उसे देने दो।
क्या सुबह की जय बोलें! क्या सांझ की जय बोलें! जय बोलनी तो उस एक की बोलनी। मगर वह एक पूजा करने वाले में विराजमान है और जिसकी तुम पूजा करते हो उसमें विराजमान है। इस परम उदघोषणा को यह संन्यास उपनिषद का सूत्र कह रहा है--
आत्मन्ेऽस्तु नमस्तुभ्यमविच्छिन्न चिदात्मने।
"मुझ अविच्छिन्न रूप आत्मा को नमस्कार है।"
अटपटा लगेगा, क्योंकि वे चार महाकाव्य अभी पूरे नहीं हुए। अभी अहं ब्रह्मास्मि की घड़ी नहीं आई, इसलिए अटपटा लगेगा। नहीं तो बात बिल्कुल सीधी-साफ है।
परासृष्टोऽस्मि बुद्धिऽस्मि प्रोदितोऽस्म्यस्यचिरादहम्।।
"मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष, लब्ध और उदित हूं।"
क्या प्यारे शब्द हैं! "मैं सदैव परम!" मुझसे ऊपर और कुछ भी नहीं। मगर "मैं" छूटे, तुम यह तभी जान पाओगे कि मुझसे ऊपर और कुछ भी नहीं। यह "मैं" की अकड़ बन जाए तो तुमसे नीचे और कुछ भी नहीं। यह मैं की घोषणा हो तो मैं से नीचे और कुछ भी नहीं।
मैं एक अदभुत सीढ़ी है। इसी से नर्क में भी उतर सकते हो, इसी से स्वर्ग में भी प्रवेश कर सकते हो। एक ही सीढ़ी है, एक छोर नर्क में लगा है, एक छोर स्वर्ग में लगा है।
"मैं सदैव परम।"
जहां "मैं" नहीं हो, जैसे-जैसे "मैं" को छोड़ते गए, वैसे-वैसे परम अवस्था आती चली गई।
"प्रत्यक्ष... ।"
यह शब्द तो बहुत सोचने जैसा है। तुम और सारी चीजों को कहते हो, तुम कहते हो कि मैंने अपनी आंख से देखा, चश्मदीद गवाह हूं, यह बात मेरे सामने हुई, बिल्कुल प्रत्यक्ष में हुई। परोक्ष हम कहते हैं जो हमने न देखा; किसी ने कहा। किसी ने तुमसे कहा कि रास्ते पर दो कारें टकरा गईं। यह परोक्ष हुआ। पर के द्वारा खबर मिली। माध्यम से खबर मिली। भरोसे का माध्यम हो तो तुम भरोसा कर लो, भरोसे का माध्यम न हो तो न करो। लेकिन चाहे भरोसा करो चाहे न करो, एक बात साफ रखना कि तुमने नहीं देखा। प्रत्यक्ष नहीं है यह। तुम्हारी आंख के सामने नहीं हुआ।
लेकिन तुम्हारी आंख के सामने भी हो तो भी क्या जरूरी है तुम वही देखो
जो हो रहा है?
एडमंड बर्क बहुत बड़ा इतिहासज्ञ हुआ। वह विश्व का इतिहास लिख रहा था। उसने इतिहास लिखने में कोई बीस-बाईस वर्ष खर्च किए थे। और बाईसवें वर्ष यह घटना घटी कि उसके घर के पीछे हत्या हो गई। वह भागा हुआ पहुंचा--शोरगुल सुना, लाश पड़ी थी, अभी आदमी ठंडा भी नहीं हुआ था, अभी खून गर्म था, हत्यारा

पकड़ लिया गया था, उसके हाथ में रंगीन छुरा था खून से लहूलुहान, उसके शरीर पर भी खून के दाग थे, राह पर खून की धार बह रही थी और सैकड़ों लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। बर्क पूछने लगा लोगों से कि क्या हुआ? एक ने एक बात कही, दूसरे ने दूसरी बात कही, तीसरे ने तीसरी बात कही। जितने मुंह उतनी बातें। और वे सभी चश्मदीद गवाह थे। उन सबने अपनी आंख के सामने यह घटना देखी थी।
बर्क बड़ी मुश्किल में पड़ गया। बर्क बड़ी चिंता में पड़ गया। वह घर के भीतर गया और उसने बाईस साल मेहनत करके जो इतिहास लिखा था उसमें आग लगा दी। उसने कहा, मेरे घर के पीछे हत्या हो, आंख से देखने वाले लोगों का समूह हो, और एक आदमी दूसरे से राजी न हो कि हुआ क्या, कैसे हुआ, हर एक की अपनी कथा हो--और मैं इतिहास लिखने बैठा हूं सारी दुनिया का! प्रथम से, शुरुआत से! क्या मेरे इतिहास का अर्थ?
हम वही देख लेते हैं जो हम देखना चाहते हैं। उसमें कोई हत्यारे का मित्र था, उसे बात कुछ और दिखाई पड़ी। उसमें कोई जिसकी हत्या की गई थी उसका मित्र था, उसे कुछ बात और दिखाई पड़ी। जो तटस्थ था, उसे कुछ बात और दिखाई पड़ी। सब प्रत्यक्ष गवाह थे। मगर क्या गवाही दे रहे थे!
उपनिषद के हिसाब से, समस्त जाग्रत पुरुषों के हिसाब से प्रत्यक्ष तो सिर्फ एक चीज है, वह तुम्हारी आत्मा है। बाकी सब परोक्ष है। क्यों? क्योंकि मन खबर देगा न! मन तो बीच में आ जाएगा, मन पर है। मन कहेगा, ऐसा हुआ। मन व्याख्या करेगा।
बुद्ध ने एक रात समझाया लोगों को कि तुम जितने लोग यहां हो उतनी ही बातें सुन रहे हो। बोलने वाला तो मैं एक हूं, लेकिन चूंकि सुनने वाले अनेक हैं, इसलिए बातें अनेक हो जाती हैं। जैसे एक ही आदमी खड़ा हो और बहुत दर्पण लगे हों, तो बहुत तस्वीरें बनेंगी। फिर दर्पण-दर्पण अपने ढंग से तस्वीर बनाएगा।
तुमने कभी वे दर्पण देखे होंगे किसी सर्कस में, किसी म्यूजियम में, कोई दर्पण तुम्हें लंबा कर देता है, कोई मोटा कर देता है, कोई छोटा कर देता है, कोई तिरछा कर देता है। किसी में तुम अष्टावक्र मालूम पड़ते हो। किसी में आदमी कम, ऊंट ज्यादा मालूम पड़ते हो। किसी में एकदम बिजली का खंबा हो जाते हो। और किसी में इतने मोटे, इतने ठिगने, कि तुम्हें भरोसा ही न आए कि यह क्या हुआ? और सभी दर्पण हैं। और सभी एक ही कक्ष में सजे हैं। सब अलग-अलग बता रहे हैं।
मन तो दर्पण है। और हर एक के पास अलग मन है।
बुद्ध ने कहा, जितने तुम यहां लोग हो, उतनी ही बातें सुन रहे हो। दूसरे दिन सुबह आनंद ने पूछा कि यह बात मेरी कुछ समझ में आई नहीं। जब आप कहने वाले एक हैं और शब्द आपके हम सुन रहे हैं, तो वही शब्द तो सुनेंगे न जो आपने कहे हैं!
बुद्ध ने कहा, पागल, तू यूं समझ! कल रात--तू जा पता लगा ले--कल रात की सभा में जब मैंने यह कहा तो मेरे जो भिक्षु थे, उन्होंने एक बात समझी; एक चोर भी आया था, उसने दूसरी बात समझी; एक वेश्या भी आई थी, उसने तीसरी बात समझी।
बुद्ध का नियम था कि रोज रात को प्रवचन के अंत में वे कहते थे, अब जाओ, दिन का अंतिम कार्य पूरा करो। भिक्षुओं ने समझा कि अब जाएं और ध्यान करें; क्योंकि वह दिन का अंतिम कार्य था। समाधिस्थ हों और फिर उसी समाधि में डूबते-डूबते निद्रा में डूब जाएं। ध्यान करते-करते नींद में उतर जाना सारी नींद को समाधि बना लेना है। तो छह घंटे सोओ, आठ घंटे सोओ, वे आठ घंटे परम समाधि में गए। तुमने उनका उपयोग कर लिया। तुमने नींद को भी व्यर्थ न जाने दिया। लोग तो यहां जागरण को भी व्यर्थ जाने दे रहे हैं, तुमने नींद का भी उपयोग कर लिया। तुमने नींद के समय में भी अमृत ढाल लिया।
तो मेरे भिक्षुओं ने, बुद्ध ने कहा, समझा कि अब हम उठें; वे उठे कि अब जाएं ध्यान करें, सोने का समय हो गया। चोर एकदम से चौंका, उसने कहा कि मैं भी कहां की बातों में पड़ा हूं! अरे, जाऊं अपने काम में लगूं! और वेश्या ने कहा कि अदभुत हैं ये बुद्ध भी! इन्हें कैसे पता चल गया कि मैं भी आई हुई हूं? क्या कहते हैं कि जाओ, अपने काम में लगो! अब अपना आखिरी काम करो!

वेश्या अपने धंधे पर गई, चोर अपने धंधे पर गया, भिक्षु अपने धंधे पर चले गए।
बुद्ध ने आनंद से कहा, तू न माने तो जाकर पूछ ले। आनंद बड़ा जिज्ञासु था! वह अंत तक विद्यार्थी बना रहा। बहुत साथ रहा बुद्ध के, लेकिन शिष्यत्व सधा उसका बुद्ध की मृत्यु के बाद। कभी-कभी निकटता भी बाधा हो जाती है। आदमी बड़ा अजीब है! कभी-कभी दूरी सहयोगी हो जाती है, निकटता बाधा हो जाती है। वह चचेरा भाई था बुद्ध का। यही खतरा हो गया। चचेरा भाई ही नहीं था, बड़ा भाई भी था। तो वह अकड़ उसमें बनी ही रही कि अरे, है तो मेरा ही भाई! और फिर मैं बड़ा भाई! दोनों साथ पढ़े, दोनों साथ बढ़े; शिकार खेला, लड़े-झगड़े; कभी उसने बुद्ध को चारों खाने चित भी कर दिया होगा। भाई ही थे! एक ही महल में बड़े हुए थे।
फिर बुद्ध जब ज्ञान को उपलब्ध हुए, तब भी उसने अपनी अकड़ न छोड़ी। आया तो, झुका तो, लेकिन झुकने के पहले उसने कहा कि तू सुन; सिद्धार्थ, तू सुन! जब तक मैं तेरा भिक्षु नहीं हुआ हूं तब तक मैं तेरा बड़ा भाई हूं, तू मेरा छोटा भाई है; तब तक मैं जो कहूं, उसको सुन और मैं जो कहूं, उसको मान। फिर तो मैं भिक्षु हो जाऊंगा, तेरा शिष्य हो जाऊंगा, फिर पुराना नाता तो समाप्त हो जाएगा, फिर मैं तेरी सुनूंगा और तेरी मानूंगा। इसके पहले कुछ बातें तय हो जानी चाहिए। देख, ये मेरी कुछ शर्तें हैं।
पहली शर्त तो यह कि भिक्षु हो जाने के बाद मुझे कभी तू अपने से दूर न भेज सकेगा। यह मेरी आज्ञा है। तू छोटा भाई है, तुझे माननी ही होगी। तू मुझे कभी भेज न सकेगा दूर। तू यह न कह सकेगा कि आनंद, अब तू जा और कहीं प्रचार कर, प्रसार कर। मैं तो साथ ही रहूंगा। दूसरी बात, मैं तो उसी कमरे में सोऊंगा जिसमें तू सोएगा। मैं रत्ती-पल को भी दूर नहीं होना चाहता। तीसरी बात, मैं जो भी पूछूंगा, उसका तुझे उत्तर देना होगा। जैसा तू औरों से कहता है कि साल भर बाद पूछना, कि दो साल चुप रहो, फिर पूछना, यह मेरे साथ न चलेगा। आखिर मैं तेरा भाई! आखिर तेरा बड़ा भाई! और चौथी बात कि अगर आधी रात को भी मैं किसी को ले आऊं, तो तुझे मिलना पड़ेगा। क्योंकि मैं तेरे साथ रहूंगा, लोग मुझसे प्रार्थना करेंगे कि मिलवा दो; अगर मुझे लगा कि किसी को मिलवाना जरूरी है, तू मुझे रोक न सकेगा। आधी रात जगा कर भी, तो भी तू यह न कह सकेगा कि यह क्या करते हो? ये चार तू वचन दे दे; फिर मैं दीक्षा ले लेता हूं, फिर मैं समर्पण कर देता हूं।
तो बुद्ध ने ये चार वचन दिए। उनकी करुणा, इसलिए चार वचन दिए, कि चल, इस बहाने ही सही, मगर तू दीक्षित तो हो, फिर पीछे निपट लेंगे। मगर वह अकड़ जो बनी रही बनी रही। बुद्ध के जीते-जी न मिटी। वह जिज्ञासु ही रहा, विद्यार्थी ही रहा; ज्यादा से ज्यादा नाता उसका उतना ही बना।
उसने पूछा जाकर--आम्रपाली नाम की वेश्या के पास गया जो रात आई थी और उसने पूछा कि क्या तेरे मन में ऐसा हुआ था? आम्रपाली ने कहा, यह तो हद हो गई। एक तो उन्हें कैसे पता चला कि मैं आई हूं! और यह कैसे पता चला कि मेरे मन में भी ये विचार उठे! सच कहते हैं वे। यही विचार उठे। जैसे ही उन्होंने कहा कि जाओ, अब रात्रि का अंतिम कार्य करो, मैं एकदम कपड़े झाड़ कर खड़ी हो गई। मैंने कहा, मैं भी कहां रात गंवाए दे रही हूं, प्यारी रात है, ग्राहक आ गए होंगे।
आम्रपाली बड़ी सुंदरी थी। नगरवधू थी। दूर-दूर से राजा और सम्राट उसके द्वार पर आते थे। वह अपने रथ पर बैठी और वापस गई। और सच में वहां मेहमान खड़े थे आकर। गुहार मची थी कि आम्रपाली कहां है? आज कहां गई आम्रपाली? आनंद ने जब उससे जाकर यह पूछा कि क्या तेरे मन में ऐसा हुआ था और उसने कहा, हां, हुआ था, तो आनंद के साथ-साथ वह खुद भी आई बुद्ध के चरणों में, उसने दीक्षा ले ली। उसने कहा कि आपने रात भी मुझे पहचान लिया और पकड़ लिया। और इतना ही नहीं कि बाहर से पहचाना और पकड़ा, भीतर से भी पहचाना और पकड़ा। अब इन चरणों के सिवाय मेरे लिए कहीं और कोई शरण नहीं है। अब कहीं नहीं जाना है। अब सब धंधा समाप्त; अब सब काम समाप्त। मुझ अपात्र को स्वीकार कर लें। आनंद तो उस चोर के पास भी गया। और वह चोर भी दीक्षित हो गया। और आनंद
ने बुद्ध से कहा कि आपने भी हद कर दी! कहीं ऐसा तो नहीं है कि मुझे जो यह जो जिज्ञासा हुई कि मैं जा-जा कर पूछूं इस चोर से, इस वेश्या से, वह भी आपकी ही

तरकीब रही हो! क्योंकि ये दोनों आ गए और डूब गए! और मैं तो अभी भी किनारे पर खड़ा हूं सो किनारे पर खड़ा हूं! भौचक्क, कि यह क्या हुआ, कैसे हुआ?
वह आखिर तक भौचक्क रहा।
प्रत्यक्ष तो सिर्फ आत्मा ही हो सकती है। शेष सब में तो मन आ जाएगा। इसलिए यह सूत्र प्यारा हैः "मैं सदैव परम, प्रत्यक्ष, लब्ध!"
क्या अदभुत बात है! लब्ध अर्थात सदा उपलब्ध। ऐसा एक क्षण भी न था जब तुम परमात्मा न थे। ऐसा एक भी क्षण कभी नहीं होगा जब तुम परमात्मा न होओगे। अभी भी तुम परमात्मा हो--जानो, न जानो! पहचानो, न पहचानो! भूलो, भटको! मगर बदल नहीं सकते। लाख उपाय करो, तुम जो हो सो हो।
यह संन्यास उपनिषद का श्लोक कहता हैः "लब्ध और उदित हूं।"
और भीतर सूर्य निकला ही हुआ है। जरा आंख भीतर ले जाओ, और रोशनी ही रोशनी है। कहीं कोई अंधकार नहीं है।
"मैं विकल्पों से रहित हूं; मैं जो हूं सो हूं"--उससे अन्यथा न हुआ हूं,
न हो सकता हूं--"मुझे नमस्कार है।"
अब ऐसी अदभुत रहस्य की अनुभूति को नमस्कार न करोगे? क्या सिर्फ इस कारण रुक जाओगे कि कैसे अपने को नमस्कार करूं? अरे, कहां अपना, कहां पराया, ऐसी अपूर्व अनुभूति को तो नमन करना ही होगा, झुकना ही होगा।
"तू और मैं अनंत हैं, मैं और तू चिदात्मा हैं; (दोनों को) नमस्कार है। मुझ परमेश्वर और मुझ शिवरूप को नमस्कार है।"
अगर उपनिषद के चार महावाक्य समझ में आ गए, तो फिर संन्यास उपनिषद का
यह अटपटा-सा सूत्र भी कठिन नहीं रह जाता है। इन पर ध्यान करना। इनमें डूबना। इनमें सीढ़ी-सीढ़ी उतरना। क्योंकि यही है मार्ग।
और जब तक इस मार्ग पर कोई चले न और जब तक अहं ब्रह्मास्मि की अंतिम उदघोषणा न हो जाए, तब तक अतृप्ति रहेगी, असंतोष रहेगा, विषाद रहेगा, संताप रहेगा; तब तक नर्क है और नर्क ही रहेगा। इस उदघोषणा के साथ ही तुम्हारे जीवन के फूल खिल जाएंगे, सुगंध ही सुगंध हो जाएगी, वीणा बज उठेगी; अनाहत का नाद होने लगेगा, अमृत की झड़ी लग जाएगी। एक नहीं, जैसे हजार सूर्य एक साथ उदित हो गए हों। और झड़ी ऐसी नहीं कि एक दफा शुरू हुई तो बंद हो जाए। फिर अमृत बरसता ही रहता है। वेद कहते हैंः अमृतस्य पुत्रः! तुम हो अमृत के पुत्र। मगर भूल गए हो, भटक गए हो, सो गए हो। नींद में हो, जागो!

उनसे जब दिल की बात होती है
बज्म में कायनात होती है
लब को महसूस तक नहीं होता
आंखों आंखों में बात होती है
भूल जाते हैं सिर्फ अपनी ही
वरना दुनिया की बात होती है एक रात उनकी है--खुदा रखे एक अपनी भी रात होती है
उनसे जब दिल की बात होती है बज्म में कायनात होती है
उपनिषद दिल की बातें हैं।
लब को महसूस तक नहीं होता
ओंठों को पता भी नहीं चलता।
लब को महसूस तक नहीं होता
आंखों आंखों में बात होती है
शिष्य और गुरु के बीच कुछ हो जाता है।
लब को महसूस तक नहीं होता
आंखों आंखों में बात होती है
उनसे जब दिल की...
यह नाता प्रेम का है, परम प्रेम का है। सब प्रेम छोटे पड़ जाते हैं इस नाते के समक्ष। सब प्रेम बड़े क्षुद्र हैं, बड़े सीमित हैं, सिर्फ गुरु और शिष्य के बीच जो घटित होता है वह विराट है, विशाल है, असीम है।

दूसरा प्रश्नः
ओशो, आज के प्रवचन के पश्चात मंच की सीढ़ियां उतरते समय जैसे ही आपने कहा, "सोहन!" मानो पूरे बुद्ध हाल में लहर-सी दौड़ गई। उस एक शब्द से कई के हृदय की वीणा जैसे आपने छेड़ दी। एक अजीब-सा दृश्य छा गया। हमारे ओंठों पर हंसी और आंखों में आंसू थे। मा सोहन व माणिक बाबू की स्थिति तो देखते ही बनती थी! दत्ताबाल जैसा कटु विषय सामने होते हुए भी आप क्या जादू कर देते हो ओशो कि उसका भी अमृत में रूपांतरण हो जाता है?

सत्य निरंजन! जहर भी है तो अमृत ही--ढंका-ढंका, आवृत, आच्छादित। जैसे गुलाब का फूल कांटों के बीच ऊगा। ठीक से देखोगे तो जहर भी अमृत हो जाता है। सारी बात देखने की कला की है। सारी बात नजर की है। सारा राज नजर का है। कहीं कुछ कटु नहीं है। और सभी कुछ को प्रीतिकर कर लेना है, मीठा कर लेना है।
और तुम्हारी हृदय की वीणा तैयार तो कर रहा हूं। रोज उसी की तैयारी चल रही है। वीणा तैयार हो तो कोई भी बहाना उसे छेड़ दे सकता है। हवा का झोंका भी उसके तारों को झनझना दे सकता है। वीणा तैयार है, इसलिए ऐसी घटना घट जाती है।
यहां कोई भीड़ तो नहीं है। यहां हर कोई के लिए तो मार्ग नहीं है। यह तो दीवानों की बस्ती है। यह तो परवानों का मेला है। और इसलिए, तुम कहते हो कि हमारे ओंठों पर हंसी और आंखों में आंसू थे। दोनों बातें तो सिर्फ पागलों को ही घटती हैं--हंसना भी और रोना भी। मगर एक ऐसा पागलपन भी है जो सारी समझदारी से ऊपर है। और जिसे पाने के लिए सारी समझदारी चुका देनी पड़े तो कुछ महंगा सौदा नहीं है।

अहले-खिरद क्या जाने दिल को इनकी भी मजबूरी है
इश्क में कुछ पागल-सा होना शायद बहुत जरूरी है
चलते-चलते युग बीते हैं दिल की नाजुक राहों में
वक्ते-सफर तो हमने सुना थाः दो कदमों की दूरी है
इश्क में कुछ पागल-सा होना शायद बहुत जरूरी है
अक्ल भला क्या सुलझाएगी दिल के उलझे तारों को अहले-खिरद से अहले-जुनूं तक तर्जो-शमा की दूरी है इश्क में कुछ पागल-सा होना शायद बहुत जरूरी है कहते हैं इन्सां को बुरा जो पीर-ओ-पयम्बर कहने दो आदमे-खाकी उसकी नजर में नूरानी है, नूरी है
इश्क में कुछ पागल-सा होना शायद बहुत जरूरी है
नाकामी को अपने घर से "अंजुम" मत जाने देना
उस पै खुदा आशिक होता है जिसकी आस अधूरी है
इश्क में कुछ पागल-सा होना शायद बहुत जरूरी है
अहले-खिरद क्या जाने दिल को इनकी भी मजबूरी है
इश्क में कुछ पागल-सा होना शायद बहुत जरूरी है

यह तो पागलों की बस्ती है; रिंदों की जमात है। यहां तो पियक्कड़ बैठे हैं। कोई भी बहाना--कोई भी बहाना पर्याप्त है। वीणा के तार छिड़ जाएंगे। रोके न रुकेंगे। बजते ही चले जाएंगे। रोकना भी चाहोगे तो न रुकेंगे। आंसू भी बहेंगे, ओंठों पर हंसी भी होगी। और जब ये दोनों साथ होते हैं, तो जादू घटता है। वह जादू मेरा नहीं है। वह जादू तुम्हारा है। तुमने तैयारी की है मेरे साथ पागल होने की, इसलिए घट रहा है।

तीसरा प्रश्नः
ओशो, प्रणाम स्वीकार करें! भरपूर प्रसाद बरसाया आपने, और चक्कर में भी डाल दिया। पहले तो लस्सी पिला कर गर्दन सीधी करवा दी, ऊपर से रसमलाई--अरे गजब! और अब जब कि सीधी गर्दन का आनंद आने लगा है तो कहते हैं कि इसे टेढ़ी ही रखो!

सदगुरुदेव, नुस्खा बड़ा मसालेदार है; कृपया, चक्कर में पड़े इस घनचक्कर
को मार्गदर्शन दें।

सुभाष, गर्दन तो तुम सीधी ही रखो! वह तो मैंने तुम्हारी पत्नी के ख्याल से कहा। पत्नियां बड़ा संदेह करती हैं। पत्नी लौटेगी राजकोट से और उसने अगर देखा गर्दन सीधी है, तो वह पूछेगी कि क्या माजरा है? होने वाले पप्पू के पिता, मामला क्या है? गर्दन सीधी क्यों है? हमेशा की तिरछी गर्दन सीधी क्यों मालूम हो रही है? कुछ राज है! कुछ गड़बड़ है! कुछ दाल में काला है! किसने की तुम्हारी गर्दन सीधी? किसने पिलाई लस्सी? किसने खिलाई बूंदी? तुम यहां क्या करते रहे?
स्त्रियां हर चीज का हिसाब रखती हैं। शुरू से ही यह चल रहा है।
कहते हैं, जब ईश्वर ने अदम और हौवा को बनाया तो वे दोनों ही थे। ईदन के बगीचे में उनके अलावा कोई भी न था। फिर भी जरा भी देर हो जाती अदम को आने में, तो हौवा एकदम वही करती जो अभी भी हौवाएं करती हैं। कि कहां थे? इतनी देर क्यों लगी? अदम लाख समझाता कि भई, तेरे सिवाय तो यहां कोई है ही नहीं, जाऊंगा भी तो कहां जाऊंगा! अरे, जरा मस्त मौसम था, जरा धीरे-धीरे चल कर चला आ रहा था। इसमें इतनी क्या बेचैनी की बात है? मगर कहानी यह कहती है कि जब रात अदम सो जाता तो हौवा उसकी पसलियां गिनती। क्योंकि ईश्वर ने हौवा को अदम की एक पसली से बनाया था। तो वह पसलियां गिन लेती कि पूरी हैं या नहीं? कहीं और स्त्री तो नहीं बना दी ईश्वर ने? एकाध पसली निकाल कर और बना दी हो! भरोसा नहीं आता था, रोज रात पसलियां गिन लेती थी कि हां, जब पूरी हैं तभी सोती थी।
तो तुम्हारी पत्नी लौटेगी, सुभाष, और देखेगी गर्दन सीधी है, कहेगीः किसने तुम्हारी कुंडलिनी जगाई? गर्दन सीधी कैसे हुई? जब मैं थी तब तो तिरछी ही रहती थी! जरूर तुम गुलछर्रे उड़ा रहे थे। इसलिए मैंने कहा कि गर्दन यूं तो सीधी ही रखो--अब हो ही गई सीधी तो अच्छा हुआ--मगर जब पत्नी आए, जैसे ही खबर मिले कि आ रही हूं, गर्दन टेढ़ी कर लेना। वही उदास चेहरा, जो कि हर पति को बनाए रखना पड़ता है, वही गंभीर उदासी! क्योंकि पत्नी अगर देख ले कि प्रसन्न हो तो उसका मतलब है कि मामला कुछ गड़बड़ है! प्रसन्न क्यों हो? प्रसन्न हो मतलब जिंदगी में कोई और स्त्री कहीं से आ रही है। और आदमी प्रसन्न तभी होता है जब नई-नई स्त्री आती है। फिर तो कभी प्रसन्न होता नहीं!
तो स्त्रियों को गणित पता है। इसलिए तुमको थोड़ा सावधान किया कि यह अभ्यास एकदम मत छोड़ देना! ऐसा थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते रहे; सुबह बैठ गए, पत्नी की याद की, गर्दन तिरछी कर ली, उदास होकर बैठ गए आईने के सामने! बस, थोड़ा-सा अभ्यास जारी रखना। तो जब आए तो काम पड़े। नहीं तो एकदम सीधी गर्दन किए खड़े रहे तो वह तिरछी कर देगी--सदा के लिए तिरछी कर देगी! फिर न लस्सी काम आएगी, न बूंदी काम आएगी, न रसमलाई, कुछ भी नहीं!

मम्मी ने
डैडी को मारा
तो बच्चे ने
पड़ोस के अंकल को
सहायता के लिए
पुकारा
अंकल बोले--बेटे,
अपने घरेलू मामले में
हमें न उलझाओ।
हो सके तो जाओ
और अपनी
आंटी को समझाओ।
पत्नी पराक्रम की
देकर दुहाई
तुम्हारी आंटी

सुबह से तीन बार
कर चुकी हैं
हमारी पिटाई।

टिल्लू गुरु अपने बाप चंदूलाल से पूछ रहे थेः "पापा, आप अंधेरे से डरते हैं?"
चंदूलाल ने कहाः "नहीं बेटा, कभी नहीं। अरे, क्यों डरूंगा अंधेरे से? तूने क्या मुझे कायर समझा है?"
टिल्लू गुरु ने कहाः "बादल, बिजली और शेर से डरते हैं?"
चंदूलाल ने कहाः "अरे, किसी से नहीं डरता। गरजता रहे बादल, दहाड़ता रहे शेर, चमकती रहे बिजली!"
टिल्लू गुरु ने कहाः "बिल्कुल नहीं डरते?"
चंदूलाल ने कहाः "बिल्कुल नहीं डरता!"
तो टिल्लू गुरु ने कहाः "इसका मतलब है आप मम्मी को छोड़ कर किसी से नहीं डरते।"
मम्मी से तो डरना ही पड़ता है।
चंदूलाल की शादी हुई तो ढब्बूजी को कह रहे थे कि जिस दिन मेरी पत्नी मेरे घर आई, उसी दिन मेरे यहां चोरी हुई। ढब्बूजी बोलेः "बूढ़ों ने ठीक ही कहा है, अरे, सयाने पहले ही कह गए कि मुसीबत कभी अकेली नहीं आती।"
चंदूलाल और उनकी पत्नी में भयंकर लड़ाई हुई और पत्नी ने पति की खूब पिटाई की और कहाः "मैं जा रही हूं मायके। जाते ही तलाक के लिए मुकदमा करूंगी।"
चंदूलाल बोलेः "जा-जा! ऐसी मीठी-मीठी बातें न कर!"
मीठी-मीठी बातें!
"तू मुझे रिझाने की नाहक कोशिश न कर! जब देखो तब वायदे! वायदे ही वायदे, कोई वायदा पूरा नहीं होता!"
मुल्ला नसरुद्दीन और चंदूलाल शिकार को गए थे। चंदूलाल नए-नए थे। एक
तो मारवाड़ी बेचारे! बंदूक पकड़ना भी न आए। किसी तरह बंदूक पकड़ी, किसी तरह बंदूक चलाई। बंदूक तो चल गई, लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी के बिल्कुल पास से गोली निकली। मार तो वे रहे थे आकाश में उड़ते हुए बगुले को--और जमीन पर बैठी पत्नी!
नसरुद्दीन तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहाः "अबे चंदूलाल के बच्चे, तुझे बंदूक अधिक सावधानी से चलानी चाहिए! तेरी गोली मेरी पत्नी को लगते-लगते बच गई!"
चंदूलाल ने कहा कि "बड़े मियां, नाराज होने की कोई बात नहीं, यह बंदूक लो, आप मेरी पत्नी पर दो बार गोली चलाओ! बस, मेरा नाम भर मत बताना! मैंने कुछ भी नहीं कहा है। मैं इस बात में ही नहीं हूं। मैं इसके बिल्कुल बाहर हूं।"
मगर बड़ी मुसीबत है। पत्नी हो तो मुसीबत, न हो तो मुसीबत। न हो तो बड़ी याद आती है। पत्नी मायके क्या जाती है, लोग क्या-क्या प्यारे-प्यारे पत्र लिखते हैं!
अब ये सुभाष ही लिख रहे होंगे--रोज! खुद न बनता होगा तो पास-पड़ोस के संन्यासियों से लिखवा रहे होंगे कि भैया, प्यारी-प्यारी बातें लिख दो; मुझसे तो नहीं लिखी जातीं, क्योंकि डर भी लगता है! और न लिखो तो भी डर लगता है।

भटक रहे हैं गली-गली बंजारे गंगाराम
शाला के सन्मुख बेचें गुब्बारे गंगाराम
पत्नी गई प्रसव में, संग-संग गया आंख का तारा
आंगन में रहता है तब से लगातार अंधियारा
बड़े मुखर थे, मौन हुए मन-मारे गंगाराम
जीवन की बाजी में सब कुछ हारे गंगाराम
आ-ई के जमघट में खुशियां बांट रहे हैं
बीड़ी पीते हुए जाग कर रातें काट रहे हैं

असमय लगते हैं बूढ़े बेचारे गंगाराम
कल कोरस थे आज हुए इकतारे गंगाराम

पत्नी चली जाए तो कोरस इकतारा हो जाता है। और पत्नी आए तो कोरस कहां, बाजार का धूम-धड़क्का, हंगामा मच जाता है! कोरस हर हालत में खो जाता है। साथ रहना मुश्किल, दूर रहना मुश्किल। आदमी की मुसीबत तो देखो! परमात्मा ने भी कैसा आदमी को उलझाया! इसको कहते हैं लीला! तुमको तो मैं सिर्फ सावधान कर रहा था कि लीला से सावधान रहना!
अब तुम कह रहे हो, "सदगुरुदेव, आपने बड़ा मसालेदार नुस्खा बताया। कृपया, चक्कर में पड़े इस घनचक्कर को मार्गदर्शन दें।"
अभी तो तुम्हें सिर्फ रसमलाई का नुस्खा बताया। तुमसे मैंने कहा कि सोहन दिखाई पड़े, फौरनः "जय हो माई! रसमलाई!" और एकदम चरण छू लिए। और अगर उसके पति साथ हों, तो ख्याल रखना, जब बहती गंगा हो तो हाथ धो ही लेना, एकदम उनके पैरों पर भी गिर पड़ना। मगर उनका मंतर अलग है! जंतर-मंतर अलग-अलग होते हैं हर देवी-देवता के। उनसे मत कह देना "जय हो माई, रसमलाई", नहीं तो और पिटाई हो जाए! ... हो जाए पिटाई! वह मंतर काम न आए! अगर माणिक बाबू साथ हों, एकदम उनके पैर पर भी गिर पड़ना और कहनाः "जय हो लाला! करांची वाला!" अलग-अलग मंतर अलग-अलग देवी-देवता के।
अभी तो तुमको आधा मंतर बताया। जब बहुत रसमलाई तुम में हो जाए और जी घबड़ाने लगे, बेचैनी बढ़ने लगे... । जैसे देखा नहीं, दत्ताबाल को डायबिटीज हो गई बेचारों को, और बेचैनी होती है! तो जब रसमलाई बहुत हो जाएगी तो डायबिटीज होगी। फिर बेचैनी होगी। तो फिर माणिक बाबू तुमको समोसे, पकौड़े, बड़े--पुरुष जातीय चीजें खिलाएंगे। उससे सब ठीक हो जाएगा। तुम घबड़ाओ मत! अगर चक्कर में डालूंगा तो चक्कर से निकलने का नुस्खा भी बताऊंगा।

अंतिम प्रश्नः ओशो, पुराणों में जैसी कथाएं हैं वैसी घटनाएं अब क्यों नहीं घटतीं?

कृष्णानंद, कौन कहता है कि अब वैसी घटनाएं नहीं घटतीं जैसी पुराने समय में घटती थीं? अरे, अब भी घटती हैं! कायकूं निराश होते हो भाई!! आशा रखो।
कपटवस्तु नामक एक गांव में लुट्टोधन नाम का एक चमार रहता था। परिवार-नियोजन के विभिन्न साधनों के बावजूद भी बुढ़ापे में उसकी पत्नी गर्भवती हो गई और बच्चे के प्रसव के तुरंत बाद चल बसी। पंडित पोपटमल ज्योतिषी ने बताया कि बच्चा होनहार है। या तो यह महान ख्याति प्राप्त साधु बनेगा या फिर बड़ा भारी अंतर्राष्ट्रीय डाकू।
लुट्टोधन ने पूछाः "हे गुरुदेव, मैं अपने बटे को डाकू होने से बचाने
के लिए क्या करूं?"
पोपटमल बोलेः "इसे इस तरह से पालो-पोसो कि इसे चोर-डाकू आदि के विषय में पता ही न चले।"
लुट्टोधन ने वैसा ही किया। अपनी रखैल को आज्ञा दी कि बालक को कभी चोर-डाकुओं की कहानियां न सुनाना। मोहल्ले में अगर कभी चोरी वगैरह हो जाए तो इसे इसके मामा-नाना के यहां छोड़ आना--आठ-आठ, दस-दस दिन के लिए।
रखैल ने वाकई में बच्चे को अपने सगे लड़के की तरह पाला। उसे साधु- महात्माओं के चरणों में भेजा। "जय जगदीश हरे" की आरती और गणेश जी की प्रार्थना करवाई। बच्चे को स्कूल पढ़ने नहीं भेजा इस डर से कि कहीं गलत संग-साथ में न पड़ जाए। किंतु लड़का तो होनहार था, विधाता के लिखे को भला कोई कैसे बदल सकता है! आठ-दस साल की उम्र होते-होते उसके लक्षण प्रकट होने लगे। लोगों ने उसे धूर्तराज कहना शुरू कर दिया।
बाप ने सोचा कि बेटा तो बिगड़ा जा रहा है, अतः उसका बाल-विवाह कर दिया, ताकि घर-गृहस्थी की झंझट में पड़ कर सब धमा-चौकड़ी भूल जाए। किंतु परिणाम उलटा हुआ। धूर्तराज की बीबी भगोदरा इतनी झगड़ालू थी कि बेचारा धूर्तराज घर से भागने के संबंध में दिन-रात सोचने लगा।

उनतीस वर्ष की अवस्था में जब धूर्तराज अपने दोस्त के साथ रैदास जयंती समारोह में भाग लेने पड़ोस के शहर में जा रहा था, तो रास्ते में एक बड़ी-बड़ी मूंछों वाले पहलवान को हाथ में डंडा लिए अकड़ कर चलते हुए देख कर उसने अपने मित्र से पूछा, "यह आदमी इस तरह क्यों चल रहा है? क्या इसकी कमर अकड़ गई है?" दोस्त ने कहा, "नहीं यार, यह तो दादा लफंगानाथ है। रंगदारों का गुरु है। काम-धाम कुछ नहीं, हराम का दूध-दही खाता है और लोगों को डराता-धमकाता है।" धूर्तराज ने पूछा, "क्या मैं भी इसी तरह का जीवन जी सकता हूं? जूता सीते- सीते तो मैं तंग आ गया।" दोस्त ने कहा, "क्यों नहीं, आज से ही डंड-बैठक लगाना शुरू कर दो। जनता को डराना-धमकाना शुरू कर दो।"
रास्ते में आगे चलने पर एक पचासी वर्ष का बुड्ढा मिला जो चुस्त चूड़ीदार पाजामा और खूबसूरत अचकन में मात्र पच्चीस साल का नौजवान पट्ठा लग रहा था। धूर्तराज ने प्रश्न किया, "इस खूसट की उम्र न ढलने का क्या राज है?" दोस्त ने समझाया, "यह भूतपूर्व प्रधानमंत्री है। फिर से प्रधानमंत्री बनने की आशा में जीता है। खुद का ही "जीवनजल" पीता है। इसी कारण इस आयु में भी दंद-फंद मचाने से बाज नहीं आता। छोकरों को भी मात देता है। यदि तुम्हें भी सदाबहार जवानी चाहिए हो तो अभी से कुछ दंद-फंद मचाना शुरू करो। जूतों की सिलाई में समय व्यर्थ न करो।"
आगे चल कर देखा "राम नाम सत्य है" का उदघोष करती एक भीड़ के आगे चार लोगों के कंधों पर रखी पालकी पर बैठे एक मोटे-ताजे काले-कलूटे महाशय आ रहे थे। धूर्तराज ने कहा, "आश्चर्य है! यह आदमी तो जिंदा है, इसे अरथी पर क्यों रख दिया गया है?" दोस्त ने बताया, "यह अरथी नहीं, ढब्बू! अरे बच्चू, नेता जी की शोभा-यात्रा की पालकी है!" धूर्तराज ने प्रश्न किया, "फिर ये लोग राम नाम क्यों ले रहे हैं?" जवाब मिला, "यह तो मंत्री जी का शुभ नाम है, बाबू जगजीवन राम। ये भी अपनी ही जाति के आदमी हैं और आज रैदास जयंती समारोह का उदघाटन करने के लिए आए हैं। अगर मेहनत करो तो तुम भी एक दिन उनके समान महान नेता बन कर नाम कमा सकते हो।"
शोभा-यात्रा से गुजर जाने के बाद धूर्तराज ने देखा, एक शुभ्र, श्वेत खादीधारी आदमी हाथ में माला और मुंड पर विनम्रता का भाव लिए जय बाबूजी, जय बाबूजी का उच्चार करता हुआ भागा जा रहा है। धूर्तराज ने सवाल किया, "और यह व्यक्ति कौन है? यह इस तरह श्वेत वस्त्र क्यों पहने है?" मित्र ने बताया, "यह आदमी चमचा है। नेताजी की सेवा करने जा रहा है। यदि नेताजी प्रसन्न हो गए इसकी भक्ति से तो इसे अपने साथ दिल्ली ले जाएंगे और वरदानस्वरूप मुंहमांगी मुराद पूरी कर देंगे।" धूर्तराज ने कहा, "क्या मैं भी ऐसा कर सकता हूं?" दोस्त ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं!" इतना सुनते ही धूर्तराज ने कहा, "मित्र, अब घर वापस चलो। मुझे रैदास जयंती में अब कोई उत्सुकता नहीं रही।" दोनों वापस अपने गांव लौट गए।
उसी रात को दो बजे धूर्तराज उठा, अपने पिता लुट्टोधन के बटुए में से सारे रुपए निकाले, सौतेली मां के पैरों में से बिछिए और आहिस्ते से हाथों में से चूड़े खिसका लिए, झगड़ालू बीबी भगोदरा के मुंह पर धीमे से आखिरी बार थूक दिया, अपने नवजात शिशु "काहिल" को घृणास्पद नजरों से देखा और घर से चलता बना। जो भी पहली ट्रेन उसे मिली, उसी में बिना टिकट चढ़ कर वह सीधा दिल्ली जा पहुंचा। और फिर वही हुआ जो पुराण की कथाओं में होता है। धूर्तराज ने तपस्या शुरू कर दी। चमचागिरी तपस्या ही तो है आधुनिक युग की, आधुनिक तप। इज्जत-बेइज्जत की परवाह नहीं। कोई आदर दे या दुतकारे, सबको समभाव से देखना, और फिर-फिर अपना निवेदन प्रस्तुत करना, यही तो हठयोग है। धूर्तराज ने भी खूब हठयोग साधा। दर-दर की ठोकरें खाईं, गालियां सहीं, मगर किसी न किसी तरह, येन-केन- प्रकारेण कुछ विधायकों को खुश कर ही लिया। लेकिन विधायकों से ज्यादा ऊपर उसकी पहुंच न हो सकी। अतः उसने अपनी साधना में और प्रगति करने के लिए आधुनिक उपवास अर्थात अनशन का सहारा लिया। हड़ताल, दंगा- फसाद, शहर बंद, दलबदल, छल-मक्कारी, भाषणबाजी, अफवाह-प्रचार तथा अन्य उपायों के साधनों पर भी जब धूर्तराज को सफलता न मिली तो वह छह सालों में इस सारे उपद्रव से घबड़ा कर तय कर लिया कि मंत्री बनना अपने भाग्य में नहीं है। उसको थका हुआ देख कर उसके पांच बदमाश साथी, जो अब तक उसे हर प्रकार से मदद कर रहे थे, उसे छोड़ कर चले गए।

उस रात धूर्तराज एक फाइव स्टार होटल में गया और स्विमिंग पूल में नहाने के बाद वहीं एक पेड़ के नीचे उदास होकर आंखें बंद करके बैठ गया। पूर्णिमा की रात थी। कुछ समय उपरांत जब मिस कुवैता नामक एक सुंदर और अश्लील मंत्री-पुत्री वहां स्नान करने आई तो चांदनी रात में वृक्ष के नीचे बैठे इस युवक को देख कर मोहित हो गई और साथ सोने का प्रस्ताव लेकर उसके पास पहुंची। धूर्तराज ने हां भर दी। दोनों रात भर रासलीला करते रहे। सुबह जब आखिरी तारा डूबने को था तब उस कामिनी ने अचानक घबड़ा कर कहा, "ओफ, माई गॉड! मैं तो कल शाम को कंट्रासेप्टिव गोली खाना ही भूल गई! अब क्या होगा? मैं तो गर्भवती हो गई हूं!"
उस सुंदरी ने फौरन अपने डैडी को फोन पर इसकी सूचना दी। डैडी बोले, "घबड़ाने की बात नहीं, बेटी, कोई चिंता न कर, उस युवक को अपने साथ घर ले आ। मैं आज ही तुम दोनों की शादी की व्यवस्था किए देता हूं। और तुझे तो पता ही है कि हमें एक राजदूत की आवश्यकता है, कुवैत भेजने के लिए। प्रधानमंत्री ने मुझसे कह रखा था कि मेरे रिश्तेदार को ही एंबेसेडर बनाया जाएगा। सो बस, तुम्हारे होने वाले पति को आज ही कुवैत के लिए राजदूत नियुक्त करवा दूंगा। जल्दी घर आ जाओ!"
जिस प्रकार सिद्धार्थ गौतम उस प्रातःकाल गौतम बुद्ध बन गए थे, उसी प्रकार धूर्तराज महाशय राजदूत बन गए अर्थात पंडित पोपटमल ज्योतिषी की भविष्यवाणी के अनुसार बड़े भारी अंतर्राष्ट्रीय डाकू बन गए।
अथ नेता पुराण समाप्तो।
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
चौथा प्रवचन

संसार से पलायन नहीं, मन का रूपांतरण

पहला प्रश्नः ओशो,
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।
अर्थात मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है। जो मन विषयों में आसक्त होगा वह बंधन का तथा जो विषयों से पराड्मुख होगा वह मोक्ष का कारण होगा।
शाट्यायनीय उपनिषद का यह सूत्र काफी प्रचलित है। इस उपनिषद के अतिरिक्त अनेक अन्य शास्त्रों में भी इसे स्थान मिला हुआ है।
ओशो, क्या हमारे लिए इस सूत्र की व्याख्या करने की कृपा करेंगे?

चिदानंद, यह सूत्र तो मूल्यवान है, लेकिन नासमझों के हाथ में पड़ कर मूल्यवान से मूल्यवान चीज दो कौड़ी की हो जाती है। कोहिनूर भी पत्थर हो जाता है। उपनिषद के ये अमृत वचन जिनके हाथों में पड़े उन्होंने जहर कर दिया। सारी बात ही उलटी हो गई। कुछ का कुछ हो गया। यह पूरा देश उसी पीड़ा में सड़ रहा है।
उपनिषद तो बुद्ध पुरुषों के प्राणों से निकले हुए स्वर हैं। यह तो जब वीणा बजी है अनाहत की तब ऐसा अपूर्व संगीत पैदा हुआ है। लेकिन फिर पंडित जब व्याख्या करते हैं तो कमल को कीचड़ में घसीट डालते हैं। कमल यूं तो कीचड़ से ही पैदा होता है, लेकिन कमल कीचड़ ही नहीं है, कीचड़ का अतिक्रमण है। कीचड़ के भीतर जो कीचड़ नहीं है उसकी अभिव्यक्ति है। लेकिन फिर उसे कीचड़ में लथोड़ देना सुंदर को असुंदर कर देना है, सत्य को असत्य कर देना है। व्याख्याओं ने सत्यों को उभारा नहीं है, निखारा नहीं है, उन पर धार न दी, व्याख्याओं के कारण सत्य की तलवार चमकी नहीं, उस पर और धूल जमी, और जंग जमी।
ऐसा ही इस सूत्र के साथ भी हुआ। इस सूत्र का मौलिक अर्थ बहुत सरल और सीधा है। व्याख्या की जैसे कोई जरूरत ही नहीं है। मनुष्य शब्द भी इस बात का इंगित करता है कि मन ही सब कुछ है। मनुष्य शब्द ही मन से बना है। यूं तो दुनिया में मनुष्य के लिए अलग-अलग भाषाओं में बहुत से शब्द हैं। जैसे उर्दू में आदमी। वह भी प्यारा शब्द है। मगर वह कीचड़ की खबर देता है, कमल की नहीं। आदमी शब्द बनता है मिट्टी से। जो मिट्टी से बनाया गया, ऐसा आदमी का अर्थ है।
यहूदियों में, ईसाइयों में, मुसलमानों में यह कहानी है कि परमात्मा
ने मिट्टी का पुतला बनाया और उसमें सांसें फूंक दीं। ऐसे पहले आदमी का, आदम का जन्म हुआ। आदम का अर्थ हैः मिट्टी का पुतला। सच है यह बात, लेकिन बहुत अधूरी-अधूरी। यह केवल मनुष्य का बाहरी रूप है। निश्चित ही मिट्टी है आदमी, लेकिन मिट्टी से ज्यादा भी है। हमारा शब्द मनुष्य उस ज्यादा की खबर देता है। मिट्टी है, मगर मिट्टी ही नहीं। मिट्टीमय है, मगर मिट्टी से भिन्न भी है। मनुष्य मन है।
अंग्रेजी का शब्द "मैन" मन का ही रूपांतरण है। वह मनुष्य का ही भिन्न रूप है। दोनों का उदगम एक ही सूत्र से हुआ हैः मन से।
मन का अर्थ होता हैः मनन की प्रक्रिया, मनन की क्षमता, सोच-विचार की संभावना। मिट्टी तो क्या खाक सोचेगी! मिट्टी तो सोचना भी चाहे तो क्या सोचेगी! कौन है जो मनुष्य के भीतर सोचता और विचारता? कौन है जो मनुष्य के भीतर मनन बनता है? वह चैतन्य है। इसलिए मन सिर्फ मिट्टी से ज्यादा नहीं है और भी कुछ है; मिट्टी के जो पार है, उसके भी जो पार है, उसकी तरफ इंगित है, इशारा है।
मनन की प्रक्रिया तो चैतन्य की संभावना है। चैतन्य हो तो ही मनन हो सकता है। इसलिए कोमा में विक्षिप्त पड़े हुए मनुष्य को मनुष्य नहीं कहना चाहिए। वहां तो मनन की क्रिया नहीं हो रही है, मनन की क्रिया समाप्त हो गई

है। वहां तो मिट्टी का आकाश से संबंध टूटा-टूटा है, उखड़ा-उखड़ा है--बीच की सीढ़ी ही गिर गई है।
तो मन है सीढ़ी। एक छोर लगा है मिट्टी से और दूसरा छोर छू रहा है अमृत को। सीढ़ी एक ही है। जिस सीढ़ी से तुम नीचे आते हो, उसी से ऊपर भी जाते हो। ऊपर और नीचे आने के लिए दो सीढ़ियों की जरूरत नहीं होती। सिर्फ दिशा बदल जाती है। यूं भी हो सकता है कि तुम सीढ़ी पर चढ़ते हुए आधी यात्रा पूरी कर लिए हो और एक सोपान पर खड़े हो, और दूसरा आदमी सीढ़ी से उतर रहा है, वह भी उसी सोपान पर खड़ा है; दोनों एक ही सोपान पर हैं--एक चढ़ रहा है, एक उतर रहा है--एक ही सोपान पर हैं, फिर भी बहुत भिन्न हैं। क्योंकि एक चढ़ रहा है, एक उतर रहा है। एक ही जगह हैं, मगर उनका एक ही कोटि में स्थान नहीं बनाया जा सकता। एक उतर रहा है, गिर रहा है, एक चढ़ रहा है, ऊर्ध्वगामी हो रहा है।
मन तो सीढ़ी है। अगर विषयों से आसक्त हो जाए तो उतरना शुरू हो जाता है। विषय अर्थात पृथ्वी, मिट्टी। और अगर विषयों से अनासक्त हो जाए, तो चढ़ना शुरू हो जाता है। सीढ़ी वही है। जो विषयों में जीता है, वह रोज-रोज नीचे की तरफ ढलान पर खिसलता जाता, फिसलता जाता।
और ध्यान रहे, खिसलना आसान है, फिसलना आसान है। उतार हमेशा आसान होते हैं। क्योंकि गुरुत्वाकर्षण ही खींच लेता है, तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता। चढ़ाव कठिन होते हैं। जैसे कोई गौरीशंकर पर चढ़ रहा हो। जैसे-जैसे ऊंचाई पर पहुंचता है वैसे-वैसे कठिनाई होती है। तब छोटा-सा भार भी बहुत भार मालूम होता है। एक छोटा-सा झोला भी कंधे पर लटका कर चढ़ना मुश्किल होने लगता है। तो जैसे-जैसे यात्री ऊपर पहुंचता है वैसे-वैसे वजन उसे छोड़ने पड़ते हैं। वही अनासक्ति है। वजन छोड़ना।
जमीन पर चल रहे हो तो ढोओ जितना ढोना हो; लदे रहो गधों की भांति, कोई चिंता की बात नहीं। लेकिन अगर चढ़ना है पहाड़, तो फिर छांटना होगा, फिर असार को छोड़ना होगा। और ऐसी भी घड़ी आएगी जब सब छोड़ना होगा। अंतिम शिखर पर जब पहुंचोगे तो सब छोड़ कर ही पहुंचोगे। सीढ़ी वही है। एक में बोझ बढ़ता जाता है, एक में निर्बोझ बढ़ता जाता है। एक में विषय बढ़ते जाते हैं, एक में घटते जाते हैं। एक में विचारों का जाल फैलता जाता है, एक में क्षीण होता चला जाता है। इसलिए यह सूत्र ठीक कहता है कि मन ही कारण है संसार का और मन ही कारण
है मोक्ष का। मन ही बांधता है, मन ही मुक्त करता है। आदमी प्रज्ञावान हो तो मन से ही रास्ता खोज लेता है अ-मन का।
अ-मन शब्द बड़ा प्यारा है। नानक ने उसका बहुत उपयोग किया है। कबीर ने भी। समाधि को अ-मनी दशा कहा है। उर्दू और उर्दू से संबंधित भाषाओं में अमन का अर्थ होता हैः शांति। वह भी प्यारी बात है! क्योंकि जैसे-जैसे ही मन से तुम पार जाने लगोगे, अ-मन होने लगोगे, वैसे-वैसे जीवन में शांति की फुहार, बरखा होने लगेगी। फूल खिलेंगे मौन के। आनंद के स्वर फूटेंगे। जीवन के झरने बहेंगे।
इस सूत्र को अब समझने की कोशिश करो।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
"मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है।"
लेकिन न मालूम ऐसे अदभुत सूत्र जिनके हाथ में थे कैसी उन्हें विक्षिप्तता पैदा हुई, कैसा पागलपन पैदा हुआ, कि मन को तो न छोड़ा, घर को छोड़ा, दुकान को छोड़ा, बच्चे छोड़े, पत्नियां छोड़ीं, जंगलों की तरफ भागे! मगर मन तो तुम्हारे साथ ही जाएगा, तुम जहां भी जाओ; मन तो भीतर है। मन
था बंधन का कारण, उसे छोड़ा नहीं। कारण तो छोड़ा नहीं, कारण तो साथ ही ले गए, जहर के बीज तो सम्हाल कर ले गए। और संसार का सारा विस्तार तो उन्हीं बीजों से पैदा हुआ था, उसको छोड़ कर भागे! बीज जहां रहेंगे, फिर विस्तार हो जाएगा। फिर वही उलझन खड़ी हो जाएगी। फिर-फिर होगी उलझन। मेरा मकान था, "मेरा" मकान से जुड़ा था; फिर मेरी कुटी हो जाएगी, फिर "मेरा" कुटी से जुड़ जाएगा। मेरा साम्राज्य था, ममत्व साम्राज्य से बंधा था; छोड़ दो साम्राज्य, ममत्व को कुछ भेद नहीं पड़ता, लंगोटी से बंध जाएगा--मेरी लंगोटी, मेरा मंदिर, मेरा शास्त्र, मेरा धर्म।
आदमी इतना अदभुत है और इतना अंधा कि जिनको तुम धार्मिक कहते हो उनका
भी दावा हैः मेरा धर्म! मैं हिंदू हूं, मैं जैन हूं, मैं मुसलमान हूं, मैं

ईसाई हूं। धार्मिक आदमी का "मेरा" हो सकता है! और जहां मेरा-तेरा है वहां कैसा धर्म! वहां तो धर्म की कोई संभावना नहीं है। वही तो अधर्म है। मेरा शास्त्र! सब छोड़ देते हैं लोग... ।
एक जैन मुनि से, देशभूषण महाराज से मेरा मिलना हुआ। मिलना चाहते थे,
तो मैंने कहा कि जरूर। नग्न हैं, दिगंबर हैं, सब छोड़ दिया। मुझसे बोले कि आप गीता पर बोले, आप उपनिषद पर बोले, आप धम्मपद पर बोले, लेकिन कुंदकुंद के "समयसार" पर क्यों नहीं बोले? उमास्वाति के "तत्वार्थ-सूत्र" पर क्यों नहीं बोले? अरे, अपने शास्त्रों पर क्यों नहीं बोलते हो?
मैंने उनसे पूछाः अपने और पराए! आप तो सब छोड़ आए, वस्त्र भी छोड़ दिए, और अभी भी अपना-पराया मौजूद है! अभी गीता पराई! अभी धम्मपद पराया! अभी कुंदकुंद का "समयसार" अपना! अभी उमास्वाति का "तत्वार्थ-सूत्र" अपना!
वही मेरा, वही तेरा। दुकानों में बंटा था, अब मंदिरों में बंटा। बही- खातों में बंटा था, अब शास्त्रों में बंटा। मगर शास्त्र सिवाय बही-खाते के और क्या हैं? ऐसे आदमियों के हाथ में शास्त्र भी बही-खाते ही हैं।
आदमी आश्चर्यचकित कर देता है अगर उसके संबंध में सोचो! पत्ते छांटता रहता है, जड़ें नहीं काटता। और पत्ते छांटने से कहीं कोई क्रांति होने वाली है! जड़ें काटनी होंगी। जड़ है मन।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
कुछ मत छोड़ो, कहीं भागो मत। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः जहां हो वहीं जागो। भागने वाले जाग नहीं पाते। भागने वाले तो भयभीत हैं, कायर हैं। मगर हम कायरों को भी बड़े प्यारे नाम दे देते हैं, उनको कहते हैं-- रणछोड़दास जी! रण छोड़ भागे!
मेरे गांव में एक मंदिर था--रणछोड़दास जी का मंदिर। मैंने उस गांव के पुजारी को जाकर कहा कि देख, इस मंदिर का नाम बदल! उसने कहा, क्यों? नाम कैसा प्यारा हैः रणछोड़दास जी! मैंने कहा, तूने कभी सोचा भी कि रणछोड़दास जी का मतलब क्या हुआ? भगोड़े! जिन्होंने पीठ दिखा दी जीवन को। वह थोड़ा चौंका, उसने कहा कि तुझे भी उलटी-सीधी बातें सूझती हैं! मुझे जिंदगी हो गई पूजा करते इस मंदिर में, मैंने कभी यह सोचा ही नहीं कि रणछोड़दास जी का यह मतलब होता है! बात तो तेरी ठीक, मगर अब तो दूर-दूर तक इस मंदिर की ख्याति हैः रणछोड़दास जी का मंदिर। नाम बदला नहीं जा सकता है। मगर तूने एक अड़चन मेरे लिए पैदा कर दी। यह शब्द तो गलत है।
कोई अगर युद्ध के क्षेत्र से पीठ दिखा दे, तो हम कायर कहते हैं उसे, और जीवन के संघर्ष से पीठ दिखा दे तो उसको महात्मा कहते हैं! कैसा बेईमानी का गणित है!
मुझसे लोग पूछते हैं कि आपके संन्यासी कैसे हैं, क्योंकि न घर छोड़ते,
न द्वार छोड़ते, न दुकान छोड़ते, न बाजार छोड़ते! मैं उनसे कहता हूंः मेरे संन्यासी ही संन्यासी हैं। क्योंकि छोड़ना है मन, और कुछ भी नहीं छोड़ना है। काटनी हैं जड़ें।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
और क्या सिर पटकते रहते हो उपनिषदों पर, कुछ भी तुम्हारी समझ में नहीं आया। अब यह उपनिषद सीधा-सीधा कह रहा है कि मन है कारण, पत्नी कारण नहीं है।
पत्नी को छोड़ कर भाग जाओगे, कुछ भी न होगा। फिर कहीं किसी और को पत्नी बना कर बैठ जाओगे। न होगी पत्नी, शिष्या होगी, सेविका होगी--नाम कुछ भी रख लेना। मगर वही मन और वही जाल। लेबल बदल जाएंगे, मगर भीतर जो भरा है सो भरा है।
क्या-क्या तरकीबें निकाली हैं लोगों ने! हिंदू शास्त्रों में जिस भांति आदमी को पकड़ने की कोशिश की है ब्राह्मण पंडितों ने, पुरोहितों ने, महात्माओं ने, उस भांति दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं हुआ। यहूदी भी पकड़ते हैं, मुसलमान भी पकड़ते हैं, ईसाई भी पकड़ते हैं, मगर जरा देर-अबेर करते हैं, मगर हिंदू तो गजब कर दिए! यहूदियों के बच्चे पैदा हुए कि उनको फिक्र पड़ती हैः खतना करवाओ। जल्दी खतना करवाओ! बड़ा हो जाए, इनकार करने लगे कि नहीं करवाऊंगा, झंझट खड़ी करे, तो छोटे बच्चे का खतना कर देते हैं। बना दिया यहूदी उसको। ईसाई हो तो बप्तिस्मा करवाओ।

लेकिन हिंदुओं ने सबको मात कर दिया। कारण भी साफ है। सबसे पुरानी पंडितों की, पुरोहितों की परंपरा है। ये आदमी को पकड़ते हैं बिल्कुल प्रथम से और अंत तक नहीं छोड़ते, अंत के बाद भी नहीं छोड़ते। जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों की व्यवस्था कर रखी है। आदमी मरेगा तो अंतिम संस्कार। और मर गया उसके बाद भी उसके बच्चों को सताएंगे। पितृपक्ष आएगा, जो मर गए हैं पुरखे, उनके नाम से श्राद्ध करवाएंगे, तर्पण करवाएंगे। मर गए उनका भी अभी शोषण, उनके नाम पर भी शोषण जारी है।
और तुम जान कर चकित होओगे कि यह संस्कारों की यात्रा शुरू कब होती है? हिंदू धर्म में शुरू होती है गर्भधारण से। सब धर्मों को मात कर दिया! बच्चे का जब गर्भधारण होता है तब से संस्कार की विधि। पहली विधि हैः गर्भधारण-विधि, गर्भधारण-संस्कार।
और तुम अगर गर्भधारण-संस्कार को पूरा समझोगे तो बड़े हैरान होओगे कि क्या-क्या बेईमानियां! जब पति और पत्नी संभोग करें तो चार ब्राह्मण महात्मा चारों दिशाओं में खड़े रहें। देखी जालसाजी? अश्लीलता का विरोध करेंगे; नग्न स्त्री का चित्र भी मत देखना! अरे, स्त्री का ही चित्र मत देखना! स्त्रियों का स्मरण ही मत करना! अनुभव में आई हुई पुरानी स्त्रियों को बिल्कुल विस्मृत कर देना, भूल कर भी याद न करना! और ये महात्मा क्या कर रहे हैं? ये ऋषि-मुनि क्या कर रहे हैं? धर्म की आड़ में यह क्या खेल चल रहा है?
अभी-अभी पश्चिम के बड़े-बड़े होटलों में यह खेल शुरू हुआ है, मगर कम से
कम ईमानदारी से भरा हुआ है; कम से कम इतनी बेईमानी तो नहीं, धर्म की आड़ तो नहीं। पश्चिम के बड़े होटलों में यह व्यवस्था है कि छोटी-छोटी खिड़कियां उन्होंने बना रखी हैं, जिनमें ऐसे कांच लगे हैं कि भीतर से बाहर दिखाई नहीं पड़ता, बाहर से भीतर दिखाई पड़ता है। तो अंदर तो स्त्री-पुरुष संभोग कर रहे हैं और खिड़कियों पर भी टिकट खरीद कर लोग बैठे हुए हैं। वे खिड़कियों से देख रहे हैं स्त्री-पुरुष को संभोग करते हुए।
इनको तुम अश्लील कहोगे। इनको तुम कहोगे, भौतिकवादी। मगर तुम्हारे महात्माओं ने इनको भी मात कर दिया। क्या गजब के लोग थे, क्या तरकीब निकाली! स्त्री-पुरुष संभोग करें, चार महात्मा चारों दिशाओं में खड़े हों और महात्माओं के हिसाब से संभोग चलेगा। महात्मा मंत्र पढ़ेंगे, स्त्री के एक-एक अंग को छूकर वे मंत्र पढ़ेंगे, और मंत्रों के हिसाब से संभोग चलेगा।
यह तो जालसाजी हुई। अरे, तुम्हें किसी स्त्री को नग्न देखना था तो देख लेते, कौन मना करता था, मगर यूं धर्म का आडंबर क्यों खड़ा करना! भाग गए संसार को छोड़ कर, महात्मा बन कर बैठे हो और अब संसार को पीछे के रास्ते से वापस ला रहे हो। कम से कम इतनी ईमानदारी तो होनी चाहिए कि अपने जीवन को जैसा है वैसा स्वीकार करो। भगोड़ों के जीवन में ये बातें आ जाएंगी। अब उस स्त्री की क्या दशा होती होगी, यह भी तो सोचो! उस पर मंत्र-तंत्र पढ़े जा रहे हैं, यज्ञ-हवन किया जा रहा है!
और दयानंद ने तो और गजब कर दिया! उन्होंने उसमें यज्ञ-हवन भी जोड़ दिया। मूल विधि में तो यज्ञ-हवन नहीं था। आहुति भी चढ़ाई जा रही है, धुआं भी पैदा किया जा रहा है, घी और गेहूं और चावल फेंके जा रहे हैं और मंत्र पढ़े जा रहे हैं--और बेचारी गरीब स्त्री नग्न पड़ी है, और नग्न उसके पतिदेव खड़े हैं, क्या दृश्य उपस्थित किया! और संसार को छोड़ कर आ गए हैं। मगर संसार ने नहीं छोड़ा है इन्हें, संसार पीछे के रास्ते से वापस आ रहा है।
मैं संसार के छोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। मन को ही रूपांतरित करना है। और तुम्हारे सूत्र साफ कह रहे हैं कि मन कारण है। काश, हमने यह समझा होता और मन को ही कारण समझ कर रूपांतरित किया होता, तो आज इस देश की ऐसी दुर्गति न होती। यह इतना पाखंडी न होता जितना यह पाखंडी है। शायद पृथ्वी पर कहीं ऐसा पाखंड नहीं है जैसा हमारे देश में है। धन का विरोध करेंगे--और सारे शास्त्र समझा रहे हैं कि धन का दान करो; दान ही पुण्य है, दान ही धर्म है। और धन है पाप! पाप से कैसे पुण्य हो जाता है, यह भी बड़े आश्चर्य की बात है!
फिर हिंदू कहते हैं कि दान देना तो ब्राह्मण को। क्या ब्राह्मण से पाप करवाना है? और जैन कहते हैं कि दान देना तो जैन ऋषि-मुनियों को। और

बौद्ध कहते हैं, दान देना तो बौद्ध भिक्षुओं को। और धन को तीनों कहते हैं पाप। और पाप के लिए ही दान मांग रहे हैं। और इसकी भी वर्जना करते हैं कि दूसरों को दान मत देना, क्योंकि वह दान व्यर्थ जाएगा। धन है पाप। तो एक बात तो तय है कि अगर धन पाप है तो ब्राह्मण को पाप करने का उपाय मत देना--भूल कर मत देना। भ्रष्ट करना है ब्राह्मणों को! मगर हम भी अंधे हैं। धन को पाप भी मानते हैं और धन को दान भी करते हैं--और दान को पुण्य मानते हैं। अब पाप से पुण्य को निकाल रहे हो। जालसाजी कर रहे हो। शड्यंत्र रच रहे हो।
इसलिए इस देश में... सबसे ज्यादा धनलोलुप हम हैं, सबसे ज्यादा कामलोलुप हम हैं। खजुराहो और कोणार्क जैसे मंदिर हमने बनाए, दुनिया में किसी जाति ने नहीं बनाए। और हमारे शास्त्रों में पंडितों ने इस तरह की अश्लील कहानियां लिखी हैं कि कोई फिल्म इतनी अश्लील न बनी है न बन सकती है। मगर धर्म के नाम पर चलती हो बात तो अंगीकार है, तो स्वीकार है। हमने धर्म के नाम पर वेश्यावृत्ति चलाई, देवदासियां बनाईं। देवदासी हो गई-- करेगी वेश्यागिरी, लेकिन मंदिर में करेगी अब। मंदिर को भी वेश्यालय बना दिया। और अब यह काम पुण्य का हो गया। अब इसमें कुछ पाप न रहा। हम पापों को पुण्यों में बदलने में बड़े होशियार हैं।
मगर इस सबके पीछे जाल का, इस सारे उपद्रव का कारण क्या है? कारण यह है
कि हम ठीक-ठीक समझ नहीं पाए। जिन्होंने जाना उन्होंने कुछ और कहा, और जिन्होंने हमें समझाया उन्होंने कुछ और कहा। इस सूत्र के अनुवाद में भी, चिदानंद, तुम ख्याल करो तो तुम्हें पता चल जाएगा कि कहां से भ्रांतियां घुस जाती हैं।
सूत्र का अनुवाद हैः "मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है। जो
मन विषयों में आसक्त होगा वह बंधन का और जो विषयों से पराड्मुख होगा वह मोक्ष का कारण होगा।"
यह पराड्मुख कहां से आ गया? मूल सूत्र में कहीं भी नहीं है। मूल सूत्र हैः
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
संस्कृत जानना भी जरूरी नहीं, मैं तो संस्कृत जानता नहीं।
"मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण मन है।"
बंधाय विषयासक्तं... ।
"विषय में आसक्त रहना बंधन है।"
मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।
"और जब तुम्हारी स्मृति विषय से मुक्त हो जाए, शून्य हो जाए, तो मोक्ष।"
इसमें पराड्मुख होना कहां से आया? पराड्मुख में तो भगोड़ापन आ जाएगा। वही रणछोड़दास जी! पराड्मुख यानी पीठ कर दो, भाग जाओ, पीठ दिखा दो, मुंह फेर लो! इस तरह की गलत व्याख्या का परिणाम यह हुआ कि इस देश में लाखों स्त्रियां पतियों के होते विधवा हो गईं। क्योंकि वे पराड्मुख हो गए। और इसका विरोध भी न कर सकीं, क्योंकि यह सब धर्म के नाम पर हो रहा था। उन्हीं पतियों के चरण भी छुए उन्होंने, क्योंकि वे महात्मा हो गए थे अब। हालांकि उनको दयनीय कर गए थे, उनको भिखमंगा कर गए थे, उनका महात्मापन महंगा पड़ा था स्त्रियों के लिए। अब उनकी स्त्रियां या तो भीख मांगेंगी या आटा पीसेंगी या वेश्यागिरी करेंगी। क्या होगा? उनके बच्चे अनाथ हो गए। भिखारी होंगे, चोरी करेंगे, लुटेरे बनेंगे--पता नहीं क्या होगा। करोड़ों-करोड़ों लोगों का जीवन विषाक्त हुआ है पराड्मुखता के कारण। और सूत्र में कहीं पराड्मुखता नहीं है। सूत्र तो बड़ा सीधा-साफ है।
निर्विषय चित्त--जिस चित्त में विषयों की तरंगें नहीं उठती हैं। और विषयासक्तं का भी अर्थ हमने गलत किया। विषय में आसक्ति का यह अर्थ नहीं होता कि विषय से भाग जाओ। क्योंकि भागने से आसक्ति नहीं मिटेगी। अगर ऐसा होता तो गरीबों को महलों में कोई आसक्ति न होती। अगर ऐसा होता तो गरीबों को धन में कोई आसक्ति न होती। अगर ऐसा होता तो दीन-दरिद्र धन्यभागी थे! अभागे थे वे जो दीन-दरिद्र नहीं हैं।
मगर सचाई उलटी है। सचाई यह है कि धन के अनुभव से आदमी की आसक्ति छूटती है। और विषय के अनुभव से विषय से मुक्ति होती है। क्योंकि अनुभव कर-करके

पाया जाता हैः कुछ भी तो नहीं, हाथ कुछ भी तो नहीं लगता। हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। वही झोली खाली की खाली। विषय के अनुभव से आदमी अपने आप निर्विषय होता है। सिर्फ जागरूकता से विषय का अनुभव करना है। बस जागरूकता की शर्त जुड़ जाए तो तुम निर्विषय हो जाओगे। जागरूकता का एक सूत्र समझ लो तो विचार से निर्विचार हो जाओगे, मन से अ-मन हो जाओगे।
राजे-उल्फत छुपा के देख लिया
दिल बहुत कुछ जला के देख लिया
राजे-उल्फत छुपा के देख लिया
और क्या देखने को बाकी है
आपसे दिल लगा के देख लिया
राजे-उल्फत छुपा के देख लिया वो मेरे हो के भी मेरे न हुए उनको अपना बना के देख लिया राजे-उल्फत छुपा के देख लिया "फैज" तकमील हम भी हो न सके इश्क को आजमा के देख लिया राजे-उल्फत छुपा के देख लिया
दिल बहुत कुछ जला के देख लिया
"फैज" तकमील हम भी हो न सके
इश्क को आजमा के देख लिया
कोई कभी तकमील नहीं हुआ।
"फैज" तकमील हम भी हो न सके
इस जगत में कोई भी संतुष्ट कभी हुआ है! कोई कभी तकमील हुआ है! कोई कभी पूर्णता को उपलब्ध हुआ है!
"फैज" तकमील हम भी हो न सके
इश्क को आजमा के देख लिया
इस जगत के सारे प्यार, सारी प्रीतियां, सारे लगाव, सारी आसक्तियां अनुभव करना जरूरी है। अनुभव के सिवाय और कोई मुक्ति नहीं है। मन की पीड़ा से गुजरना ही होगा। मन के विषाद को सहना ही होगा। मन की हार को अनुभव करना ही होगा। कोई सस्ता रास्ता नहीं है। और भगोड़े सस्ता रास्ता खोज रहे हैं। वे अनुभव से वंचित रह जाएंगे। और जो अनुभव से वंचित रह जाएगा, वह मुक्त नहीं हो सकेगा। उसके भीतर वासना दबी ही रह जाएगी।
और दबी हुई वासना और भी खतरनाक है; क्योंकि उभरेगी, बार-बार उभरेगी, फिर-फिर उभरेगी। तुम दबाओगे और उभरेगी। इधर से दबाओगे, उधर से उभरेगी। एक दरवाजा बंद करोगे, दूसरा दरवाजा खोलेगी। और हर दरवाजा पहले दरवाजे से ज्यादा सूक्ष्म होगा। अच्छा यही है कि वासना को उसके सहज प्राकृतिक रूप में जान लिया जाए, पहचान लिया जाए।
मुक्त हो जाना कठिन नहीं है, वासना से मुक्त हो जाना कठिन नहीं है, लेकिन दमित वासना से मुक्त होना बहुत कठिन है।

मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग
मैंने समझा था कि तू है तो दरख्शां है हयात
तेरा गम है तो गमे-दहर का झगड़ा क्या है
तेरी सूरत से है आलम में बहारां-ओ-शबाब
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है
तू जो मिल जाए तो तकदीर में रूह आ जाए
यूं न था, मैंने फकत चाहा था यूं हो जाए मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्मरेशमो-अतलसो-कमखाब में बुनवाए हुए जां-ब-जां बिकते हुए कूचा-ओ-बाजार में जिस्म खाक में लिथड़े हुए खून में नहलाए हुए
लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजै
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजै

और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग
तुम जिंदगी को अनुभव करो--उसके सारे फूल, उसके सारे कांटे; उसके सारे दिन, उसकी सारी रातें; उसके सारे सुख, उसके सारे दुख। चुनाव नहीं किया जा सकता! कोई यह कहे कि मैं तो फूल ही फूल का अनुभव करूंगा, कांटों का नहीं; कि मैं तो दिन ही दिन जीऊंगा, रातें नहीं; कि मैं तो सफलताएं ही भोगूंगा, विफलताएं नहीं; तो ऐसा व्यक्ति जीवन के अनुभव से वंचित रह जाएगा।
ये तो जीवन के दोनों पहलू हैं। यहां हर चीज जो आशा में शुरू होती है, निराशा में परिणत हो जाती है। यहां हर सुबह सांझ होती है। यहां जिंदगी के सब सुख धीरे-धीरे कड़वे हो जाते हैं और दुख बन जाते हैं। यह सारा अनुभव जरूरी है। यही अनुभव पकाता है। इसी अनुभव की आंच में जो पकता है, एक दिन मन से मुक्त हो पाता है। वह पक जाना ही मुक्ति है।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
मन है कारण बंध का और मोक्ष का। कच्चा मन बंध का कारण, पक गया मन मोक्ष
का कारण। मगर मन पके कैसे? संसार की आंच के सिवाय मन को पकने का और कोई उपाय नहीं है। इसीलिए तो संसार है। इसीलिए तो इस संसार को परमात्मा के द्वारा दी गई चुनौती समझो। यह परमात्मा के द्वारा दी गई एक परीक्षा है। यहां सभी बड़ी आशाओं से यात्रा शुरू करते हैं--कुछ बुरा नहीं है--और यहां सभी आज नहीं कल, कल नहीं परसों, असफलताओं के गड्ढों में गिर जाते हैं।

मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग
मैंने समझा था कि तू है तो दरख्शां है हयात
तेरा गम है तो गमे-दहर का झगड़ा क्या है
तेरी सूरत से है आलम में बहारां-ओ-शबाब
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है
तू जो मिल जाए तो तकदीर में रूह आ जाए
यूं न था, मैंने फकत चाहा था यूं हो जाए मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्मरेशमो-अतलसो-कमखाब में बुनवाए हुए जां-ब-जां बिकते हुए कूचा-ओ-बाजार में जिस्मखाक में लिथड़े हुए खून में नहलाए हुए
लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजै
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजै
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग
लेकिन मुहब्बत को जानना होगा, पहचानना होगा, जीना होगा, भोगना होगा। इसलिए मैं अपने संन्यासी को भोग से भागने को नहीं कहता, भोग में पकने
को कहता हूं। भोग में ही योग का फल पकता है। यह विरोधाभास है। लेकिन जिंदगी के सारे राज विरोधाभासों में हैं। यहां जो भूलें नहीं करता, वह कभी सीखता नहीं। जो भूलों से बचेगा, सीखने से बच जाएगा। अगर सीखना हो तो भूलें करना, डरना नहीं। हां, एक ही भूल दुबारा मत करना।
बंधाय विषयासक्तं... ।
"विषय में आसक्ति बंधन है।"
आसक्ति कैसे छूटेगी? जबरदस्ती न छुड़ा सकोगे। छुड़ा-छुड़ा कर भागोगे, आसक्ति लौट-लौट आएगी। क्योंकि बाहर नहीं है आसक्ति, भीतर है--कैसे छूटेगी? तुम्हें दिखाई पड़ रहा है कि यह हीरा है और तुम भाग खड़े हुए, तो तुम्हारे सपनों में आएगा हीरा। तुम्हें पुकारेगा। तुम्हें खींचेगा। तुम देख ही लो कि यह हीरा नहीं है। किसी और की मत मान लेना। अपने अनुभव के सिवाय और कोई जानना नहीं है। न कभी था, न कभी होगा। तुम इस हीरे को परख ही लो। इस हीरे को उठा ही लो। इसका हार बना ही लो। जब यह तुम्हीं को पत्थर हो जाएगा, तो यूं गिर जाएगा जैसे सूखे पत्ते वृक्षों से गिर जाते हैं। न वृक्ष को छोड़ना

पड़ता, न उन्हें छूटना पड़ता। और जब इस संसार में जो व्यर्थ है वह सूखे पत्तों की तरह गिर जाता है, तो जो सार्थक है उसके नए अंकुर तुम्हारे भीतर उग आते हैं।
बंधन हमारा अज्ञान है। मगर ज्ञान कैसे हो? अनुभव से ही होगा। ठोकरें खानी होंगी, दर-दर की ठोकरें खानी होंगी; बहुत बार गिरना पड़ेगा, बहुत बार उठना पड़ेगा। उठ-उठ कर ही तो तुम सीखोगे चलना। अगर छोटे-से बच्चों को तुम्हारे महात्मा मिल जाएं और कहें कि बेटा, गिरना मत! और बच्चा सोच ले, तय कर ले कि गिरूंगा नहीं, तो फिर घिसटता ही रहेगा जिंदगी भर, कभी खड़ा न हो पाएगा। चल ही न पाएगा। क्योंकि गिरने का डर चलने न देगा। जो चलेगा बच्चा, उसको गिरना ही पड़ेगा।
तो बच्चे सौभाग्य से मां-बाप की सुनते ही नहीं! मां-बाप तो बहुत कहते हैं कि बेटा, सम्हल कर, सम्हल कर, मगर बेटे के भीतर तो प्रकृति की ऊर्जा तूफान ले रही है, वह खड़ा होना चाहता है। एक दफा बच्चा खड़ा हो जाता है, दो कदम चल लेता है, कि उसको एकदम पागलपन चढ़ जाता है। चलने ही चलने की धुन रहती है उसको। जरा मौका पाया कि "चलूं"! गिर-गिर पड़ता है, घुटने टूट जाते हैं, लहूलुहान हो जाता है, मगर फिर-फिर उठ आता है। अगर सयाना हो, तो पड़ा ही रह जाए। अगर सयानों की मान ले, तो बचपन में ही बूढ़ा हो जाए। और बचपन में ही बूढ़ा हो जाना दुर्भाग्य है। वैसा ही दुर्भाग्य जैसे कुछ बूढ़े बुढ़ापे में भी बचकाने रह जाते हैं।
न बच्चों को बूढ़ा होने की जरूरत है, न बूढ़ों को बचकाना रहने की जरूरत है। जिंदगी में सहज विकास होना चाहिए। एक संतुलन होना चाहिए। सीखो! सीखने का एक ही उपाय हैः भूल से मत डरना। आसक्ति को अनुभव करो। कांटे चुभेंगे, यह मैं कहे देता हूं। मगर मेरे कहने से कि कांटे चुभेंगे, तुम रुकना मत! क्योंकि मेरी बात तुम्हारे किस काम की? तुम्हें कांटे चुभने चाहिए। वह कांटे की चुभन तुम्हारे जीवन के पकाव में अनिवार्य है, अपरिहार्य है। बंधाय विषयासक्तं... ।
विषयों से वे ही बंधे रह जाते हैं जिन्होंने ठीक-ठीक उनका अनुभव नहीं किया। जिन्होंने अनुभव कर लिया, वे तो मुक्त हो जाते हैं।
मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।
कौन होता है मुक्त? जिसकी स्मृति से, जिसके अंतःस्मरण के लोक से विषयों की खींच-तान समाप्त हो जाती है। जिसने धन को भोगा, वह धन से मुक्त हो जाता है। जिसने काम को भोगा, वह काम से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने का एक ही उपाय हैः जी लो, सारा कड़वा-मीठा अनुभव ले लो। और समय रहते ले लेना, नहीं तो पीछे बड़ा पछतावा होता है। जब समय था तब ज्ञान की बातों में उलझ गए। और उधार ज्ञान तो उधार ही रहेगा।
अब जिसने भी इस सूत्र का हिंदी में अनुवाद किया, चिदानंद, उसने समझा
ही नहीं। उसने बात को बिगाड़ दिया। उसने कह दिया, "जो विषयों से पराड्मुख होगा, वह मोक्ष का कारण होगा।"
पराड्मुख जो होगा, वह तो बंधा ही रह जाएगा। बुरी तरह बंधा रह जाएगा। विकृत हो जाएगा। मोक्ष नहीं मिलेगा। हां, विषयों का जो अतिक्रमण करता है, विषयों को जान लेता, पहचान लेता, उसके भीतर ही अब इतनी बात साफ हो जाती है, स्वच्छ हो जाती है कि कुछ भी सार नहीं है। वह चिल्लाता भी नहीं फिरता कि विषय असार हैं। जो अभी चिल्ला रहा है कि विषय असार हैं, जो दूसरों को समझा रहा है कि सावधान धन से, पद से; सावधान स्त्रियों से, स्त्री नर्क का द्वार है, समझ लेना एक बात पक्की कि अभी यह स्वयं मुक्त नहीं हुआ है। नहीं तो इसे क्या स्त्री नर्क का द्वार दिखाई पड़ेगी!
कहानी मैंने सुनी है कि मीरा जब वृंदावन पहुंची तो वृंदावन में जो कृष्ण का सबसे प्रमुख मंदिर था, उसका जो पुजारी था, उसने तीस वर्षों से किसी स्त्री को नहीं देखा था। वह बाहर नहीं निकलता था और स्त्रियों को मंदिर में आने की मनाही थी। द्वारपाल थे, जो स्त्रियों को रोक देते थे। कैसी अजीब दुनिया है! कृष्ण का भक्त और कृष्ण के मंदिर में स्त्रियों
को न घुसने दे! और कृष्ण का जीवन किसी पलायनवादी संन्यासी का जीवन नहीं है, मेरे संन्यासी का जीवन है! सोलह हजार स्त्रियों के बीच यह नृत्य चलता रहा कृष्ण का! अगर नर्क ही जाना है तो कृष्ण जितने गहरे नर्क में गए होंगे, तुम

क्या जाओगे! कैसे जाओगे! इतनी सुविधा तुम न जुटा पाओगे। इतनी लंबी सीढ़ी न लगा पाओगे। सोलह हजार पायदान! अरे, एकाध पायदान, दो पायदान बिठाल लिए, उतने में तो जिंदगी उखड़ जाती है! एकाध-दो नर्क के द्वार खोज लिए, उतना ही तो काफी है! उन्हीं दोनों के बीच में ऐसी घिसान, ऐसी पिटान हो जाती है! सोलह हजार स्त्रियां!
मगर यह सज्जन जो पुरोहित थे, इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी महात्मा की तरह! प्रतिष्ठा का कुल कारण इतना था कि वे स्त्री को नहीं देखते थे। हम अजीब बातों को आदर देते हैं! हम मूढ़ताओं को आदर देते हैं। हम रुग्णताओं को आदर देते हैं। हम विक्षिप्तताओं को आदर देते हैं। हमने कभी किसी सृजनात्मक मूल्य को आदर दिया ही नहीं। हमने यह नहीं कहा कि इस महात्मा ने एक सुंदर मूर्ति बनाई थी, कि एक सुंदर गीत रचा था, कि इसने सुंदर वीणा बजाई थी, कि बांसुरी पर आनंद का राग गाया था। नहीं, यह सब कुछ नहीं; इसने स्त्री नहीं देखी तीस साल तक। बहुत गजब का काम किया था!
मीरा आई। मीरा तो इस तरह के व्यर्थ के आग्रहों को मानती नहीं थी। फक्कड़ थी। वह नाचती हुई वृंदावन के मंदिर में पहुंच गई। द्वारपालों को सचेत कर दिया गया था, क्योंकि मंदिर का प्रधान बहुत घबड़ाया हुआ था कि मीरा आई है, गांव में नाच रही है, उसके गीत की खबरें आ रही हैं, उसकी मस्ती की खबरें आ रही हैं, कृष्ण की भक्त है, जरूर मंदिर आएगी, तो द्वार पर पहरेदार बढ़ा दिए थे। नंगी तलवारें लिए खड़े थे, कि रोक देना उसे। भीतर प्रवेश करने मत देना। दीवानी है, पागल है, सुनेगी नहीं, जबरदस्ती करनी पड़े तो करना, मगर मंदिर में प्रवेश नहीं करने देना।
यही सज्जन मालूम होता है स्वामी नारायण संप्रदाय में पैदा हो गए हैं, श्री प्रमुख स्वामी के नाम से। यह स्त्रियां नहीं देखते। हवाई जहाज पर चलते हैं तो इनके चारों तरफ एक बुर्का ओढ़ा दिया जाता है। क्योंकि एयर होस्टेस वगैरह, उनको देख कर कहीं इनको भ्रम हो जाए कि उर्वशी, मेनका-- अप्सराएं आ गईं, क्या हो रहा है! क्या इंद्र डर गया श्री प्रमुख स्वामी से? छोटे-मोटे स्वामी नहीं, श्री प्रमुख स्वामी! नाम भी क्या चुना है! यह वही सज्जन मालूम होते हैं।
मीरा नाचती गई। द्वार पर नाचने लगी, भीड़ लग गई। नाच ऐसा था, ऐसा रस भरा
था कि मस्त हो गए द्वारपाल भी, भूल ही गए कि रोकना है। तलवारें तो हाथ में रहीं मगर स्मरण न रहा तलवारों का। और मीरा नाचती हुई भीतर प्रवेश कर गई। पुजारी पूजा कर रहा था, मीरा को देख कर उसके हाथ से थाल छूट गया पूजा का। झनझना कर थाल नीचे गिर पड़ा। चिल्लाया क्रोध से कि ऐ स्त्री, तू भीतर कैसे आई? बाहर निकल!
मीरा ने जो उत्तर दिया, बड़ा प्यारा है। मीरा ने कहा, मैंने तो सुना था
कि एक ही पुरुष है--परमात्मा, कृष्ण--और हम सब तो उसकी ही सखियां हैं, मगर आज पता चला कि दो पुरुष हैं। एक तुम भी हो! तो तुम सखी नहीं हो! तुम क्यों येशृंगार किए खड़े हो, निकलो बाहर! इस मंदिर का पुरोहित होने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। यह पूजा की थाली अच्छा हुआ तुम्हारे हाथ से गिर गई। यह पूजा की थाली तुम्हारे हाथ में होनी नहीं चाहिए। तुम्हें अभी स्त्री दिखाई पड़ती है? तीस साल से स्त्री नहीं देखी तो तुम मुझे पहचान कैसे गए कि यह स्त्री है?
यूं न देखी हो, सपनों में तो बहुत देखी होगी! जो दिन में बचते हैं, वे रात में देखते हैं। इधर से बचते हैं तो उधर से देखते हैं। कोई न कोई उपाय खोज लेते हैं।
और मीरा ने कहा कि यह जो कृष्ण की मूर्ति है, इसके बगल में ही राधा की मूर्ति है--यह स्त्री नहीं है? और अगर तुम यह कहो कि मूर्ति तो मूर्ति है, तो फिर तुम्हारे कृष्ण की मूर्ति भी बस मूर्ति है, क्यों मूर्खता कर रहे हो? किसलिए यह पूजा का थाल और यह अर्चना और यह धूप-दीप और यह सब उपद्रव, यह सब आडंबर? और अगर कृष्ण की मूर्ति मूर्ति नहीं है, तो फिर यह राधा? राधा पुरुष है? तो मेरे आने में क्या अड़चन हो गई? मैं सम्हाल लूंगी अब इस मंदिर को, तुम रास्ते पर लगो!
मीरा ने ठीक कहा।

जीवन को अगर कोई पलायन करेगा तो परिणाम बुरे होंगे। पराड्मुख मत होना। जीओ जीवन को, क्योंकि जीने से ही मुक्ति का अपने आप द्वार खुलता है।
मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयोः।
बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।
चिदानंद, सूत्र तो प्यारा है! सूत्र तो अदभुत है! बहुत रस भरा है! मगर व्याख्याओं से जरा सावधान रहना! यह अनुवाद तक गलत है। मैं संस्कृत नहीं जानता, याद रहे! लेकिन मैं उपनिषद जानता हूं। मेरा अपना अनुभव मैं जानता हूं। इसलिए मैं फिकर नहीं करता भाषा वगैरह की, भाषा से मुझे क्या लेना- देना, अगर मेरी अनुभूति के अनुकूल पड़ता है तो ठीक, अगर नहीं अनुकूल पड़ता तो गलत! मेरे लिए और दूसरा कोई मापदंड नहीं है।
प्रत्येक को अपनी अनुभूति के ही मापदंड पर, अपनी अनुभूति की कसौटी पर
ही कसना चाहिए, तभी तुम जीवन में असार को सार से अलग कर पाओगे, नीर-क्षीर-विवेक कर पाओगे।
यह सूत्र प्यारा है, मगर व्याख्याओं से सावधान!

दूसरा प्रश्नः ओशो, तरु कहती है, "लहरू, ओशो को चौपाटी घुमा ला!" चलोगे
न? अपन आइसक्रीम भी खाएंगे।

चैतन्य सागर उर्फ लहरू! तरु तो गहरी बातें कह रही है। मगर क्या चौपाटी
को और चौपट करना है? भारतीय संस्कृति नष्ट न हो जाएगी मुझे चौपाटी ले जाओगे तो? चौपाटी तो भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। सब ऋषि-मुनि वहीं तो विराजमान हैं। पुरुष स्त्रियों की आराधना कर रहे हैं, भक्ति-भाव उमड़ रहा है, फिल्मी गीत गाए जा रहे हैं, गजलें सुनाई जा रही हैं। और अभी तो दो-चार दिन पहले ही तो हम बात कर रहे थेः यत्र-यत्र नारी पूज्यंते, तत्र-तत्र देवता रमंते। जहां-जहां नारी की पूजा होती है वहां-वहां देवता रमते हैं। रमंते ही रमंते! और देवता कोई थोड़े हैं! तैंतीस करोड़! मारा-मारी करंते। और बेचारों को काम भी तो नहीं है।
और चौपाटी पर जैसी नारी की पूजा होती है, कहीं और होती है! तो देवी- देवता तो सब वहीं रमण रहे हैं। कोई रमणलाल, कोई चमनलाल, कोई चिकू भाई, कोई चिपकू भाई--सब वहीं मौजूद हैं। मुझे तो देखते ही वे सब देवता एकदम शोरगुल मचा देंगे कि इससे चौपाटी चौपट हो जाएगी। वहीं तो सब कुछ चल रहा है--पूरा धर्म, संस्कृति, सभ्यता; भेल-पुरी चालू आहे! भारतीय संस्कृति चालू आहे! मुझे, लहरू, तू वहां ले जाकर क्या बिल्कुल बर्बादी करवाना है? मैं तो चलूं, मुझे क्या अड़चन! मुझे तो चौपट ही करना है, कहीं भी रहूं! मैं तो चौपाटी पर ही हूं! जहां होता हूं वहीं चौपाटी खड़ी हो जाती है। तू मुझे कहीं भी ले चल! अब मैंने कच्छ का रेगिस्तान चुना था--कच्छ का रन, जिसकी वजह से रणछोड़दास जी पैदा हुए। रन कच्छ का, जहां से सब भाग गए, सब रणछोड़दास हो गए, चुना मैंने कि चलो वहां कोई झंझट न होगी, मगर वहां भी भारतीय संस्कृति को खतरा है--मेरे आने से! जहां कोई है ही नहीं! और चौपाटी पर तो सभी कुछ है। मैं तो चलूं, मुझे कोई अड़चन नहीं है। और आइसक्रीम तू खिलाएगा तो जरूर खाएंगे। मुझे उसमें भी कोई अड़चन नहीं है। मगर ऐसे-ऐसे शब्द तुम उठा देते हो, फिर मुझे झंझट होती है।
अब यह डोंगरे जी महाराज ने क्या उपद्रव करवा दिया! ये बांटें लस्सी,
ये बांटें बूंदी प्रसाद में, और प्रश्नों के उत्तर मुझको देना पड़ें! नालायकी करे कोई, उत्तर दूं मैं! मगर साधु-संतों की रक्षा तो करनी ही पड़ती है। तो मुझे समझाना पड़ा कि लस्सी से आती शक्ति और बूंदी से आती भक्ति। और जहां शक्ति और भक्ति का मिलन होता है, वहीं ध्यान रमता--रमंते। कछु और न करंते।
अब ऐसे नास्तिक पड़े हैं, ये शरद जोशी जैसे लोग, जो कहते हैंः कायकूं रमंते? कोई अपनी मां-बहन की पूजा कर रहा है, तुम्हारी अपनी मां-बहन नहीं है? देवी-देवता रमंते! अरे, अपने घर जाओ, वहीं रमो! कोई पति अपनी पत्नी की पूजा कर रहा है, आराधना कर रहा है, करने दो! तुम्हें वहां भीड़-भाड़ क्यों करनी? तुम्हें क्या जरूरत बीच में अड़ंगा डालने की? नास्तिकता की बात है!

अब देवी-देवता तो चुप्प रहंते, वे तो बेचारे कुछ उत्तर न देवंते; मगर शरद जोशी को मैं कह देता हूं कि अरे, देवी-देवता कितने ही चुप रहें, मैं तो मौजूद हूं! तुम पूछते, कायकूं रमंते? बंदोबस्त करंते! इसलिए रमंते। तो रक्षा तो करनी पड़ेगी, बंदोबस्त करना पड़ेगा।
अब यह डोंगरे महाराज, इनको अगर बांटना ही हो प्रसाद तो डोंगरे का बालामृत बांटें। कहां लस्सी-बूंदी! मगर मुझे व्याख्या करनी पड़ी। उसी में से सुभाष ने रसमलाई उठा दी। और एक गंभीर सवाल खड़ा हो गयाः रसमलाई। और कोई साधारण मामला नहीं है, हमारे संन्यासियों में से जो सबसे ज्यादा गंभीर संन्यासी हैं, पंडित स्वामी योग चिन्मय, उन तक ने प्रश्न पूछ लिया है कि भगवान, आपने कहा कि लस्सी से शक्ति और बूंदी से भक्ति, रसमलाई का अर्थ समझाइए! स्वामी योग चिन्मय! ये तो बेचारे समाधिस्थ पुरुष हैं, ये तक डगमगा गए। रसमलाई चीज ऐसी!
अकथ कहानी स्वाद की, कछु कही न जाए।
गूंगे केरी लस्सी पीकर, बूंदी खा मुसकाय।।
खावत खावत हे सखी, रह्यो कबीर मुटाय।
बुंद समानी पेट में, फिर कस हेरी जाय।।
डंड-बिठक से जग मुवा, संन्यासी नहिं कोय।
लस्सी बूंदी रसमलाई, खाय सो स्वामी होय।।
कहा-सुनी की है नहीं, खाए-पिए की बात।
कोई मिठाई न दे सकी, रसमलाई को मात।।
लस्सी से शक्ति-भक्ति, बूंदी से मिले मिठास।
रसमलाई पलक में, ब्रह्म का हो आभास।।
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, धन्य है सोहनमाई।
लस्सी-बूंदी सब फीकी हुई, खाई जो रसमलाई।।
अब यह तुम्हें सोहन से पूछना चाहिए कि रसमलाई का क्या अर्थ है? मुझसे पूछते हो! अब मैं क्या इस सबकी व्याख्या करता रहूं? और रसमलाई का तो अर्थ बिल्कुल साफ हैः रसो वै सः। अरे, वह तो परमात्मा की परिभाषा ही यह हैः रसरूप है जो। अब यह लहरू और उपद्रव करवा रहा है। यह आइसक्रीम शब्द बीच में ले आया! अब आज नहीं कल कोई पूछेगा कि आइसक्रीम का क्या अर्थ है?
अब मैं किसी तरह तो मन से मुक्त हुआ, बामुश्किल तो मन से मुक्त हुआ, अब तुम्हारे पीछे मुझे मन फिर लाना पड़ता है--आइसक्रीम का पता लगाओ कि आइसक्रीम का क्या अर्थ है? इसका क्या आध्यात्मिक रहस्य है?
नहीं लहरू, ऐसे कठिन सवाल नहीं उठाते! ऐसे कठिन सवाल उठाओगे, मारा- मारी होवंते!
और चौपाटी यहां आ रही, तुम मुझे कहां ले जा रहे हो! मैं जहां रहूंगा, वहीं चौपाटी; वहीं देवी-देवता रमंते। अब यहां इतनी नारियां आ गई हैं कि उनके पीछे-पीछे देवता भी चले आए। अब मैंने कहा देवताओं से क्या काम लेना, आ ही गए हैं, तो उनको बिठा दिया है--देखते हो तुम, हर खंभे के पास बैठे हैं; बंदोबस्त करंते! चलो बेटा, बंदोबस्त करो! कुछ तो करो, अब आ ही गए... !

तीसरा प्रश्नः ओशो, मेरे सारे भ्रम दूर हो गए हैं, सत्य का पता चल गया है, जब से आपने यह बताया कि वीणा चितरंजन की पत्नी हैं!

प्रेम प्रज्ञा! अरे, यह तो कुछ भी नहीं है, यह तो अभी आधा ही सत्य है-- आधे से भी कम--वीणा चितरंजन की पत्नी है, यह तो कुछ भी नहीं, अरे, चितरंजन वीणा के पति भी हैं! असली राज तो वह है। वह बड़ी कठिन बात है समझना।
मैंने सुना है कि वीणा ने एक नौकरानी रखी। अब वीणा तगड़ी मजबूत, सो उसने नौकरानी भी अपने जैसी चुनी। किसी विवाह में सांझ गई, पहले ही दिन, तो नौकरानी को कह गई कि बच्चों को ठीक से सुला देना। नौ बजे के बाद किसी को जगने मत देना।
जब रात लौटी ग्यारह-बारह बजे तो पूछा कि सबको सुला दिया? उसने कहा, सबको सुला दिया। सिर्फ बड़े बच्चे ने बहुत तकलीफ दी। वीणा ने पूछा, बड़ा बच्चा! अरे, मेरे तो दो-तीन छोटे बच्चे हैं, बड़ा बच्चा कौन-सा है? अरे, उसने कहा, यह मुछाड़िया! सोए ही न!! मगर मैंने भी दिया पटका, दबा दिया दुलाई में

और बैठ गई ऊपर कि सोता है कि नहीं? और बाई, यह बड़ा लड़का बड़ा कठिन है! अल्ल-बल्ल बके, उठ-उठ पड़े, कुछ-कुछ बहाने निकाले। मैंने भी दिए दो लताड़! जब लताड़ खाया तब माना।
तब वीणा को पता चला कि चितरंजन की पिटाई हो गई है।
बेचारे चितरंजन सीधे-सादे आदमी हैं। मगर प्रेम में यही तो झंझटें हो जाती हैं, इसलिए सयाने लोग कह गए कि प्रेम करना ही मत। विवाह पहले, प्रेम पीछे। और चितरंजन ने कर लिया उलटा कामः प्रेम पहले, विवाह पीछे। उसमें यह झंझट हो गई। अब प्रेम तो अंधा होता ही है, उसने देखा ही नहीं कि किससे प्रेम कर रहे हो, भैया! कुछ नाप-जोख भी तो करो! कुछ हिसाब-किताब भी तो रखो! प्रेम को कहा अंधा और विवाह को कहा संस्था, इसलिए मैं कहता हूं, विवाह जो है वह अंधों की संस्था है। प्रेम में यह उपद्रव हो गया।
सो तू प्रज्ञा, कहती है कि सत्य का पता चल गया है जब से आपने बताया कि वीणा चितरंजन की पत्नी हैं।
यह अभी आधा सत्य है। अभी आधा और खोज! मगर आधे का पता चला तो आधे और का
भी पता चल ही जाएगा। करीब-करीब आ गई। मगर अभी असली बात रहस्य की है, अभी रह गई है। चितरंजन पति भी हैं। कठिन है मामला! वीणा जैसी पत्नी का पति होना! कोई भरोसा ही नहीं करता।
अभी भी लोग बेचारे को बस, सोहन ही उनको धक्का मार रही है, कि सुन लो! और चितरंजन सोहन को तो धक्का मार नहीं सकते, वह वीणा को धक्का मार रहे हैं, कि सुन लो!
उनको देख कर मुझे ख्याल आया कि अकबर ने एक दफा गुस्से में बीरबल को चांटा मार दिया। अब बीरबल को भी दिल तो हुआ चांटा मारने का, मगर अकबर को चांटा मारे, पीछे महंगा पड़ जाए। सो उसने बगल वाले आदमी को चांटा मार दिया। उस बगल वाले ने सोचा कि यह तो झंझट की बात है। बीरबल को मारूं, मुश्किल हो, यह चहेता राजा का; उसने बगल वाले को जड़ दिया। बगल वाले ने पूछा, यह हद हो गई! अरे भाई, कोई किसी को मार रहा है, कोई किसी को; तुमको जिसने मारा उसको तुम क्यों नहीं मारते? उसने कहा, तू क्या बात-चीत में पड़ा है, तू जिसको मारना हो उसको मार! अरे, जो जिसको मार सकता है उसको मारता है। ऐसी बात चलती रही, तो आखिर में पहुंच जाएगी। और कहते हैं पहुंच गई। ऐसे मार-पीट होती रही, चलती रही, और किसी ने सम्राट अकबर की पत्नी को धौल जमा दिया। और पत्नी को गुस्सा आया, उसने एक धौल अकबर को जमा दिया। तब चक्कर पूरा हुआ।
अब सोहन धक्का मार रही चितरंजन को, चितरंजन वीणा को धक्का मार रहे हैं, वीणा इधर-उधर देख रही है, विनोद जरा दूर हैं नहीं तो मारे धक्का उनको! सत्संग का मतलब ही यही होता है। अरे, सत्य को आगे बढ़ाए जाओ! बांटते चलो, बांटते चलो! वीणा, तू सरक जा बेफिक्री से, मार विनोद को एक धक्का! कभी किसी का धक्का नहीं खाना, उत्तर तो देना ही। जो जिसको मार सके!
तू ठीक समझी, प्रज्ञा! सत्य का तुझे आधा पता चल गया। जितना चला उतना ही काफी है।
चंदूलाल का बेटा, टिल्लू गुरु, स्कूल से लौटा। बड़ा ट्राफी लिए चला आ रहा था। अरे, चंदूलाल ने कहा, टिल्लू गुरु, क्या हुआ? कैसे ट्राफी पाई? टिल्लू गुरु ने कहा कि आज स्कूल में परीक्षा हुई। प्रधान अध्यापक ने प्रश्न पूछा और मैंने जवाब दिया। वह सबसे ज्यादा सही था। सो मुझे ट्राफी मिली। चंदूलाल ने कहा, गजब कर दिया तूने! अरे, हम भी बहुत पढ़े-लिखे, कभी ट्राफी न लाए! मगर यह तो बता क्या पूछा था? टिल्लू गुरु ने कहा कि प्रधान अध्यापक ने पूछा कि हाथी के कितने पैर होते हैं? तो मैंने कहा, पांच। चंदूलाल ने कहा, अरे मूरख, हाथी के और पांच पैर, और फिर भी तुझे ट्राफी मिली! उसने कहा, हां, क्योंकि दूसरे तो नालायक कोई छह बता रहा था, कोई सात बता रहा था। मैं करीब से करीब था सत्य के। सो हेड मास्टर ने कहा, भइया, तू करीब से करीब है, तू ही ले जा ट्राफी!
अभी तू करीब ही पहुंची है, प्रज्ञा! अभी हाथी के पांच पैर बता रही है। मगर फिर भी दूसरों से करीब पहुंची, आधा सत्य पता चला, आधा भी कब तक बचेगा! अरे, जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ! गहरे बैठते जा, खोज ही लेगी।
मगर वीणा और चितरंजन सच में पूछो तो पति-पत्नी नहीं हैं, प्रेमी हैं,
अब भी प्रेमी हैं। और इसीलिए मेरा उन पर इतना लगाव है! मेरा लगाव तो

प्रेमियों के लिए है। पति-पत्नी तो दुर्गति है। विवाह उन्होंने किया, औपचारिक है वह, सामाजिक है। मैं हजारों-लाखों लोगों के संपर्क में आया हूं, उसमें दो-चार ही जोड़े हैं। जैसे चितरंजन-वीणा का, जैसे माणिक बाबू- सोहन का। ऐसे दो-चार ही जोड़े हैं। जो पति-पत्नी होकर भी पति-पत्नी नहीं हैं। जो अब भी प्रेमी हैं।
यह बड़ा कठिन है मामला--पति-पत्नी होकर भी पति-पत्नी न होना। लोग तो बिना पति-पत्नी हुए पति-पत्नी हो जाते हैं। दो दिन किसी के साथ रह लें कि कब्जा! दो दिन किसी के साथ रह लें कि मालकियत! लेकिन जिनके साथ वर्षों रहे हों, जिनके साथ सामाजिक रूप से विवाह का गठबंधन भी हुआ हो, उनके साथ भी कोई आग्रह नहीं, दबाव नहीं--यह सौभाग्य की बात है! चितरंजन और वीणा सौभाग्यशाली हैं! अब भी उनमें प्रेम वैसा ही है, जैसे नए-नए प्रेमियों में, जैसे आज ही हुआ हो। और प्रेम ताजा रहे तो ही प्रेम है। प्रेम बासा हो जाए, तो प्रेम था ही नहीं।
इतना ही मत, प्रज्ञा, उनके संबंध में सोच कि पति-पत्नी हैं, उससे ज्यादा समझने की बात है कि प्रेमी हैं। और प्रेम परमात्मा के निकटतम है। एक व्यक्ति को भी अगर तुमने ठीक से प्रेम किया है, तो तुमने थोड़ा-सा परमात्मा का स्वाद लिया है। और उसकी एक बूंद भी पर्याप्त है जीवन की तृप्ति के लिए। प्रेम को थोड़ा-सा भी जान लेना परमात्मा का एकमात्र प्रमाण है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आपकी बातें तो बिल्कुल ही समझ में नहीं आतीं। मार्गदर्शन दें!

कैलाशनाथ शास्त्री, मार्गदर्शन भी समझ में नहीं आएगा। मार्गदर्शन ही
दे रहा हूं! और अड़चन होगा तुम्हारा "शास्त्री" होना। मेरा कोई कसूर नहीं, शास्त्री हो, वही खतरा है। शास्त्र को हटाओ तो मेरी बातें तो बिल्कुल सीधी-सरल हैं; छोटे-छोटे बच्चों की समझ में आ जाएं, ऐसी हैं। मैं कोई कठिन बातें तो नहीं कह रहा हूं। मैं कोई आकाश की बातें तो नहीं कह रहा हूं। मेरी बातें तो दो और दो चार जैसी स्पष्ट हैं। लेकिन तुम्हारी अड़चन है। तुम्हारी अपनी धारणाएं होंगी। शास्त्र भरे होंगे सिर में। वे मेरी बातों को तुम तक पहुंचने ही न देते होंगे।
जब तक तुम अपने पक्षपात न छोड़ोगे, जब तक तुम अपनी धारणाएं न छोड़ोगे--और मैं नहीं कहता कि छोड़ो; अगर तुम्हारी धारणाएं तुम्हें तृप्ति दे रही हैं, तो परमात्मा तुम्हारी रक्षा करे! परमात्मा जाने, तुम जानो! अगर तुम्हारी धारणाएं तुम्हारे लिए प्रकाश बन रही हैं, तो बड़ी सौभाग्य की बात है! लेकिन अगर तुम्हारे शास्त्र और तुम्हारे सिद्धांत सिर्फ तुम्हारे अंधकार को बढ़ा रहे हैं, तुम्हारी अमावस की रात लंबी होती जा रही है, तो हटाओ उसे! उसके जंगल में से तुम मेरी बात सुनोगे तो कुछ की कुछ हो जाएगी।
दो मक्खियां पिक्चर देख कर थियेटर से बाहर निकलीं। तो एक दूसरे से बोलीः "पैदल चलें या कुत्ता कर लें?"
मक्खियां ही ठहरीं! क्या गजब की बात उन्होंने कहीः "पैदल चलें कि कुत्ता कर लें?"
तुम्हारी अपनी भाषा होगी।
चंदूलाल एक हकीम से मिले... । रहे होंगे कोई हकीम बीरूमल जैसे, जो गुप्त रोगों का इलाज करते हैं। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बंटवारे में अगर कोई लाभ हुआ भारत को तो हकीम बीरूमल! हकीम बीरूमल क्या आए, उसके पहले भारत को पता ही नहीं था कि गुप्त रोग भी होते हैं! हकीम बीरूमल ने खूब गुप्त रोग फैलाए!
और गुप्त रोग का एक मजा यह है कि न रोगी बताता है किसी को कि उसको रोग
है; और ठीक हुआ कि नहीं, यह भी नहीं बताता; दवाइयां भी बिकती हैं और दवाइयां काम कर रही हैं या नहीं कर रही हैं, इसका भी कोई पता नहीं चलता। क्योंकि वह किसी से कह तो सकता ही नहीं कि दवाई ने असर नहीं किया! वह रोग ही गुप्त है! हकीम बीरूमल सिंधी, बड़े पहुंचे हुए हकीम। सिंधियों से कौन मुकाबला करे?

उन्होंने सबको पछाड़ दिलवा दी। मारवाड़ियों को चारों खाने चित कर दिया। सब डाक्टर हार गए हकीम बीरूमल के नाम से।
ऐसे ही किसी हकीम से चंदूलाल ने पूछा कि पत्नी का प्रेम पाने के लिए क्या करूं? हकीम जी ने कहाः "दस किलोमीटर रोज पंद्रह दिन तक दौड़ लगाओ।" मैंने पूछा चंदूलाल को कि फिर क्या हुआ? क्या आपको पंद्रह दिन बाद पत्नी- प्रेम मिला? चंदूलाल बोलेः "मुझे क्या पता? पंद्रह दिन बाद तो मैं उससे डेढ़ सौ किलोमीटर दूर पड़ा हुआ था।"
अब तुम अगर अपनी धारणाओं से समझोगे तो अड़चन होने वाली है। कुछ का कुछ
हो जाएगा।
कैलाशनाथ शास्त्री, मैं जो कह रहा हूं वही समझने की कोशिश करो, अपने
को बीच में न लाओ!
चंदूलाल की पत्नी बहुत मोटी। पलंग पर सो रही थी, तभी अचानक भूकंप आया
और वह पलंग से नीचे गिर पड़ी। बरामदे में बैठे चंदूलाल भागे-भागे भीतर आए और पत्नी से बोलेः "अरे, भूकंप आने से तुम नीचे गिरी हो या तुम्हारे गिरने से भूकंप आया है?"
एक पत्रिका में छपी संपादकीय सूचना--
इस पत्रिका में छपी गलतियां छापे की भूल नहीं हैं, बल्कि जान-बूझ कर रखी गई हैं। दरअसल हम पत्रिका में हरेक की रुचि की सामग्री छापते हैं। और कुछ लोगों की रुचि केवल छापे की भूलों में होती है।
तो अब तुम पता नहीं क्या खोजने यहां आए हो, कि तुमको मेरी बातें समझ में नहीं आ रही हैं! नहीं तो मेरी बातें तो बहुत सीधी-साफ हैं। यहां जो कुछ अध्यात्म और दर्शनशास्त्र और भूत-प्रेत और स्वर्ग-नर्क और मरने के बाद क्या होता है और क्या नहीं होता है, इस तरह की व्यर्थ बातें जानने आया हो, वह गलत जगह आ गया।
कब्रिस्तान के चारों ओर कांटे के तार लगाने के लिए चंदा वसूल किया जा रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन के पास भी चंदा लेने वाले लोग पहुंचे। मुल्ला बोलाः "तार लगाने की क्या जरूरत है? अरे, कब्रिस्तान के अंदर जो हैं, वे बाहर नहीं निकल सकते; और जो बाहर हैं, उनमें से कोई अंदर जाना नहीं चाहता। तार की जरूरत क्या है?"
लोग अपने हिसाब से सोचते हैं। और उसकी बात में वजन है। अरे, जो अंदर है
वह क्या बाहर आएगा अब? उसको तो रोकना नहीं है। और जो बाहर हैं, वे भीतर खुद ही नहीं जाना चाहते। वे तो खुद ही भागे हुए हैं। तार किसके लिए लगा रहे हो! नाहक पैसा खराब करना!
मुल्ला नसरुद्दीन पहली दफा दिल्ली गए। ताजमहल होटल में ठहरे। मैनेजर
से पूछाः "आपके यहां खाने का समय क्या है?" मैनेजर ने कहाः "सुबह का नाश्ता सात से नौ बजे, खाना दस से एक, दोपहर की चाय दो से चार, रात का खाना छह से दस।" मुल्ला नसरुद्दीन बड़ी परेशानी में पड़ गए, बड़े दुख भरे स्वर में बोलेः "दिन भर अगर खाना खाता रहूंगा तो शहर कब घूमूंगा?"
कैलाशनाथ शास्त्री, और कोई अड़चन नहीं है, मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है, तुम्हारी तरफ से अड़चन है। जरा अपनी बुद्धि को दरवाजे के बाहर छोड़ कर भीतर आओ, और तत्क्षण मेरी बात समझ में आने वाली है।
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
पांचवां प्रवचन

मेरे संन्यासी तो मेरे हिस्से हैं

पहला प्रश्नः ओशो, संस्कृत में एक सुभाषित है कि यदि शील अर्थात शुद्ध चरित्र न हो तो मनुष्य के सत्य, तप, जप, ज्ञान, सर्व विद्या और कला, सब निष्फल होते हैं।
सत्यं तपो जपो ज्ञान
सर्वा विद्याः कला अपि।
नरस्य निष्फलाः सन्ति
यस्य शील न विद्यते।।
ओशो, निवेदन है कि इस सूक्ति पर कुछ कहें।

आनंद किरण, सुभाषित शब्द तो बहुत प्यारा है। संभवतः दुनिया की किसी
और भाषा में वैसा शब्द नहीं। उस शब्द से बहुत-सी बातों की ध्वनि उठती है-- खिले हुए फूलों की, बजती हुई बांसुरी की, अमृत के स्वाद की, मिठास की। जीवन में यूं तो जहर है--लेकिन जो न पहचाने, न जाने, उसके लिए। जो पहचान ले, जान ले, जीवन ही अमृत भी हो जाता है। नासमझ तो घर को खाद से भर ले सकता है, और तब दुर्गंध ही दुर्गंध हो जाएगी। समझदार खाद को घर में नहीं भरता, बगिया में फैलाता है। उसी खाद से फूलों की सुगंध उठती है। शब्द ही गालियां बन जाते हैं और शब्द ही सुभाषित।
सुभाषित हमने उन सूक्तियों को कहा है, जो बुद्धों ने कहीं, जाग्रत पुरुषों ने कहीं, जिनके शब्दों में शून्य की झंकार है। वे शून्य में ही मीठे नहीं, सुभाष ही नहीं, जीने में और भी मीठे हैं। इशारे हैं उनमें, इंगित हैं, दूर चांद की तरफ उठी हुई अंगुलियां हैं। जैसे फूल खिलता है-- सुबह-सुबह कमल का खिला फूल; कीचड़ से निकलता है। कीचड़ को देख कर किसे भरोसा आए कि इससे कमल भी पैदा हो सकता है! कमल शब्द का ही अर्थ है कीचड़ से पैदा हुआ, मल से पैदा हुआ।
कमल के लिए संस्कृत शब्द हैः पंकज। पंक का अर्थ होता हैः कीचड़; ज का अर्थ होता हैः जन्मा; कीचड़ से जन्मा। संस्कृत की कुछ खूबियां हैं! क्योंकि जिन लोगों ने उसे रचा, बुना, उसे रूप दिया, रंग दिया, उनमें बहुतों के हाथ बुद्धों के हाथ थे। बांसुरी किसके हाथ में पड़ जाएगी, इस पर सब निर्भर है। बांसुरी तो पोली है, कौन गाएगा गीत! बुद्धों ने शब्दों को छूकर भी समाधि का रूप दे दिया।
कमल कीचड़ से खिलता है। कीचड़ से ही उठता है, कीचड़ से ही जन्मता है। कीचड़ में ही छिपा था। न तो कीचड़ को देख कर कोई कह सकता है कि कमल इसमें छिपा होगा और न कमल को देख कर कोई कह सकता है कि यह कीचड़ से पैदा हुआ होगा। मगर कमल और कीचड़ के बीच सारे जीवन की कथा है। पैदा तो हर एक व्यक्ति कीचड़ की तरह होता है, लेकिन संभावना लाता है कमल होने की।
फिर, कमल झील पर तैरता है--फिर भी झील का जल उसे छू नहीं पाता। झील में होकर भी झील में नहीं। झील में तो होता है, लेकिन अछूता। झील में तो होता है, अस्पर्शित। कमल तो झील में होता है, लेकिन झील कमल में नहीं हो पाती। यही संन्यासी की जीवनचर्या है।
और सुभाषित भी ऐसे ही हैं। शब्दों में हैं, लेकिन शब्दों में मत पकड़ना, नहीं तो चूक जाओगे। शब्दों से बहुत ज्यादा उनमें भरा है। शब्द को ही पकड़ा तो कुछ पकड़ में न आएगा। खोल ही हाथ लगेगी, भीतर का सार चूक जाएगा।
खोल को तो अलग कर दो, शब्दों को तो हटा दो। शब्दों के जाल में मत उलझ जाना। उसी जाल में उलझे हुए लोगों का नाम पंडित है। शब्दों के भीतर झांको, उनमें मौन को सुनो, सन्नाटे को अनुभव करो। शब्द अगर विचारे तो दर्शन का जंगल है फिर। जिसका कोई अंत नहीं। झाड़ियों पर झाड़ियां। और रोज घनी होती जाती हैं। और उलझाव बढ़ता जाता है। शब्दों पर ध्यान करो!
सुभाषित ध्यान करने के लिए हैं। उनको पीओ! चुप, मौन, उनको भीतर उतरने दो। उन्हें मांस-मज्जा-हड्डी-खून बनने दो। वे तुम्हारे भीतर रसधार की तरह

बहने लगें। यह एक अलग ही प्रक्रिया है। विचारना बुद्धि की बात है; पी जाना, पचा लेना अस्तित्वगत है, बौद्धिक नहीं। और तब ये छोटे-छोटे वचन--ये छोटे- छोटे फूल--इतना छिपाए हुए हैं। एक-एक सुभाषित में एक-एक वेद छिपा है। सत्यं तपो जपो ज्ञान
सर्वा विद्याः कला अपि।
नरस्य निष्फलाः सन्ति
यस्य शील न विद्यते।।
"जहां शील न हो वहां तप, सत्य, जप, ज्ञान, विद्या, कला, सब व्यर्थ हैं।"
यह शील क्या है? आनंद किरण, तुमने जहां से भी अनुवाद लिया, वहीं भूल है। अनुवाद में ही भूल आ गई, पांडित्य आ गया। जिसने भी किया हो यह अनुवाद, चूक गया। निशाना ठीक जगह नहीं लगा। अनुवाद करने वाले लोग शब्दों का अनुवाद करते हैं। काश, ये सुभाषित सिर्फ शब्द ही होते तब तो इनका अनुवाद बड़ा आसान था। इनका अनुवाद तो केवल ध्यानी ही कर सकते हैं, समाधिस्थ ही कर सकते हैं।
अनुवाद तुमने जो दिया हैः "शील अर्थात शुद्ध चरित्र।"
यह जो अर्थात आ गया और शुद्ध चरित्र आ गया, फिर सब भ्रांति हो गई; फिर
सब गड़बड़ हो गया; फिर तुमने गुड़ गोबर कर दिया; फिर कमल कीचड़ हो गया। कहां शील और कहां चरित्र! जमीन-आसमान का फर्क है। उस भेद को ही समझो तो सुभाषित का अर्थ प्रकट होने लगेगा।
चरित्र होता है ऊपर से आरोपित। दूसरे सिखाते हैं तुम्हें जो, वह चरित्र। और जो तुम्हारे अंतर से आविर्भूत होता है, वह शील। शील का अर्थ हैः ध्यान से खुली हो आंख, फिर तुम्हारा जो हलन-चलन है, गति है, तुम्हारे जीवन की जो विधि है, शैली है, वह शील।
खुद की तो आंख बंद है, खुद तो अंधे हो, किसी ने लाठी पकड़ा दी, किसी ने दिशा बता दी, किसी ने कहा यूं जाना, यूं जाना, बाएं मुड़ जाना, दाएं मुड़ जाना--और तुम चल पड़े हो। तुम्हें पक्का नहीं तुम क्या कर रहे हो, तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि तुम ठीक चल रहे हो कि नहीं चल रहे हो, तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि जिसका तुमने मार्ग-निर्देश लिया है वह भी अंधा था या आंख वाला था; कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने भी किसी और से निर्देश लिया हो! यूं सदियों-सदियों निर्देश चलते रहते हैं।
नानक ने कहा हैः अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।
अंधे अंधों को धक्के दे रहे हैं, अंधे अंधों को चला रहे हैं, और दोनों कुएं में गिर रहे हैं। अंधों की अपनी दुनिया है। अंधे अनुकरण ही कर सकते हैं। चरित्र हैः अनुकरण।
मुल्ला नसरुद्दीन गया था ईद की नमाज पढ़ने ईदगाह। जब नमाज करने को झुका तो उसके कुर्ते का एक छोर पाजामे में अटका रह गया पीछे। उसके पीछे के आदमी ने देखा, शोभा योग्य नहीं था, तो उसने झटका देकर कमीज को पाजामे से छुटकारा दिला दिया। वह जो पाजामे में अटक गया था छोर, उसको मुक्त कर दिया। मुल्ला नसरुद्दीन ने सोचा, होगा जरूर इसमें कोई राज! नहीं तो क्यों पीछे वाला आदमी झटका देता! होगा इसमें कोई रिवाज! सो उसने आगे वाले आदमी के कमीज को पकड़ कर झटका दिया। आगे वाले आदमी ने भी सोचा कि शायद नमाज का यह हिस्सा है, सो उसने आगे वाले आदमी की कमीज को पकड़ कर झटका दिया। आगे वाला आदमी चौंका, उसने कहा कि क्यों मेरे कमीज को झटका दे रहे हो? उसने कहा कि मुझसे न पूछो, पीछे वाले से पूछो। पीछे वाले से पूछा; उसने कहा, मुझसे न पूछो, यह मुल्ला नसरुद्दीन, जो मेरे पीछे बैठा है! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, मुझे तो बीच में डालो ही मत! मेरे जो पीछे बैठा है! इसी कमबख्त ने मेरे कमीज को झटका दिया। फिर यह सोच कर कि नमाज तो व्यवस्था से करनी चाहिए, मैंने भी झटका दिया। मेरा इसमें कोई हाथ नहीं।
और सदियों-सदियों से ऐसा तुम कर रहे हो। इस करने का नाम चरित्र है। चरित्र हैः अनुकरण। न बोध है, न बुद्धि है; न सोचा है, न समझा है, न ध्याया है; और कर रहे हैं तो तुम भी कर रहे हो। किसी एक घर में पैदा हुए हो, वहां एक चरित्र की व्यवस्था थी, तो तुम भी पूरा कर रहे हो। नहीं कर पाते हो तो अपराध अनुभव होता है और करते हो तो जीवन में कोई फूल नहीं खिलते।

चरित्र की यह दुविधा है--और यही उसकी पहचान भी। पूरा करो, तो जीवन उदास-उदास। न पूरा करो, तो ग्लानि, आत्म-ग्लानि। हर हाल में मुसीबत! पूरा करो तो मुसीबत। तुम्हारे संतों को देखो, महात्माओं को देखो! उदास। न मुस्कुराहट है जीवन में, न हंसी की फुलझड़ियां हैं, न आनंद का उत्सव है, न दीए जलते हैं, न रंग है, न गुलाल है, न होली, न दीवाली। मरुस्थल की तरह रूखे- सूखे लोग, उनको देख कर किसी को भी विरक्ति पैदा हो जीवन से, उनको देख कर जीवन व्यर्थ मालूम पड़ने लगे, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। और यही उनका उपदेश, और उनका जीवन उनके उपदेश का प्रमाण कि जीवन व्यर्थ है।
और मैं तुमसे कहता हूंः जीवन व्यर्थ नहीं है। क्योंकि जीवन में ही छिपा है सत्य, और जीवन में ही छिपा है मोक्ष, और जीवन में ही छिपा है परमात्मा। जीवन में छिपा है सारा साम्राज्य शाश्वत का, सनातन का। एस धम्मो सनंतनो। यही जीवन तो सनातन धर्म है। और यह जीवन कितने रंगों में, कितने रूपों में प्रकट हो रहा है!
मगर, अगर तुम किसी की बात मान कर चलते रहे, मान कर ही चलते रहे, तो तुम्हारा कभी इस जीवन से संबंध न जुड़ पाएगा। तुम टूटे-टूटे रह जाओगे, तुम उदास हो जाओगे। अनुकरण का अर्थ हैः थोथा हो जाना, नकली हो जाना; झूठा सिक्का, पाखंड। चरित्र तो पाखंड होता है। इसीलिए मैं कहता हूंः संन्यासी का कोई चरित्र नहीं होता। शील तो होता है, लेकिन चरित्र नहीं होता। चरित्र है बाह्य व्यवस्था। इसलिए हिंदू का चरित्र अलग होता है, मुसलमान का अलग होता है, जैन का अलग होता है, बौद्ध का अलग होता है, सिक्ख का अलग होता है, पारसी का अलग होता है। लेकिन शील तो अलग-अलग नहीं होते। बुद्ध का भी वही, कृष्ण का भी वही, महावीर का भी वही, लाओत्सू का भी वही, जरथुस्त्र का भी वही। शील तो अलग-अलग नहीं हो सकते। लेकिन आचरण तो अनंत प्रकार के हो सकते हैं।
दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं है जो कहीं किसी देश में, किसी जाति में, किसी काल में आदृत न रही हो। और ऐसी भी कोई चीज नहीं है जो किसी देश में, किसी जाति में, किसी काल में अनादृत न रही हो। पृथ्वी पर हजारों तरह के कबीले हैं। जो तुम सोच भी नहीं सकते, उसे करने वाले लोग भी हैं। और जो तुम कर रहे हो, उस पर हंसने वाले लोग भी हैं। चरित्र के साथ यह दुविधा रहेगी। एक ईसाई मिशनरी को अफ्रीका के जंगलों में आदमखोर लोगों ने पकड़ लिया। ईसाई मिशनरी ने समझाने की कोशिश की कि तुम यह क्या कर रहे हो, आदमी को मार रहे हो, मुझे मार रहे हो! मुझे बचने की उतनी फिकर नहीं, मगर तुम यह कर क्या रहे हो! क्या आदमी को खाना उचित है? वे आदमखोर बोले--दूसरे महायुद्ध के जमाने की बात है--कि तुम और हमें सिखाते हो! लाखों लोग मारे जा रहे हैं, खबरें हम तक भी आती हैं, हम तुमसे यह पूछते हैं, इतने आदमियों को मारते हो तो करते क्या हो? अरे, खाने के लिए कोई मारे तो समझ में आता है। न खाना है न पीना है, सिर्फ मारना है! यह बात निपट मूर्खतापूर्ण है। हम तो मारते हैं तभी जब खाना होता है। और तुम तो खाना भी नहीं होता और मारे चले जाते हो! और एक-दो नहीं, लाखों को मारते हो। और हमने तो सुन रखा है कि यही तुम्हारा इतिहास है। और हमको तुम कहते हो, अमानवीय! और तुम मनुष्य हो!
बात तो बड़ी सोचने जैसी है। तीन हजार साल में आदमी ने पांच हजार युद्ध लड़े हैं। अरबों लोगों को काटा है! और ये काटने वाले लोग सोचते हैं कि आदमखोर जो हैं, आदमियों को खाने वाले जो लोग हैं, ये पशु से भी गए-बीते हैं। और ये अरबों को मारने वाले लोग, ये ईसाई हैं, मुसलमान हैं, हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं--ये धार्मिक लोग हैं।
महाभारत के युद्ध का अगर हम शास्त्रीय विवरण स्वीकार करें, जो कि करने योग्य नहीं है, तो अंदाजन सवा अरब आदमी महाभारत के युद्ध में मरे। सवा अरब आदमी! अभी भी पृथ्वी की कुल आबादी चार अरब है। सवा अरब आदमी उस युद्ध में मरे! और मारने वाले लोग धर्म के नाम पर मार रहे थे। धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे! वह जो कुरुक्षेत्र था, वह धर्म का क्षेत्र था। धर्म की रक्षा के लिए मार-काट की जा रही थी। अरे, किसी और चीज के लिए मार-काट करो तो समझ में भी आ जाए, धर्म की रक्षा के लिए मार-काट! मार-काट से धर्म की रक्षा होगी! अधर्म से धर्म की रक्षा होगी!

ठीक कहा उस आदमखोर ने कि हम तो कभी-कभी खाते हैं, और हम तभी किसी को मारते हैं जब भूखे होते हैं, यूं हम नहीं मारते तुम्हारे जैसे! तुम हो पशुओं से गए-बीते! मिशनरी तो बहुत हैरान हुआ इस तर्क से। बात में तो बल था। फिर भी अपनी जान तो बचाने के लिए उसे कोशिश और भी करनी जरूरी थी। उसने कहा कि तुमको धर्म का कोई भी स्वाद नहीं। उन्होंने कहा, है जी! पहले भी हम दो मिशनरी खा चुके हैं! कोई तुम नए थोड़े ही हो। हम तो मिशनरियों की प्रतीक्षा ही करते हैं। हमें और धर्म का स्वाद नहीं! तुम्हें नहीं है। तुमने कभी मिशनरी खाया? पादरी-पुरोहित-पंडित तुमने कभी खाया? साधु? अरे, हम सबको पचाए हैं। अनुभव से कहते हैं, सबका स्वाद लिया है। और तुम हमसे पूछ रहे हो कि धर्म का स्वाद है या नहीं!
आचरण तो अजीब-अजीब तरह के होंगे।
अफ्रीका का एक कबीला चींटे और चींटियों का भोजन करता है। एकदम चींटे- चींटियां इकट्ठा करता रहता है। छोटे-छोटे बच्चे चींटा दिखा कि गप्प कर जाते हैं। और तुम्हारी तो सब्जी में भी चींटी दिख जाए, चींटा मिल जाए मरा हुआ, तो सब्जी भी खाई न जाए तुमसे! और वे इसको स्वादिष्ट मानते हैं। चींटे- चींटियों को इकट्ठा करते हैं, सुखा कर रखते हैं। मौके-बेमौके मेहमान आ जाए--तो चींटे-चींटियों का नाश्ता।
चीन में लोग सांप को खाते हैं। सांप की सब्जी बहुत बहुमूल्य सब्जी समझी जाती है। और साधारण आदमी ही नहीं खाते, बौद्ध भिक्षु भी खाते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु लिंची के संबंध में यह उल्लेख है कि कोई मेहमान आया हुआ था--प्रतिष्ठित; वजीर था, बड़े ओहदे पर था, धनपति था--उसके स्वागत में लिंची ने अपने पूरे आश्रम को भोजन दिया था। पांच सौ भिक्षु उसके साथ भोजन करने बैठे। लिंची के पास ही वजीर बैठा था। और जब रसोइयों ने आकर भोजन परोसा और प्रधान रसोइए ने आकर वजीर की और लिंची की थाली में सब्जी परोसी, तो लिंची थोड़ा हैरान हुआ। उसने कुछ उठा कर दिखाया रसोइए को-- यह क्या है? सांप का मुंह था। मुंह नहीं डाला जाता, मुंह काट कर फेंक दिया जाता है, क्योंकि मुंह में जहर की ग्रंथि होती है। सब्जी बाकी शरीर की बनती है, मुंह को छोड़ कर। लेकिन यह कहानी झेन शास्त्रों में बहुत आदर से उल्लिखित है। आदर का कारण है।
जब उसने मुंह उठा कर दिखाया तो उस रसोइए ने क्या किया! वह भी भिक्षु था, आश्रम का रसोइया था। उसने झट से मुंह हाथ में लिया, अपने मुंह में डाल दिया और कहाः धन्यवाद! गुरु तो बहुत प्रसन्न हुआ। न जरा झिझका, न जरा परेशान हुआ, सांप के मुंह को भी अपने मुंह में डाल दिया। बात को यूं पचा गया। किसी की समझ में ही नहीं आया कि क्या हुआ। लोग यही समझे कि कोई मीठी चीज, कोई स्वादिष्ट भोजन प्रसाद रूप में भिक्षु को मिला है।
लेकिन सांप की सब्जी खाई जाती थी। अब भी खाई जाती है। अभी कल के अखबार में खबर थी कि एक आदमी रोज ही एक सांप खाता है चीन में। जिस दिन सांप नहीं मिलता, उस दिन उसकी तबीयत ढीली हो जाती है, सुस्त हो जाता है। सांप चाहिए ही चाहिए। पौष्टिक आहार है। उसके बिना वह नहीं जी सकता।
दुनिया में कहीं भी कोई सांप को खाने का ख्याल न करे! मगर बिच्छू को खाने वाले लोग भी हैं। और जो जिस घर में पैदा हुआ है, जिस परिवार में, जिस संस्कार में, उसको ही पकड़ लेता है। और तो कुछ पकड़ने को होता भी नहीं। मां- बाप सिखा देते हैं; शिक्षक, गुरु, पंडित-पुरोहित, सब सिखा देते हैं; वह वैसा ही आचरण करना शुरू कर देता है।
इस आचरण का नाम शील नहीं है। यह तो बिल्कुल थोथी बात है। यह तो ऊपर से पहनाए गए वस्त्रों जैसी है। यह तो मुखौटा है। जैसे किसी ने चेहरे को रंग दिया हो, सुंदर बना दिया हो। यह तो पानी पड़ जाए एक तो बह जाए। बूंदा-बांदी हो जाए तो सब राज खुल जाए।
इसलिए, आनंद किरण, शील का अर्थ शुद्ध चरित्र न करो। और तुम्हारा मन--या जिसने भी यह अनुवाद किया हो--सिर्फ चरित्र से ही न माना, उसमें शुद्ध और जोड़ दिया। चरित्र काफी नहीं, शुद्ध भी होना चाहिए। प्रेम काफी नहीं, शुद्ध प्रेम। दूध काफी नहीं, शुद्ध दूध। मिलावटी दिमाग हो गया हमारा। हर चीज में मिलावट है। आजकल तो प्रेमी भी प्रेयसियों से कहते हैं कि बिल्कुल खालिस

प्रेम है, सौ टका। ऐसा मत समझना कि कुछ मिलावट है, कि पानी वगैरह मिलाया हुआ है, बिल्कुल शुद्ध प्रेम है, कोई फिल्मी नहीं है।
अब तो कोई चीज शुद्ध नहीं है। इसलिए शुद्ध का आग्रह बढ़ता जा रहा है।
जब शुद्ध घी मिलता था तो दुकानों पर तख्तियां नहीं लगती थीं कि शुद्ध घी बिकता है। तब "घी बिकता है", इतना ही काफी था। जब से शुद्ध घी नहीं मिलता, तब से "शुद्ध घी बिकता है"।
अब तो हालत और बिगड़ गई। अब तो शुद्ध डालडा भी बिकता है। अब तो डालडा भी शुद्ध कहां है? इसलिए अब शुद्ध डालडा की भी तख्ती लगी रहती है कि यहां शुद्ध डालडा मिलता है। पहले डालडा यानी अशुद्ध ही चीज थी। अब डालडा शुद्ध चीज है, क्योंकि उससे भी रद्दी घी को मिलाने वाले लोग हैं। घी भी नहीं है, उसको भी मिलाने वाले लोग हैं। चर्बी मिला दें, कुछ भी मिला दें।
अब तो दवाओं का भी कोई भरोसा नहीं है। अब तो तुम इंजेक्शन ले रहे हो और सोच रहे हो इंजेक्शन है, हो सकता है सिर्फ पानी हो। और वह पानी भी जरूरी नहीं कि शुद्ध हो।
तो हम इतने से ही राजी नहीं होते कि चरित्र। चरित्र पर्याप्त है। चरित्र का अर्थ ही होना चाहिएः शुद्ध। और चरित्रहीनता का अर्थ होगाः अशुद्ध। शुद्ध चरित्र का क्या मतलब? लेकिन हमारे दिमाग में मिलावट घुस गई है। एक तो चरित्र शील का अर्थ नहीं है--यह बाहरी आडंबर है--दूसरा इसमें भी शुद्ध जोड़ रहे हो! आडंबर को और भी झूठा बना रहे हो।
शील का अर्थ होता हैः ध्यान के शून्य में जिसने अपने अंतःकरण को पहचाना है; जिसने शून्य में अपने केंद्र से संबंध जोड़े हैं; जो अपने प्राणों के प्राण से संयुक्त हुआ है; जिसने पहली दफा जाना है कि मैं परिधि ही नहीं हूं, केंद्र भी हूं; और जिसकी परिधि केंद्र से प्रभावित होने लगी-- उसका नाम शील है। शील है तुम्हारे भीतर से ऊगा हुआ और चरित्र है ऊपर से थोपा हुआ। जैसे कोई कागजी फूल लाकर वृक्षों पर अटका दे। हो सकता है राह चलते राहगीरों को धोखा हो जाए।
मगर तुम किसको धोखा दे रहे हो? क्या मधुमक्खियों को धोखा दे पाओगे? कोई एक मधुमक्खी भी तुम्हारे कागज के फूल पर न बैठेगी। क्या तुम भंवरों को धोखा दे पाओगे? कोई भंवरा तुम्हारे कागज के फूलों के पास गुनगुन करके गीत न गाएगा। तुम किसे धोखा दे रहे हो? और तुम सबको भी धोखा दे दो, मगर तुम्हें तो पता ही रहेगा कि फूल कागजी हैं। तुमने ही लटकाए हैं। तुम अपने को तो धोखा न दे पाओगे। तुम वृक्ष को तो धोखा न दे पाओगे। इन कागजी फूलों को वृक्ष रस नहीं देने लगेगा। और अगर दिया भी उसने रस तो ये गल जाएंगे। ये मर जाएंगे। वह जीवनदायी रस इनके लिए मृत्यु हो जाएगा। असली फूल वृक्ष में लगते हैं। उसके अंग होते हैं।
शील है असली फूल--तुम्हारे भीतर ऊगा, तुम्हारे भीतर लगा। नकली नहीं, बाजारू नहीं, कागजी नहीं। और तब इस सुभाषित का अर्थ खुल सकेगा। तो मैं शील का अर्थ शुद्ध चरित्र नहीं करता हूं। यह "अर्थात शुद्ध चरित्र" छोड़ दो! ख्याल से ही हटा दो! इतना ही कहो कि शील न हो तो मनुष्य के जीवन में सत्य नहीं होता।
क्या होगा! अगर सत्य हो तो शील ही होगा; अगर शील हो तो सत्य भी होगा। जिसने अपने जीवन के केंद्र को जान लिया, उस जानने को, उस पहचानने को ही तो सत्य का अनुभव कहते हैं। और जिसके जीवन में आत्म-अनुभव हो, उसके जीवन में तप होता है।
तप का क्या अर्थ है? तप शब्द को समझना चाहिए।
लोग सोचते हैं तप का अर्थ है अपने को सताना, गलाना, परेशान करना, हैरान करना। तब तो तप एक तरह की आत्म-हिंसा हो गई। तो फिर दुनिया में दो तरह के लोग हैंः दूसरों को सताने वाले और अपने को सताने वाले। इनमें कुछ फर्क नहीं है, जहां तक सताने का संबंध है, ये एक जैसे हैं। इनकी कोटियां अलग-अलग नहीं हैं। कोई दूसरे को अगर सताए तो हम उसको दुष्ट कहते हैं। और अपने को सताए तो उसको संत कहते हैं। गजब के लोग हैं! हम भी गजब के लोग हैं! हमारी कोटियां भी गजब की, हमारी व्याख्याएं भी अदभुत!
अरे, दूसरे को जो सताए वह उतना दुष्ट नहीं है, क्योंकि दूसरा अपनी आत्म-रक्षा भी कर सकता है। लेकिन जो खुद को सताए, वह तो बहुत ही दुष्ट है,

क्योंकि खुद की अब कोई आत्म-रक्षा करने वाला भी नहीं है। अब तो जिसको हमने रक्षक समझा था, वही सता रहा है। अब तो जिससे हम बचना चाहते थे, वही मार रहा है। अब कौन बचाएगा? जिसको हमने सुरक्षा मानी थी, वही झूठी सिद्ध हो गई। इसलिए जो कायर हैं और दूसरों को सताने में डरते हैं--क्योंकि दूसरों
को सताने में खतरा है; दूसरों को छेड़ने में खतरा है! जैसे कोई मधुमक्खी का छत्ता छेड़ दे! दूसरे को छेड़ोगे तो दूसरा बदला लेगा, आज नहीं कल, कल नहीं परसों। और कौन जाने खतरनाक आदमी हो!
मुल्ला नसरुद्दीन चला जा रहा था एक रास्ते से, ऊपर से एक ईंट गिरी, उसकी खोपड़ी पर पड़ी। भनभना गया। तमतमा गया। उठाई ईंट और गुस्से में गया जीना चढ़ कर ऊपर कि सिर खोल दूंगा! कौन हरामजादा है जिसने ईंट पटकी? देखता भी नहीं!
उधर जाकर देखा तो एक पहलवान खड़ा था। अभी दंड-बैठक लगा कर ही उठा था। पहलवान को देख कर मुल्ला चौकड़ी भूल गए। पहलवान ने पूछा; "कहो, क्या काम है?"
उसने कहाः "कुछ नहीं, आपकी ईंट गिर गई थी, वह वापस करने आया हूं। अरे, कभी भी जरूरत हो तो पड़ोस में ही रहता हूं, आवाज दे दी। कोई चीज गिर जाए, कुछ हो तो उठा कर ला दूंगा। सेवा तो हमारा धर्म है!"
भूल गए चौकड़ी! गए तो थे कि खोल दूंगा सिर, ईंट लौटा कर वापस अपना सिर मलते आ गए!
एक दिन मुल्ला घर लौटा, देखा कि पत्नी के बिस्तर पर कोई सोया हुआ है। दोनों कंबल के भीतर हैं। आगबबूला हो गया। सोचा कि निकाल लूं तलवार, कि पिस्तौल। पर इसके पहले कि पिस्तौल निकालने जाऊं, जरा देख तो लूं कि कौन है? कंबल उठाया, वही पहलवान! जल्दी से कंबल उढ़ा दिया। पत्नी ने कहाः "क्यों, क्या करते हो?"
"अरे," उसने कहा, "बेचारे पहलवान को ठंड न लग जाए! और एक कंबल ले आऊं, भैया? शांति से सो!" मगर दिल तो भनभना रहा था। यह तो हद हो गई! ईंट भी ठीक थी, मगर अब जरा बात आगे बढ़ गई बहुत! कंबल तो उढ़ा कर बाहर लौट आया, पहलवान का छाता रखा था। पहलवान का छाता अपनी टांग पर रख कर तोड़ दिया और कहा कि हे प्रभु, अब ऐसा हो कि जम कर बरसे, पानी ऐसा बरसे कि कमबख्त को पता चल जाए! घर पहुंचने में मजा आ जाए इसको भी!
अब और क्या करोगे? उसका छाता तोड़ कर परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं।
जो लोग दूसरों को नहीं सता सकते, क्योंकि दूसरों को सताना खतरे से खाली नहीं है, जोखिम का काम है, वे अपने को सताने लगते हैं। और मजा यह है कि यही कायर तुम्हारे महात्मा बन जाते हैं। यही तुम्हारे संत बन जाते हैं। इन्हीं के चरणों में तुम सिर झुका रहे हो। इन्हीं कायरों की पूजा चल रही है।
तप का यह अर्थ नहीं है। तप का अर्थ होता है--तप शब्द में ही अर्थ छिपा हुआ हैः तप यानी तपिश। एक ऊर्जा, एक गर्मी। जैसे भीतर सूरज ऊग आया हो। जैसे जीवन की सारी ऊर्जा जाग्रत हो गई हो। जैसे सोए स्रोत खुल गए हों। झरने फूट पड़े हों। एक दीप्ति, एक ओजस।
जिस व्यक्ति ने स्वयं के सत्य को जाना है, उसके जीवन में एक गर्मी होगी--क्रांति की, बगावत की। उसके जीवन में एक आग्नेयता होगी। क्योंकि उसके भीतर आत्म-ज्योति का दीया जलेगा। उसके भीतर ठंडा बरफ जैसा हृदय नहीं होगा, मुर्दा हृदय नहीं होगा, जीवंत हृदय होगा। तप का अर्थ हैः ऊर्जा, गर्मी। जैसे सूरज निकल आता है तो फूल जो बंद थे रात भर, खुल जाते हैं; पक्षी जो रात भर सोए रहे, जग जाते हैं; जिनके कंठ रात भर चुप थे, अचानक गीतों में फूट पड़ते हैं; वैसे ही सत्य के अनुभव के साथ तुम्हारे जीवन में ऊर्जा का पदार्पण होता है। सूरज ऊगता है, फूल खिलते हैं, जागरण आता है--और गीत और नृत्य और उत्सव।
तप अपने को सताना नहीं है, अपनी जीवन-ऊर्जा को उसकी पराकाष्ठा पर प्रकट होने देना है। और जिसकी जीवन-ऊर्जा पराकाष्ठा पर प्रकट होगी, निश्चित ही उसका अंतिम परिणाम सृजन होगा, कला होगी। क्योंकि ऊर्जा तुम्हें स्रष्टा बनाएगी। तुम गीत रचो, कि मूर्ति रचो, कि चित्र बनाओ, कि

तुम जो कुछ भी करोगे, उस सब में एक सौष्ठव होगा, उस सब में एक संस्कृति होगी। तुम मिट्टी छुओगे तो सोना हो जाएगी। और मिट्टी को छूकर सोना बना देने का नाम ही कला है।
जब तक स्वयं के सत्य को नहीं जाना, शील को नहीं पहचाना, अपने भीतर के केंद्र को अनुभव नहीं किया, तब तक सब झूठ है; उसके साथ ही सब सच हो जाता है। एक को जान लो तुम, स्वयं को, तो तुम्हारे जीवन में फूल ही फूल खिल जाते हैं। इतने फूल खिल जाते हैं कि तुमने कभी कल्पना भी न की थी। इतने गीत कि तुमने कभी सोचा भी न था कि तुम्हारे भाग्य में होंगे! इतना आनंद, इतना नृत्य, इतनी ऊर्जा कि नृत्य तो फूटेगा ही, आनंद तो जागेगा ही। ऊर्जा तो अपने आप नाचती है। ऊर्जा बिना नाचे नहीं रह सकती! झरने फूट पड़ेंगे!
और तभी जप। यह बैठ कर जो रामनाम की चदरिया ओढ़े हुए और माला हाथ में लिए हुए जप कर रहे हैं मुर्दों की भांति, इनके जप का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन जप का अर्थ होता हैः जब तुम्हारे जीवन में आनंद की पुलक आई, लहर दौड़ी और तुम्हारे भीतर अनुग्रह का भाव उठा। परमात्मा को--या परमात्मा शब्द को बीच में न भी लाओ तो भी चलेगा--अस्तित्व को जब धन्यवाद देने के लिए तुम झुके, उस झुकने का नाम जप है। फिर वह मौन भी हो सकता है, मुखर भी हो सकता है।
उस स्वानुभूति के पहले जो ज्ञान है, कचरा है, किताबी है, शास्त्रीय है। उस स्वानुभव के बाद ही ज्ञान है। ज्ञान एक ही हैः अपने को जानना। उपनिषदों ने बड़ी अनूठी व्याख्या की है। दुनिया में कभी ऐसी व्याख्या नहीं की गई। जिसको आज हम विज्ञान कहते हैं, उसको उपनिषद अविद्या कहते हैं। बाहर का ज्ञान अविद्या। यह भूगोल और यह इतिहास और यह गणित और यह भौतिकी और यह रसायन--बाहर का सब ज्ञान उपनिषद अविद्या कहते हैं। और भीतर के ज्ञान को विद्या कहते हैं।
तो ज्ञान तो एक ही बचा फिरः स्वयं को जानना, आत्म-साक्षात्कार। और शेष
सब अविद्या हो गया। शेष सब कामचलाऊ है। उपादेयता है उसकी, लेकिन उससे कोई मुक्ति नहीं बनती। और उससे जीवन में कोई आनंद नहीं निर्मित होता और अमृत नहीं निचुड़ता। ज्ञान तो वह है जो मुक्तिदायी हो।
सा विद्या या विमुक्तये।
वही है विद्या जो मुक्ति लाए। यह परिभाषा हुई विद्या की--जो मुक्ति लाए वह विद्या। जो बांध दे, वह विद्या नहीं। जो खोल दे सारे बंधन, वही विद्या, वही ज्ञान।
सत्यं तपो जपो ज्ञान
सर्वा विद्याः कला अपि।
नरस्य निष्फलाः सन्ति
यस्य शील न विद्यते।।
शील न हो तो कुछ भी नहीं। भीतर अंधेरा हो तो कुछ भी नहीं। भीतर उजाला
हो तो सब कुछ। इसलिए मेरा जोर एक ही बात पर है--सिर्फ एक बात पर--कि कुछ भी हो, किसी भी कीमत पर हो, समाधि को पाना है। ध्यान को जगाना है। ध्यान की अंतिम चोटी को छू लेना है। वही समाधि है, संबोधि है, बुद्धत्व है। उसको छू लिया तो शेष सब रूपांतरित हो जाएगा। और उसको न छुआ, तो तुम लाख वीणा बजाओ-- तकनीकी दृष्टि से शायद तुम वीणावादक हो जाओगे, लेकिन तुम्हारे वीणा बजाने में प्राण नहीं होंगे। तार झनझनाएंगे, गीत भी ओंठों से आएगा, मगर हृदय से नहीं।
अकबर ने तानसेन से कहा था कि तेरा वीणा-वादन देख कर कभी-कभी यह मेरे मन में ख्याल उठता है कि कभी संसार में किसी आदमी ने तुझसे भी बेहतर बजाया होगा या कभी कोई बजाएगा? मैं तो कल्पना भी नहीं कर पाता कि इससे श्रेष्ठतर कुछ हो सकता है।
तानसेन ने कहा, क्षमा करें, शायद आपको पता नहीं कि मेरे गुरु अभी जिंदा हैं। और एक बार अगर आप उनकी वीणा सुन लें, तो कहां वे और कहां मैं! बड़ी जिज्ञासा जगी अकबर को। अकबर ने कहा, तो फिर उन्हें बुलाओ!
तानसेन ने कहा, इसीलिए मैंने कभी उनकी बात नहीं छेड़ी। आप मेरी सदा प्रशंसा करते थे, मैं चुपचाप पी लेता था, जैसे जहर का घूंट कोई पीता है, क्योंकि मेरे गुरु अभी जिंदा हैं, उनके सामने मेरी क्या प्रशंसा! यह यूं है जैसे कोई सूरज को दीपक दिखाए। मगर मैं चुपचाप रह जाता था, कुछ कहता न था,

आज न रोक सका अपने को, बात निकल गई। लेकिन नहीं कहता था इसीलिए कि आप तत्क्षण कहेंगे, उन्हें बुलाओ। और तब मैं मुश्किल में पडूंगा, क्योंकि वे यूं आते नहीं। उनकी मौज हो तो जंगल में बजाते हैं, जहां कोई सुनने वाला नहीं। जहां कभी-कभी जंगली जानवर जरूर इकट्ठे हो जाते हैं सुनने को। वृक्ष सुन लेते हैं, पहाड़ सुन लेते हैं। लेकिन फरमाइश से तो वे कभी बजाते नहीं। वे यहां दरबार में न आएंगे। आ भी जाएं किसी तरह और हम कहें उनसे कि बजाओ तो वे बजाएंगे नहीं।
तो अकबर ने कहा, फिर क्या करना पड़े? कैसे सुनना पड़े?
तो तानसेन ने कहा, एक ही उपाय है कि यह मैं जानता हूं कि रात तीन बजे वे उठते हैं, यमुना के तट पर आगरा में रहते हैं--हरिदास उनका नाम था--हम रात चल कर छुप जाएं। दो बजे रात चलना होगा; क्योंकि कभी तीन बजे बजाएं, चार बजे बजाएं, पांच बजे बजाएं; मगर एक बार जरूर सुबह-सुबह स्नान के बाद वे वीणा बजाते हैं। तो हमें चोरी से ही सुनना होगा; बाहर झोपड़े के छिपे रह कर सुनना होगा।
शायद ही दुनिया के इतिहास में किसी सम्राट ने--अकबर जैसे बड़े सम्राट ने--चोरी से किसी की वीणा सुनी हो! लेकिन अकबर गया। दोनों छिप रहे एक झाड़ की ओट में, पास ही झोपड़े के पीछे। कोई तीन बजे स्नान करके हरिदास यमुना से आए और उन्होंने अपनी वीणा उठाई और बजाई। कोई घंटा कब बीत गया--यूं जैसे पल बीत जाए! वीणा तो बंद हो गई, लेकिन जो राग भीतर अकबर के जम गया था वह जमा ही रहा।
आधा घंटे बाद तानसेन ने उन्हें हिलाया और कहा कि अब सुबह होने के करीब है, हम चलें! अब कब तक बैठे रहेंगे! अब तो वीणा बंद भी हो चुकी।
अकबर ने कहा, बाहर की तो वीणा बंद हो गई मगर भीतर की बजी ही चली जाती है। तुम्हें मैंने बहुत बार सुना, तुम जब बंद करते हो तभी बंद हो जाती है। यह पहला मौका है कि जैसे मेरे भीतर के तार भी छिड़ गए हैं। और आज सच में ही मैं तुमसे कहता हूं कि तुम ठीक ही कहते थे कि कहां तुम और कहां तुम्हारे गुरु! अकबर की आंखों से आंसू झरे जा रहे हैं। उसने कहा, मैंने बहुत संगीत सुना, इतना भेद क्यों है? और तेरे संगीत में भी और तेरे गुरु के संगीत में इतना भेद क्यों है? जमीन-आसमान का फर्क है।
तानसेन ने कहा, कुछ बात कठिन नहीं है। मैं बजाता हूं कुछ पाने के लिए;
और वे बजाते हैं क्योंकि उन्होंने कुछ पा लिया है। उनका बजाना किसी उपलब्धि की, किसी अनुभूति की अभिव्यक्ति है। मेरा बजाना तकनीकी है। मैं बजाना जानता हूं, मैं बजाने का पूरा गणित जानता हूं--मगर गणित, बजाने का अध्यात्म मेरे पास नहीं! और मैं जब बजाता होता हूं तब भी इस आशा में कि आज क्या आप देंगे? हीरे का हार भेंट करेंगे? कि मोतियों की माला? कि मेरी झोली सोने से भर देंगे कि अशर्फियों से? जब बजाता हूं तब भी नजर भविष्य पर अटकी रहती है, फल पर लगी रहती है। वे बजा रहे हैं, न कोई फल है, न कोई भविष्य, वर्तमान का क्षण ही सब कुछ है। उनके जीवन में साधन और साध्य में कोई फर्क नहीं है, साधन ही साध्य है; और मेरे जीवन में अभी साधन और साध्य में बहुत फर्क है। बजाना साधन है। पेशेवर हूं मैं। उनका बजाना आनंद है, साधन नहीं। वे मस्ती में हैं। वे पीए हैं।
और जो परमात्मा को पीए है, उसके बजाने में जरूर वही शराब कुछ तो बह ही आएगी! उन तक भी बह आएगी जिन्होंने तौबा कर रखी है कि कभी न पीएंगे; उनके कंठों में भी उतर जाएगी। किसी सच्चे पीने वाले के पास अगर बैठ गए, किसी पियक्कड़ के पास अगर बैठ गए, तो तुम्हारे तौबा के जीने से ही उतर-उतर कर तुम्हारे हृदय तक शराब पहुंच जाएगी। तुम्हारी कसमों को तोड़ देगी। तुम्हारे नियम-व्रत-उपवास तोड़ देगी। आनंद तुम्हें बहा ले जाएगा। बह जाओगे तभी पता चलेगा कि अरे, कितनी दूर निकल आए? बहुत दूर निकल आए!
शील हो तो शेष सब आ जाता है। और शील न हो तो तुम जमाते रहो, बिठाते रहो
सब साज-सामान, बस कचरा ही इकट्ठा कर रहे हो। मुक्ति नहीं होगी, और कचरे से दब जाओगे। शील मुक्ति है। चरित्र बंधन है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप बड़ौदा आए थे और घर पर भी आए थे। तब खाने-पीने की कुछ बातें चल पड़ी थीं। फिर तीन दिन के बाद जब आप बंबई वापस जा रहे थे तब मैं

आपको छोड़ने के लिए स्टेशन पर आई थी और तब आपको मैंने कहा था कि दही-शक्कर खाने से जुकाम मिट जाएगा। तब आपने, आज प्रवचन में जैसे मजाकी वातावरण पैदा कर दिया, ऐसा ही वातावरण बना कर मुझे कहा थाः मैं जरूर आऊंगा दही-शक्कर खाने के लिए! तू बुलाएगी जरूर न? तो आप कब आ रहे हैं? मैं इंतजार कर रही हूं।
जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा
रोके जमाना चाहे रोके खुदाई
तुझको आना पड़ेगा
जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा
निभाना पड़ेगा।

वीणा भारती! मैं बामुश्किल एकाध प्रलोभन पार कर पाता हूं, फिर कोई प्रलोभन! इसीलिए तो ऋषि-मुनि कह गए कि यह भवसागर अनंत है! कहां से बात शुरू हुई थी--लस्सी से। बामुश्किल लस्सी से छुटकारा पाया, बूंदी पर आ गई। बूंदी से बचे, रसमलाई पर आ गई। किसी तरह तैर कर रसमलाई पार किए, आइसक्रीम पर पहुंचे, अब यह दही-शक्कर! देख वीणा, इस तरह किसी त्यागी-तपस्वी को भ्रष्ट नहीं करते! इस तरह के प्रलोभन नहीं! इसी तरह तो योग से लोग भ्रष्ट हो चुके हैं--यह दही-शक्कर!
मैं तो जरूर आ जाऊं--क्योंकि मुझे कुछ अड़चन नहीं है भ्रष्ट होने में-- लेकिन फिर तेरी भी सोचता हूं कि तू कहीं मुश्किल में न पड़ जाए! मैं तो आ जाऊं, और तू कहती है कि वादा निभाना पड़ेगा, तो निभा दूंगा, दही-शक्कर भी खानी है तो खा लेंगे। मगर खतरा यह है कि मैं अगर एकदम से तेरे द्वार पर आ जाऊं तो कहीं तेरे हृदय की धड़कन बंद न हो जाए! दही-शक्कर कौन खिलाएगा? दही- शक्कर बनाने के लिए तेरा हृदय भी तो धड़कता रहना चाहिए! इसका पक्का भरोसा दिला कि मैं द्वार पर आऊं तो तेरी धड़कन बंद न हो जाए। और मुझे नारी-हत्या का भागीदार न बना! और फिर तेरे बच्चों की भी सोचता हूं, फिर चितरंजन का भी ख्याल आता, कि इन बेचारों का क्या होगा!

मैं नजर से पी रहा हूं, ये समां बदल न जा
एन झुकाओ तुम निगाहें कहीं रात ढल न जाए
मैं नजर से पी रहा हूं...

मेरे अश्क भी हैं इसमें, ये शराब उबल न जाए
मेरा जाम छूने वाले तेरा हाथ जल न जाए
मैं नजर से पी रहा हूं...
मेरी जिंदगी के मालिक, मेरे दिल पर हाथ रख दे तेरे आने की खुशी में मेरा दम निकल न जाए
मैं नजर से पी रहा हूं...

अभी रात कुछ है बाकी, न उठा नकाब साकी
तेरा रिंद गिरते-गिरते कहीं फिर संभल न जाए
मैं नजर से पी रहा हूं ये समां बदल न जाए
इससे डरता हूं। वादा तो पूरा कर दूं, डरता हूंः
तेरे आने की खुशी में मेरा दम निकल न जाए
डरता ही नहीं हूं, मुझे पक्का भरोसा है। मैं तेरे द्वार पर आया वीणा,
कि तेरा दम निकला!
और सच तो यह है कि अब तेरा घर और कहां है? मैं तेरा घर हूं। अब तू मुझे कहां बुला रही है! अब तो मैं ही तुझे बुला लिया हूं! मेरे संन्यासी तो मेरे हिस्से हो गए। अब उनका क्या घर, क्या द्वार! अगर कहीं हैं भी वे तो इसीलिए हैं कि मैंने उनको वहां रहने को कहा है। और वीणा तो आज कह दूं यहीं रुक जा, तो यहीं रुक जाए। दरवाजे के बाहर भी न जाए।
और जल्दी ही रोक लूंगा। जल्दी ही व्यवस्था करनी है कि जो मेरे हृदय से जुड़ गए हैं, इस सत्संग को एक सागर बना लें, इसके अंग हो जाएं, इसमें डूब

जाएं। एक ही दीया हजारों दीयों को जला सकता है। और जब हजारों दीए जलते हैं एक साथ, जब दीवाली होती है, तभी तो संघ का जन्म होता है।
बुद्ध के शिष्य बुद्ध के चरणों में तीन प्रार्थनाएं करते थे।
बुद्धं शरणं गच्छामि। वह पहली प्रार्थना है कि हम उनकी शरण जाते हैं
जो जाग गए हैं।
फिर दूसरीः संघं शरणं गच्छामि। हम उनकी शरण जाते हैं, जो जागने वाले
के साथ हो लिए हैं। पहली प्रार्थनाः हम दीए की शरण जाते हैं; दूसरी प्रार्थनाः उस दीए से जल गए जो दीए, उन सबकी शरण जाते हैं--संघं शरणं गच्छामि।
और तीसरी प्रार्थनाः धम्मं शरणं गच्छामि। दीए--फिर चाहे बुद्ध हों और चाहे बुद्ध से जले हुए और दीए--आज नहीं कल तिरोहित हो जाएंगे; इनका तो निर्वाण हो जाएगा। निर्वाण शब्द दीए के बुझने से बना है। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीए का बुझ जाना। ये दीए तो आज प्रकट हैं, कल अप्रकट हो जाएंगे। आज अभिव्यक्त हो रहे हैं, कल शून्य में तिरोहित हो जाएंगे। मगर इन दीयों के जलने का जो राज है--धर्म--हम उसकी शरण जाते हैं।
शुरू यात्रा होती है बुद्ध के शरण से, मध्य में आता है संघ और अंत में आता है धर्म।
मेरे संन्यासियों ने पहली प्रार्थना पूरी कर ली है। अब दूसरी प्रार्थना पूरी करने का समय आ रहा है। संघं शरणं गच्छामि। जल्दी ही यह संघ बनेगा, वीणा, तू इसका हिस्सा हो जाने वाली है। दही-शक्कर सब ले आना!
और देखा तूने मजा--इसीलिए तो कहते हैं दुनिया गोल है--लस्सी से शुरू किया और दही-शक्कर। और दही-शक्कर यानी फिर लस्सी बनी! लस्सी के बिना चलेगा नहीं। लाख बचो, बच नहीं सकते। लस्सी का बड़ा तत्वज्ञान है। तन-मन शीतल करे! तुझे जो वायदा किया था, उससे लाखों गुने रूप में पूरा कर दिया है। पहचाने कि न पहचाने! मैंने तो वायदा किया था मैं तेरे घर आऊंगा और किस तरह पूरा कर दिया कि तुझे अपने घर बुला लिया! उतना ही पूरा करता कि तेरे घर आता तो एक दिन चला जाता। तुझे ही बुला लिया तो अब जाने का उपाय भी न रहा! वायदा तो पूरा कर दिया है! और तू भी जानती है कि पूरा कर दिया है!

तीसरा प्रश्नः ओशो, कल आपने आदर्श जोड़ियों की बात की। क्या इसे विस्तार से समझाएंगे?

विमल किशोर! भैया, इसका विस्तार तो बहुत हो सकता है! मगर थोड़ी कही ज्यादा समझना। विस्तार में खतरा है। भारत में हजारों घरों में ठहरा हूं, मगर अंगुलियों पर गिनी जा सकें, बस इतनी ही जोड़ियों को कह सकता हूं कि जोड़ियां हैं। मेरी जोड़ी की परिभाषा उलटी है--उनका कसूर नहीं, तुम्हारा कसूर नहीं! मेरी परिभाषा यह है कि जो लोग विवाह के बाद भी प्रेमी बने रहें। बहुत कठिन मामला है!
विवाह के पहले प्रेम तो बहुत आसान बात है। कोई भी बुद्धू कर ले। बुद्धू ही करते हैं। विवाह के बाद भी प्रेम बना रहे! कहने की बात नहीं, बना ही रहे, सच में बना रहे! कठिन मामला है, दुस्तर मामला है। विवाह सब मटियामेट कर देता है। सभी जोड़ियां आदर्श जोड़ियों की तरह शुरू करती हैं यात्रा, मगर दो-चार कदमों पर ही गिरना शुरू हो जाती हैं आदर्श जोड़ियां। मुश्किल से पांच नाम मैं ले सकता हूं। दो के तो मैंने तुम्हें कल नाम लिए। एक वीणा-चितरंजन की जोड़ी है, जो कि विवाह के बाद भी प्रेमी हैं। वैसे ही प्रेमी जैसे विवाह के पहले रहे होंगे। विवाह कुछ भी नहीं कर पाया! कोई फर्क नहीं कर पाया! एक मैंने तुम्हें माणिक बाबू और सोहन की जोड़ी कही। एक जोड़ी हैः कपिल और कुसुम की। एक जोड़ी हैः प्रेमतीर्थ और नीलम की। एक जोड़ी हैः चैतन्य और चेतना की। बस, यूं थोड़ी-सी जोड़ियां हैं। यूं मैं भारत भर में घूमा हूं। मगर विवाह के बाद प्रेम का बचना बड़ी कठिन बात है।
कॉमेडी फिल्म में भी हम
हंसने के बजाय
किस्मत पर आंसू बहाते रहे,
श्रीमती जी हॉल में

पिक्चर देखती रहीं
हम मुन्ने को
बाहर घुमाते रहे!
कॉमेडी फिल्म में भी हम
हंसने के बजाय
किस्मत पर आंसू बहाते रहे,
श्रीमती जी हॉल में
पिक्चर देखती रहीं
हम मुन्ने को
बाहर घुमाते रहे!
उस दिन जब मैं चंदूलाल से भेंट करने गया तो देखा पति-पत्नी मुंह लटकाए बैठे हुए हैं। मैंने पूछाः "क्या हुआ, चंदूलाल?" चंदूलाल ने उदास स्वर में कहाः "क्या बतलाऊं! भगवान, यह टिल्लू की मां और मैं कल मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठने गए थे, उस मूरख ने अपने बच्चे आगे करके मुझसे कहा, अरे चंदूलाल, आपके ही हैं! बस उसी समय से यह टिल्लू की मां मेरी जान लिए ले रही है! इसका गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ा हुआ है। कहती है कि यह उसने क्यों कहा कि ये बच्चे आपके ही हैं? इसका मतलब क्या?"
चंदूलाल सपने में चिल्लाएः "तू पागल!" चंदूलाल की पत्नी ने कहाः "अरे, कमबख्त, क्या कहा?" चंदूलाल ने पुनः सपने में ही कहाः "तू पागल!"
चंदूलाल की पत्नी ने हिलाया और कहाः "हरामी! क्या कहा, फिर से तो कह!"
तब तक उनकी नींद खुल गई, चंदूलाल बोलेः "अरे आप हैं क्या? मैं पागल! नींद में कुछ भूल-चूक हुई हो तो क्षमा करना, टिल्लू की मां! अरे, नींद का क्या!" मगर नींद में ही सचाइयां प्रकट होती हैं। मनोवैज्ञानिक तुमसे सपनों
के संबंध में पूछता है, क्योंकि जाग्रत में तो ऐसा झूठ छाया हुआ है! अब सपनों का ही भरोसा करना पड़ता है कि शायद सपने में सच निकल आए तो निकल आए। घर लौट कर पति ने देखा कि पत्नी उसके गहरे दोस्त के साथ बिस्तर पर लेटी है। उसने चीख कर कहाः "क्या हो रहा है?" पत्नी ने उसके दोस्त से कहाः "देखा, मैंने कहा न था कि यह निपट अनाड़ी है!"
बीबी से झगड़ने के कारण चंदूलाल का एक हाथ टूट गया और उसे अस्पताल जाना पड़ा। अस्पताल में उसकी नजर एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी जिसके दोनों हाथ पर पट्टियां बंधी थीं। उसने आश्चर्य से पूछा कि महाशय जी, क्या आपकी दो बीबियां हैं?
जोड़े तो यूं बहुत हैं, मगर गजब के जोड़े हैं!
महंगाई का जमाना, आमदनी अठन्नी और खर्च रुपैया, बेचारे ढब्बू जी काफी चिंतित रहने लगे थे। आखिर घर का खर्चा कैसे चलेगा? लेकिन उनकी श्रीमती जी को संदेह होने लगा। एक दिन उन्होंने कहा कि सुनो जी, कई महीनों से देख रही हूं चुपचाप बैठ कर गुमसुम ठंडी सांसें भरते हो। कहीं कोई प्यार-व्यार का चक्कर तो नहीं चला रखा है तुमने?
वे बेचारे पड़े हैं निन्यानबे के चक्कर में, ठंडी सांसें भरते हैं, मगर पत्नी हिसाब लगा रही है कि कोई प्यार-व्यार का चक्कर तो नहीं चल पड़ा है! जैसे ही विवाह हुआ कि यह शक पैदा होना शुरू होता है। पति हंसे तो शक। पत्नी हंसे तो पति को शक। पत्नी प्रसन्न आए नजर तो पति सोचता है कि माजरा क्या है? पति प्रसन्न आए तो पत्नी सोचती है कि मामला क्या है? तुम देखो पति-पत्नियों को चलते साथ-साथ। जब भी कोई जोड़ा तुम्हें उदास चलता हुआ दिखाई पड़े तो समझना कि दंपति हैं! अगर प्रसन्न दिखाई पड़ें तो समझ लेना कि पत्नी और किसी की है, पति किसी और का है। तभी इतने प्रसन्न नजर आ रहे हैं। ढब्बू जी रात देर से घर लौटे। पत्नी बिगड़ी, बोलीः "यह बड़ा अच्छा समय है
घर आने का! जल्दी से मुझे इसकी सफाई दो कि रात को दो बजे तक कहां रहे और सच-सच बोलना!" ढब्बू जी शांति से बोलेः "पहले तुम एक बात तय कर लो कि तुम्हें सफाई चाहिए या सच बात? दोनों एक साथ मैं नहीं सम्हाल सकता।"
दोनों कौन एक साथ सम्हाल सकता है!
पिकासो ने जाकर एक अरबपति से कहाः "मैं आपकी बीबी की ऐसी तस्वीर बनाऊंगा कि मुंह से बोल उठेगी।" उस धनपति ने जवाब दियाः "माफ करो भाई, पहले

से ही यहां नाक में दम कर रखा है। अब अगर तस्वीर भी बोलने लगी तो जीना भी मुश्किल हो जाएगा।"
पति ने काम की अधिकता का बहाना बनाते हुए पत्नी के साथ उसके मायके जाने में असमर्थता जाहिर की। पति के इतना कहते ही पत्नी ने गुस्से में बड़बड़ाना शुरू कर दियाः "आप हमेशा ससुराल जाने का नाम आने पर आनाकानी करते हैं। ससुराल से तो ऐसे दूर भागते हैं मानो सब आपको खा ही जाएंगे। इतना ही चिढ़ते थे तो शादी करा कर विदा कराने कैसे चले आए थे?" "उस समय तो चालीस बाराती साथ थे," पति ने कहा, "कोई अकेला था!"
इस घटना को पढ़ कर ही मैंने जाना कि क्यों आखिर बरातियों को साथ ले जाना पड़ता है। और क्यों दूल्हे को घोड़े पर बिठाते हैं और छुरी भी दे देते हैं। कि घबड़ा मत! अरे, निपट लेंगे! बैंड-बाजा बजाते हुए... !
अब तुम पूछ रहे हो कि आदर्श जोड़ी की आपने बात की; क्या इसे विस्तार से समझाएंगे?
मेरे पड़ोस में
एक आदर्श जोड़ी है,
जिसने मुहब्बत की तमाम
पिछली रिकार्ड तोड़ी है।
एक दिन मैंने
अपने एक दूसरे पड़ोसी से पूछा-- भैया,
किस बलबूते पर इनकी मुहब्बत इतनी गहरी है?
उसने कहा--
आश्चर्य है,
तुम्हें मालूम नहीं!
पति कवि है, पत्नी बहरी है। आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
छठवां प्रवचन

अद्वैत की अनुभूति ही संन्यास है

पहला प्रश्नः ओशो, कर्मत्यागान्न संन्यासौ न प्रैषोच्चारणेन तु। संधौ जीवात्मनौरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः।।
कर्मों को छोड़ देना कुछ संन्यास नहीं है। इसी प्रकार, मैं संन्यासी हूं, ऐसा कह देने से भी कोई संन्यासी नहीं होता है। समाधि में जीव और परमात्मा की एकता का भाव होना ही संन्यास कहलाता है।
ओशो, संन्यास के इस प्रसंग में कहे गए मैत्रेयी उपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए बोधगम्य बनाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय!
कर्मत्यागान्न संन्यासौ... ।
संन्यास सदियों से कर्म का त्याग ही समझा जाता रहा है। और कर्म का त्याग मन का त्याग नहीं है। कर्म के त्याग से एक भ्रांति भर पैदा होती है। भ्रांति गहरी और खतरनाक।
जैसे कोई गाली न दे, अपमान न करे, तो स्वभावतः क्रोध न उठेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे भीतर क्रोध की समाप्ति हो गई। जब भी कोई गाली देगा और अपमान करेगा, सदियों-सदियों भी क्रोध सोया रहा हो, पुनः फन उठा कर खड़ा हो जाएगा। सिर्फ अनुकूल परिस्थिति नहीं मिल रही थी। यूं जैसे बीज तो हों, वर्षा न हो, तो खेत में पड़े रह जाएं। लेकिन जब वर्षा होगी तब बीज अंकुरित हो जाएंगे।
बीज तो मन में हैं संसार के। संसार तो केवल उन मन के बीजों को अंकुरित होने का अवसर है, परिस्थिति है। लेकिन मनुष्य बहिर्मुखी है। वह हमेशा बाहर देखता है। वह सोचता है यह संसार है जो मुझे उलझाए है। संसार किसी को नहीं उलझाए है। उलझाए है तुम्हारा मन। लेकिन मन को तो तुम तब देखो जब भीतर मुड़ो। बाहर ही देखते हो।
तो लोभी सोचता है धन के कारण लोभ है। असलियत उलटी है। लोभ के कारण धन है, धन की दौड़ है, धन की अभीप्सा है, धन की वासना है। लोभ जड़ है। कामी सोचता है कि स्त्री के कारण कामवासना है। यह गणित को शीर्षासन करवाना है। कामवासना के कारण स्त्री में रस है। और वासना तुम्हारे भीतर है, स्त्री बाहर है। लोभ तुम्हारे भीतर है, धन बाहर है। क्रोध तुम्हारे भीतर है, अपमान, गाली-गलौज बाहर है। लेकिन हम तो बाहर ही देखते हैं, भीतर तो देखते नहीं।
इससे स्वभावतः, जिन्होंने उथला-उथला जीवन को समझना चाहा, वे संसार से भागने लगे। उन्होंने देखा कि संसार में उपद्रव है। लेकिन तुम जहां भी जाओगे भाग कर सिर्फ परिस्थिति से बचोगे, बीज कहां जाएंगे? बीज तो जन्मों- जन्मों तक पीछा करेंगे। इस जन्म में छिप रहोगे गुफा में हिमालय की, फिर अगले जन्म में फिर परिस्थिति उपलब्ध होगी, फिर मौसम आएगा, फिर वसंत आएगा, फिर बीज फूटेंगे, फिर फूल लगेंगे।
ऐसे भगोड़ेपन से कोई संन्यास नहीं हो सकता है। संन्यास हो ही सकता है केवल संसार में, क्योंकि संसार परीक्षा है। धन हो और लोभ न हो, तब संन्यास। सुंदर से सुंदर स्त्रियां हों, पुरुष हों और वासना न जगे, तब संन्यास। पद पर बैठने की सुविधा हो, संभावना हो, लेकिन भीतर पद पर बैठने की कोई आकांक्षा न हो, तब संन्यास।
संन्यास तो बाजार में ही परीक्षित होगा, वहीं कसौटी है। यह जो भगोड़ा संन्यासी है, यह तो ऐसा सोना है जो कसौटियों से भाग गया। कसौटियों से भाग गए तो असली हो कि नकली, क्या पता चलेगा? सच्चे हो कि खोटे, कैसे जानोगे? संसार में सारा उपाय है। प्रतिपल मौके हैं। अगर तुम्हारी आग बुझ ही
गई हो भीतर से, तो ही शांति रहेगी, सन्नाटा रहेगा। अगर जरा-सी भी चिनगारी भीतर मौजूद है तो फिर सारे जंगल में आग लग जाएगी। फिर-फिर। क्योंकि एक चिनगारी काफी है। संसार में तो ईंधन उपलब्ध होता है। मगर ईंधन भी उसको

जलाएगा जिसके भीतर चिनगारी हो। नहीं तो ईंधन पड़ा रहेगा। किसी ने तुम्हें गाली दी, तुमने सुन ली, पड़ी रही। तुम्हारे भीतर कुछ भी न होगा। हां, अगर तुम्हारे भीतर अहंकार है तो कुछ होगा। अहंकार चिनगारी है। अहंकार का अर्थ हैः तुम्हारे भीतर कोई घाव है जिस पर गाली चोट कर देती है।
और तुमने ख्याल किया? अगर घाव हो तो उसी-उसी पर चोट लगती है। अगर पैर में घाव हो, तो कुर्सी लग जाएगी, बिस्तर से उतरोगे तो चोट खा जाओगे, जूते में पैर डालोगे और चोट खा जाओगे, देहरी पार करोगे और चोट लग जाएगी, और बच्चा आएगा और उसी पैर पर चढ़ कर खड़ा हो जाएगा। और तब कोई सोचने लगता है कि माजरा क्या है! इसी-इसी पैर को क्यों चोट लग रही है, जब कि इस पर घाव है? चोट रोज लगती थी, पता नहीं चलता था, क्योंकि घाव नहीं था। आज घाव है, इसलिए पता चलता है। घाव सिर्फ पता चलवाता है। घाव कोई चोटों को आमंत्रित नहीं करता। लेकिन घाव संवेदनशील होता है।
अहंकार के कारण कोई तुम्हें गाली नहीं देता; लेकिन अहंकार संवेदनशील है, बहुत संवेदनशील है। गाली तो दूर, जो आदमी तुमसे रोज नमस्कार करके गुजरता था, अगर आज बिना नमस्कार किए गुजर गया, तो भी चोट लग जाएगी। तो भी भीतर दर्प खड़ा हो जाएगा कि अच्छा! तो इस आदमी की यह हैसियत कि आज बिना जयराम जी किए चला गया! इसको मजा चखा कर रहूंगा! कोई कसूर नहीं किया, कोई गाली नहीं दी, कोई अपमान नहीं किया, मगर यह भी अपमान हो गया।
अगर अहंकार है तो खोज ही लेगा कुछ न कुछ पीड़ित होने को, परेशान होने को। हां, यह हो सकता है कि तुम दूर छिप कर बैठ जाओ, जहां कोई परिस्थिति न आए--न सूरज, न हवा, न वर्षा। तो स्वभावतः बीज पड़े रह जाएंगे। मगर बीजों में ही बंधन है।
इसलिए पतंजलि ने दो तरह की समाधियां कहीं--सबीज समाधि और निर्बीज समाधि। वह भेद बहुत गहरा है। वह भेद बहुत विचारणीय है। असल में सबीज समाधि को समाधि कहना नहीं चाहिए। बस समाधि जैसी मालूम होती है। समाधि का धोखा है। सबीज समाधि का अर्थ है, अहंकार तो भीतर है लेकिन बीज की तरह है। और बीज की तरह है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। अंकुरण हो, पत्ते निकलें, शाखाएं ऊगें, फल लगें, फूल लगें, तो दिखाई पड़ेगा। अभी अदृश्य है। अगर तुम बीज को काटोगे भी तो भी बीज के भीतर न तो फूल मिलेंगे, न रंग मिलेंगे, न पत्ते मिलेंगे-- कुछ भी न मिलेगा। बीज को तो अवसर चाहिए।
संसार में अवसर है। हिमालय की गुफा में अवसर नहीं है, बस इतना ही फर्क है। और अगर तुम मुझसे पूछो, तो जहां अवसर है वहीं रहना उचित है, क्योंकि वहीं निर्बीज समाधि फलित हो सकती है। हिमालय की गुफा में जो समाधि फलित होगी, वह सबीज समाधि होगी। ऊपर से सब शांत हो जाएगा, मगर भीतर तो सारी संभावना मौजूद है अशांत होने की। भीतर तो मवाद भरी है, फोड़ा पक रहा है। हां, कोई चोट नहीं पड़ रही, इसलिए पीड़ा नहीं हो रही है। लेकिन जब भी चोट पड़ेगी--और चोट कभी न कभी पड़ेगी, और किस बात से चोट पड़ जाए, बड़ा मुश्किल है कहना।
एक आदमी अपनी कर्कशा पत्नी से परेशान था। बहुत परेशान था। भाग गया। लोग भागते ही ऐसे हैं, सौ में से निन्यानबे तुम्हारे संन्यासी ऐसे ही भागते हैं। किसी की पत्नी उसे परेशान कर रही है, किसी की नौकरी खो गई है, किसी का दिवाला निकल गया है, कोई जुए में हार गया है; कोई पद और प्रतिष्ठा की दौड़ में जीत नहीं पाया, निराश हो गया है, उदास हो गया है; जीवन की चिंताओं ने, जीवन के संतापों ने छाती पर पहाड़ रख दिए हैं; इस सबसे घबड़ा कर आदमी भागता है।
भागने वाले सौ लोगों में निन्यानबे सिर्फ कायर होते हैं। और वह जो एक प्रतिशत मैं छोड़ रहा हूं, वे बिल्कुल और तरह के लोग हैं। वे संसार से भागते नहीं, संसार ही उनसे छूट जाता है। उन्हें संसार में भी रहना पड़े तो कोई अड़चन नहीं है। मगर उन्होंने संसार में रह कर देख लिया, अब कोई ईंधन आग को जलाता नहीं। अब कोई गाली अपमान पैदा नहीं करती। कोई सत्कार छाती नहीं फुला देता। अब धन हो तो ठीक, न हो तो ठीक। पद हो तो ठीक, न हो तो ठीक। उन्होंने संसार की सारी कसौटियां पूरी कर लीं।

ऐसे एक प्रतिशत लोग भी जंगल गए हैं--मगर संसार से भाग कर नहीं, संसार उनसे गिर चुका था। जैसे पके पत्ते गिर जाते हैं। संसार खुद ही छूट गया था। रहते तो भी कोई बात न थी। न रहे तो भी कोई बात नहीं। कुछ भेद ही नहीं जैसे। यह आदमी भागा। पत्नी के कर्कशा होने से भागा था। जंगल में जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठा, बड़ी शांति मालूम हो रही थी। जंगल की शांति, पहाड़ों का सन्नाटा, हिमाच्छादित शिखरों का मौन, बड़ा आनंदित था। और तभी एक कौवे ने आकर उस पर बीट कर दी। भनभना गया! कि हद हो गई, घर छोड़ कर आ गया, यहां भी शांति नहीं! एक कौवे ने दुष्ट ने बीट कर दी! यह कभी सोचा भी न था कि कौवा भी अपने से दुश्मनी करेगा! अरे, पत्नी तो दुश्मन थी, ठीक था, उसको छोड़ कर आ गए तो यह कौवा परेशान कर रहा है!
अब कौवे को क्या लेना-देना तुमसे, कौवा तो बेचारा बीट करता ही। तुम न होते तो भी करता। तुम थे तो भी की। कौवे को तो कुछ प्रयोजन नहीं है। लेकिन इस आदमी को तो चोट लग गई। भागा ही इसलिए था। और वही मौजूद हो गई बात। इतना दुखी हो गया कि सोचा संसार भी व्यर्थ है, संन्यास भी व्यर्थ है। कहीं शांति नहीं है, अशांति ही अशांति है।
तो जाकर पास ही एक नदी थी, उसके किनारे रेत में उसने सूखी लकड़ियां इकट्ठी कीं, आग लगा कर चिता पर चढ़ने को ही था कि दो-चार लोग आस-पास में रहते थे झोपड़ों में, खेतों में, वे आ गए। और उन्होंने कहा, भाई, रुक! तुझे मरना हो, कहीं और जाकर मर! यह कोई जगह है! यहां हम रहते हैं। तू जलेगा, तेरी बदबू फैलेगी। तू तो मर जाएगा, अभी हमें जीना है! और फिर पुलिस आएगी। तू तो मर जाएगा, पकड़े हम जाएंगे, कि यह आदमी कैसे मरा, क्यों मरा? हम क्या बताएंगे? तू भैया, कहीं और जाकर मर! इतना बड़ा संसार पड़ा है, तुझे यह घाट ही मिला मरने को!
वह आदमी बोला, हद हो गई! न जीने की सुविधा, न मरने की सुविधा! आदमी मर
भी नहीं सकता! इसकी भी स्वतंत्रता नहीं है।
जो आदमी भागेगा, उसको तो कहीं भी कारण परेशान होने के मिलते रहेंगे। उसे तुम स्वर्ग में भी बिठा दो तो भी वह कुछ भूल-चूकें निकाल लेगा। निकाल ही लेगा! अभी भीतर के बीज मौजूद हैं।
तो जरूर पहाड़ पर, जंगल में एक तरह की शांति होगी--वह पहाड़ की शांति है। उसे तुम अपनी न समझ लेना। तुम्हारा उससे क्या लेना-देना! तुम नहीं थे तब भी थी--थोड़ी ज्यादा थी, तुम्हारे आने से थोड़ी कम हो गई। तुम चले जाओ तो फिर ज्यादा हो जाएगी। वह जो पहाड़ का हिमाच्छादित मौन है, वह जो शीतलता है, वह पहाड़ की है। मगर भ्रांति वहां पैदा हो सकती है कि देखो, मैं कैसा शांत हो गया! न अब कोई अहंकार है... । अब अहंकार हो तो कैसे हो! कोई गाली नहीं देता, कोई अपमान नहीं करता, कोई धक्के नहीं मारता, क्यू में खड़े हो, कोई आकर आगे खड़ा नहीं हो जाता--वहां कोई क्यू ही नहीं है।
जिंदगी, जहां तुम अकेले हो, वहां स्वभावतः अवसरों से शून्य है। इसका अर्थ यह होगा कि एक शांति जो बाहर है, उसे तुम अपनी समझ लोगे। वह तुम्हारी भ्रांति है। बीज भीतर रह जाएंगे। और जब भी कभी, जन्मों-जन्मों में--कब तक बचोगे, कब तक भागोगे--जहां भी अवसर आया, बीज फिर पल्लवित हो जाएंगे।
सबीज समाधि का कोई मूल्य नहीं है। समाधि तो निर्बीज हो तो ही समाधि है। सबीज समाधि तो धोखा है! और निर्बीज समाधि संसार में ही घटित हो सकती है। इसलिए मैं अतीत में जो संन्यास प्रचलित रहा उसका पक्षपाती नहीं हूं। और मैत्रेयी उपनिषद मुझसे राजी है। मगर आश्चर्य तो यह है कि ये उपनिषद लोग पढ़ते रहे मगर समझे कि नहीं समझे! संन्यासी पढ़ते रहे!
अब इतना स्पष्ट है कि कर्मों को छोड़ देना कुछ संन्यास नहीं है। मगर सदियों से यह जाल चलता रहा, कर्मों को छोड़ना ही संन्यास रहा। कर्म-त्याग संन्यास है। छोड़ दो दुकान, छोड़ दो मकान, छोड़ दो पत्नी, छोड़ दो बच्चे-- संन्यासी हो गए।
कर्मत्यागान्न संन्यासौ न प्रैषोच्चारणेन तु।
और इस बात की घोषणा करना भी संन्यास नहीं है कि मैं संन्यासी हूं। घोषणा से क्या होगा? घोषणा भी तो अहंकार की ही है। मैं संन्यासी हूं, यह घोषणा करने मात्र से कुछ भी नहीं होने वाला है। यह घोषणा अहंकार को और परिपुष्ट करेगी, और मजबूत करेगी, और जीवन देगी। और अहंकार संसार का बीज

है। इसलिए संन्यासी को तो घोषणा का सवाल नहीं है, प्रतीति का सवाल है। मैं की बात नहीं है, विनम्रता की बात है।
मगर विनम्र संन्यासी, तुम मुश्किल से ही पाओगे! संन्यासी अहंकारी होंगे। उनका अहंकार उनकी नाक पर चढ़ा बैठा होता है। उनकी अकड़ साधारण आदमी से बहुत ज्यादा है। क्यों? क्योंकि उनके पास तर्क है। तर्क यह है कि तुम तो अभी भोगी हो, हम योगी हैं। तुम तो संसार में सड़ रहे हो, हमने संसार छोड़ दिया। तुम तो अभी धन के पीछे दौड़ रहे हो, हमने धन छोड़ दिया। उनका तर्क उनके अहंकार को और भी मजबूत करता है। और तुम्हारा सम्मान उनके अहंकार को और मजबूत करता है। तुम जाकर उनके चरण छूते हो, पांव पखारते हो, पैर धोकर पानी पीते हो; तुम पूजा की आरती उतारते हो; तुम उन्हें महात्मा कहते हो। स्वभावतः, जब लोग महात्मा कहें, आदर दें, सम्मान दें, तो अहंकार और भी धार पा जाता है। जैसे जंग लगी तलवार पर किसी ने धार रख दी हो, जंग झाड़ दी हो। इसीलिए तो दुनिया में यह तथाकथित धार्मिक लोगों ने, महात्माओं ने जितने उपद्रव करवाए, जितनी हिंसा इनके कारण हुई, किसी के कारण नहीं हुई। फिर वे हिंदू हों कि मुसलमान हों कि ईसाई हों, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। इस पृथ्वी पर जितने लोग मारे गए हैं धर्म के नाम पर, धर्म की मूर्खता के नाम पर, उतने और किसी चीज के कारण नहीं मारे गए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि भगवान, मुनि सन्मति जी सागर ने दुर्ग में चौमासा किया। उनके आगमन से जैन समाज के दिगंबर संप्रदाय में व्रत-उपवास की प्रतिस्पर्धा शुरू हुई। इसके अंतर्गत श्री बसंतीलाल जी बाकलीवाल, जो शक्कर की बीमारी से ग्रस्त थे, उन्होंने भी उपवास किया। छठवें व सातवें दिन उनकी हालत इतनी खराब हुई कि उन्हें अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। दसवें दिन उनकी मृत्यु हो गई। वे अंतिम समय में पानी पीने के लिए मांगते रहे, पर उपवास भंग न हो, इसलिए उनके समाज और प्रियजन तथा पारिवारिक लोगों ने उन्हें पानी भी पीने को नहीं दिया। इसके बाद उनकी मृत्यु को शहीदी रंग देने की कोशिश की गई। मुनि श्री सन्मति जी महाराज को जब यह घटना बताई गई तो उन्होंने कहा कि अगर थोड़ी देर पहले मुझे बताया होता तो मैं उन्हें उसी अवस्था में दिगंबरत्व की दीक्षा दे देता और उनकी गति सुधर जाती। भगवान, यह सब क्या है, कृपया कहें!
पद्म भारती! यह सब सदियों-सदियों पुरानी विक्षिप्तता है, जो संन्यास
के आवरण में छिपी है, संन्यास के ढोंग में दबी है। संन्यास की राख के भीतर अहंकार की आग है। व्रत- उपवास की भी प्रतिस्पर्धा शुरू होती है। वह भी कबड्डी का खेल है। आदमी समझ ही नहीं पाता!
अभी कल खबर थी कि नागपुर की कुछ कालेज की लड़कियां वर्धा कबड्डी का खेल खेलने गईं। तो वे विनोबा के आश्रम पवनार भी गईं और विनोबा ने उनके साथ चालीस मिनट कबड्डी खेली।
कैसी प्यारी बात! मगर यही कबड्डी का खेल चल रहा है, अलग-अलग नामों से। पर्युषण के दिन आते हैं तो जैनों में स्पर्धा शुरू हो जाती है। कौन किसको मात करे? कौन कितना उपवास करे?
तो यह पद्म भारती ने लिखा है, ठीक लिखा है कि "वहां व्रत और उपवास की प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई।"
और इसमें कई दफा झंझटें होने ही वाली हैं। क्योंकि जैनों का जो व्रत
और उपवास है, वह कोई वैज्ञानिक तो है नहीं। न इसकी कोई चिंता की जाती है कि शरीर की अवस्था भी उपवास करने की है या नहीं, जरूरत भी है या नहीं! न इस बात की फिकर की जाती है कि इसके परिणाम क्या होंगे! अगर आदमी डायबिटीज से बीमार था तो उपवास के परिणाम घातक हो सकते हैं, भयंकर हो सकते हैं। अगर शक्कर कम होने की बीमारी हो, तो तीन दिन के भीतर वह आदमी बेहोश हो जाएगा, कोमा में चला जाएगा। मृत्यु हो सकती है।
"दसवें दिन उनकी मृत्यु हो गई। वे अंतिम समय बस पानी ही पानी की पुकार करते रहे।"
मगर कौन सुने? स्पर्धा की दुनिया है। इतनी जल्दी, दो-चार घंटे की और बात है, दस दिन पूरे हो जाएं। दिगंबर होंगे। तो उनका दस दिन का पर्युषण होता है। श्वेतांबर होते तो शायद बच जाते; उनका आठ ही दिन का होता है। यह दिगंबर होने में खतरा हुआ! दस दिन का पर्युषण, दो-चार घंटे ही बचे होंगे और

अब वे पानी पीने के लिए मांग रहे हैं। प्रियजन, घर के लोग, पत्नी, बच्चे, मां-बाप भी विरोध में रहे होंगे, क्योंकि अब दो-चार घंटे ही की बात है। अरे, और खींच लो इतना खींचा है। अब क्या चार घंटे के लिए योग-भ्रष्ट होते हो! क्या कहेंगे लोग! पीछे तुम ही हमको परेशान करोगे कि रोका क्यों नहीं? अरे, मैं तो परेशानी में था, लेकिन तुम तो नहीं थे परेशानी में, तुम तो रोक सकते थे। और जहां स्पर्धा का सवाल हो, वहां जिंदगी भी आदमी दांव पर लगाने को तैयार हो जाता है। और फिर धार्मिक स्पर्धा! आध्यात्मिक स्पर्धा! जैसे कि आध्यात्मिक भी स्पर्धा हो सकती है!
स्पर्धा ही संसार है। यह प्रतियोगिता ही तो संसार है। यही तो राजनीति है। दूसरे से आगे निकल जाऊं इसके अलावा और राजनीति का अर्थ क्या है! फिर किस तरह निकलूं आगे--धन से निकलूं, पद से निकलूं, व्रत से निकलूं, उपवास से निकलूं--इससे क्या फर्क पड़ता है? ये तो बहाने हैं आगे निकलने के। ये तो खूंटियां हैं अपने अहंकार को टांगने की। कोई भी खूंटी काम दे देगी।
अब चार ही घंटे की बात रह गई!
यह पद्म भारती का प्रश्न पढ़ रहा था तो मुझे टाल्सटाय की प्रसिद्ध कहानी याद आई कि एक आदमी के घर एक फकीर मेहमान हुआ। वह आदमी गरीब किसान था, छोटी-सी जमीन थी, किसी तरह गुजारा हो जाता था। उस फकीर ने कहा कि तू भी पागल है, इस छोटी-सी जमीन में कैसे गुजारा! किसी तरह जी रहा है--अधखाया, अधपीया-- न ठीक वस्त्र हैं, न ठीक मकान है। मैं घूमता रहता हूं--परिव्राजक हूं-- साइबेरिया में मैं ऐसे स्थान जानता हूं जहां मीलों जमीन पड़ी है। और बड़ी उपजाऊ जमीन। तू इस जमीन को बेच दे, इस मकान को बेच दे, इतने से पैसे को लेकर तू चला जा। मैं एक जगह तो ऐसी भी जानता हूं जहां लोग इतने पैसे में तुझे इतनी जमीन दे देंगे कि तू कल्पना भी नहीं कर सकता।
मोह जगा, लोभ जगा कि क्यों यहां पड़ा रहूं! सुबह फकीर तो चला गया, लेकिन उसने अपनी जमीन बेच दी, मकान बेच दिया। पत्नी-बच्चों को कहा कि तुम थोड़े समय यहां रुको, मैं जाकर वहां जमीन खरीद लूं, मकान का इंतजाम कर लूं, फिर तुम्हें ले चलूंगा।
वह आदमी गया। जब पहुंचा तो सच में चकित हुआ। फकीर ने जो कहा था, ठीक था। मीलों उपजाऊ जमीन पड़ी थी। दूर-दूर तक कोई आदमी का पता न था। बामुश्किल तो आदमियों को खोज पाया कि किनसे खरीदनी है! किसकी है? गांव के लोगों ने कहा, भई, किसी की नहीं है। मगर हमारा यह नियम है कि अगर इतना पैसा--अगर एक हजार रुपया तुम देते हो--तो तुम दिन भर में जितनी जमीन घेर सकते हो घेर लो, वह तुम्हारी। और हमारे पास कोई मापदंड नहीं है। तुम चलना शुरू करो और खूंटियां गड़ाते जाओ; दिन भर में तुम जितनी जमीन घेर सकते हो, घेर लो; बस यही हमारा हिसाब है, इसी तरह हम जमीन बेचते हैं।
उसकी तो आंखें फटी की फटी रह गईं। भरोसा ही नहीं आया। जरा-सा जमीन का टुकड़ा था उसके पास जिसको वह बेच कर आया था--और दिन भर में तो वह न मालूम कितनी घेर लेगा! मजबूत काठी का आदमी था, किसान था। उसने कहा, अरे, दिन भर में तो मैं मीलों का चक्कर मार लूंगा! गजब हो गया! फकीर ने ठीक कहा था। दूसरे दिन सुबह ही उसने जितना पैसा लाया था दे दिया और उसने कहा कि मैं अब जमीन घेरने निकलता हूं। उन्होंने कहा कि निकलो! सुबह सूरज उदय होते हुए निकला। कहा कि सूरज डूबने के पहले लौट आना। अगर सूरज डूब गया तो पैसे डूब गए। सूरज डूबने के पहले लौट आना, तो जितनी जमीन तुमने घेर ली, वह तुम्हारी, यह शर्त है। उसने कहा कि बिल्कुल लौट आऊंगा।
वह भागा! चलना क्या, ऐसा कोई मौका चलने का होता है! भागा, दौड़ा! अपने जीवन में ऐसा कभी नहीं दौड़ा था। जितनी जमीन घेर ले, उसकी होने वाली थी। दिन में कई दफा--साथ ले गया था रोटी भी, पानी भी--भूख भी लगी, दौड़ भी रहा था, ऐसा कभी दौड़ा भी नहीं था, मगर उसने कहा एक दिन अगर भोजन न किया तो कोई हर्ज है! कोई मर थोड़े ही जाऊंगा! मगर भोजन करने बैठूं, आधा घंटा खराब हो जाए, इतनी देर में तो और आधा मील जमीन घेर लूंगा। पानी भी न पीया। उसने कहा, एक दिन में कोई मर थोड़े ही जाता है! और प्यास बहुत लग रही थी, क्योंकि धूप तेज होने लगी थी। पसीना-पसीना हो रहा था, ऐसा कभी दौड़ा भी न था, मगर--पानी पास में था, थर्मस साथ ले गया था--लेकिन यह कोई समय है, पानी पीने में गंवाने का! और पानी पी लो, पेट भारी हो जाए, दौड़ न सको! बेहतर यही है कि आज तो दौड़ ही लो।

अभी थोड़े ही तो घंटों की बात है, सूरज डूबते-डूबते पहुंच जाना है, फिर जी भर कर भोजन करूंगा, विश्राम करूंगा! अरे, दो दिन सोया ही रहूंगा! फिर तो जिंदगी में चैन ही चैन है। आज एक दिन की मेहनत और फिर जिंदगी भर मजा ही मजा।
तुम भी यही सोचते। कोई भी गणित को समझने वाला आदमी यही सोचता, जो उसने सोचा। उस पर हंसना मत, वह तुम्हारे ही भीतर छिपा हुआ मन है। वह आदमी कहीं बाहर नहीं है, वह तुम ही हो।
वह आदमी दौड़ता ही रहा, दौड़ता ही रहा। उसने सोचा था कि जब सूरज ठीक मध्य में आ जाएगा, आधा दिन हो जाएगा, तब लौट पडूंगा। क्योंकि फिर लौटती यात्रा भी पूरी करनी है। सूरज मध्य में आ गया, लेकिन मन न माने, क्योंकि आगे की जमीन और उपजाऊ, आगे की जमीन और उपजाऊ! जैसे-जैसे आगे बढ़े, और उपजाऊ जमीन। सुबह जो घेरी थी, उससे बेहतर जमीन। और उससे बेहतर जमीन आगे पड़ी है। सोचने लगा कि थोड़ा तेजी से दौडूं तो जल्दी नहीं है लौटने की, थोड़ी देर में भी लौटा तो चलेगा, मगर यह जमीन छोड़ने जैसी नहीं है। और सामने विस्तार ही था, जिसका कोई अंत ही न होता था।
अब तो करीब-करीब एक चौथाई दिन ही बचा था। तब उसने कहा, अब खतरा है, अब लौटना चाहिए। अब सारी ताकत लगा दी। उसने रोटी फेंक दी, थर्मस फेंक दी, वस्त्र-कोट निकाल कर फेंक दिया। क्योंकि अब वजन रखना ठीक नहीं, अब तो ऐसे भागना है कि जैसे मौत पीछे लगी हो--क्योंकि सूरज डूबा जा रहा है। भागा! भागा! सूरज के डूबते-डूबते करीब-करीब पहुंच गया।
गांव भर इकट्ठा था, लोग जोर से हाथ हिला रहे थे, इशारा कर रहे थे कि तेजी से, तेजी से, और तेजी से, क्योंकि सूरज डूब रहा है। उसे लोग दिखाई पड़ रहे थे, उनकी आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। वे उसे बढ़ावा दे रहे थे कि भागो, भागो, चूको मत, इशारा कर रहे थे सूरज की तरफ--उसे सब दिखाई पड़ रहा था, पहाड़ी पर खड़े हुए लोग, मगर उसके पैर जवाब दे रहे थे। कंठ सूख गया था, आवाज भी नहीं निकल सकती थी। गिरा, अब गिरा तब गिरा, ऐसी हालत हो रही थी। और यह कोई समय है गिरने का! और आखिर-आखिर-आखिर पहुंचते-पहुंचते गिर ही पड़ा। वह जो खूंटी सुबह गाड़ गया था, उससे केवल छह फीट दूर। सरकने की कोशिश की, लेकिन उतनी भी ताकत बची न थी।
गांव की भीड़ इकट्ठी हो गई थी और लोग खिलखिला कर हंस रहे थे। मरते वक्त उसने इतना ही पूछा कि तुम खिलखिला क्यों रहे हो? हंस क्यों रहे हो? उन लोगों ने कहा, हम इसलिए हंस रहे हैं कि तुम पहले आदमी नहीं हो, इसी तरह यहां बहुत लोग आकर मर चुके हैं। आज तक कोई भी खूंटी तक नहीं पहुंच पाया। यह हम जो धंधा कर रहे हैं, सस्ता नहीं है। अब तुम मर ही रहे हो, तुम्हें बता देते हैं। हम सुबह से ही जानते हैं कि तुम्हारे हजार रुपए गए। तुम सोचते हो कि तुम न मालूम कितनी जमीन पा लोगे, लेकिन आज तक कोई पा नहीं सका। इसी खूंटी के पास कितने लोगों को हमने मरते देखा है! हमारे बुजुर्गों ने मरते देखा है! उनके बुजुर्गों ने मरते देखा है! सदियों से यह धंधा चलता रहा है। हम यह धंधा ही करते हैं। तुम कोई नए आदमी नहीं हो। एक आदमी और आ गया है आज, कल सुबह वह दौड़ेगा। मगर फिर भी तुम काफी करीब आ गए, केवल छह फीट दूर, शांति से मरो!
मगर क्या वह आदमी खाक शांति से मरे! जीवन भर की मेहनत का पैसा गया और दिन भर उसने जो मेहनत की थी जीवन भर में न की थी, वह भी व्यर्थ गई और यह खूंटी छह फीट दूर! आंखों के सामने दिखाई पड़ रही है, हाथ फैलाता है, लेकिन छू नहीं पाता। हाथ टटोलता है, आंखें धुंधली हुई जा रही हैं, सूरज डूबता जा रहा है और वह आदमी भी मर रहा है। सूरज के डूबते-डूबते वह आदमी मर गया। टाल्सटाय की यह प्रसिद्ध कहानी है, बहुत प्रसिद्ध कहानियों में एक हैः "हाउ मच लैंड डज ए मैन रिक्वायर?" आदमी को कितनी जमीन की जरूरत है? केवल छह फीट! क्योंकि वे जो छह फीट बच रहे थे, उसी में उन्होंने उसकी कब्र खोद दी और उसी में गड़ा कर उसको दफना दिया। आदमी को कितनी जमीन की जरूरत है? केवल छह फीट। वह सब दौड़-धाप व्यर्थ गई।
वही हालत बेचारे बसंतीलाल जी बाकलीवाल की हो गई। क्या बसंत आया! बस, खूंटी छह फीट ही दूर रह गई थी। तो घर के लोगों ने सोचाः अब कोई पानी पिलाने का वक्त है! अरे, दस दिन गुजार लिए, सागर पार कर गए, अब किनारे पर आकर और

भ्रष्ट हो रहे हो! नमोकार मंत्र पढ़ा होगा, देवी-देवताओं को स्मरण किया होगा, कहा होगा कि भैया, मंत्र का स्मरण करो, नमोकार पढ़ो। नहीं तुम पढ़ सकते हो तो हम पढ़ रहे हैं।
वे नमोकार पढ़ रहे होंगे और बसंतीलाल कह रहे थे, पानी! पानी! ... कोई नमोकार अब सुनाई पड़ता है ऐसी हालत में! ... मुझे पानी दे दो! शायद पानी दे दिया होता तो वह आदमी बच भी जाता। उसको मार डाला इन लोगों ने। ये हत्यारे हैं।
यह तो न मालूम कैसा देश है और न मालूम कैसा कानून है इस देश का कि यहां हत्यारे भी बच जाते हैं। इन सारे लोगों की साजिश है। इस साजिश में ये तुम्हारे मुनि सन्मति सागर भी सम्मिलित हैं। शायद वही इसमें सबसे बड़े अपराधी हैं। उन्होंने उन्हें यह प्रेरणा दी होगी कि करो उपवास, इससे मोक्ष सुनिश्चित है। मौत मिली! मोक्ष वगैरह का तो कोई पता नहीं।
और सुनते हो, आखिरी मजा यह कि "जब वे मर गए तो फिर उसको शहीदी रंग देने
की कोशिश की गई।"
अहंकार हमारा पीछा ही नहीं छोड़ता। उन्हीं घर के लोगों ने जिन्होंने मारा, प्रियजनों ने, समाज के नेताओं ने, पंचायत के लोगों ने जिन्होंने मारा, उन्हीं मुनि ने जिनके आदेश से यह आदमी मरा--यह हिंसा हो गई; यह मुनि पानी तो छान कर पीते होंगे और यह आदमी को मार दिया, जिंदा मार दिया। मगर इस तरकीब से मारा, ऐसे धार्मिक ढंग से मारा कि इसको कोई जुर्म भी नहीं कहेगा-- हालांकि है यह जुर्म। यह हत्या का जुर्म है।
और यह किसी एक मुनि के ऊपर नहीं है, यह हिंदुस्तान के तुम्हारे तथाकथित सारे साधु-महात्माओं के ऊपर इस तरह की बहुत-सी हत्या है। मगर वह हत्या सब छिपी रह जाती है। सुंदर वस्त्रों में छिपी रह जाती है। उसका पता ही नहीं चलता। कानून उसको पकड़ नहीं पाता।
कानून पकड़े भी कैसे, क्योंकि यही मुनि-महात्मा वहां भी छाती पर बैठे हुए हैं। यही नीति के निर्धारक हैं। यही समाज के मूल्यों के निर्माण करने वाले हैं। यही मार्ग-द्रष्टा हैं। इन्हीं उपदेष्टाओं ने तो इस देश को पाखंड से भर दिया है। यहां हत्या भी हो जाती है और कानों-कान खबर भी पता नहीं चलती। अब उसको शहीदी रंग देने की कोशिश की गई कि ये धार्मिक शहीद हो गए। इन्होंने अपना जीवन कुर्बान कर दिया। वह आदमी कुर्बान करना ही नहीं चाहता था, वह मांग रहा था पानी; उसको पानी न दिया, जबरदस्ती शहीद करवा दिया।
और आखिरी बात उन्होंने कही कि "अगर थोड़ी देर पहले मुझे बताया होता तो मैं उसी अवस्था में दिगंबरत्व की दीक्षा दे देता और उनकी गति सुधर जाती।" तुम्हें शायद पता न हो कि दिगंबर की दीक्षा से उनका क्या प्रयोजन। मैं जानता हूं एक जैन साधु को--गणेशवर्णी को--उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी दिगंबर जैनों में। प्रतिष्ठा का कारण कुछ और न था, छोटा-सा था, मगर उसी कारण प्रतिष्ठा होती। प्रतिष्ठा का कारण यह था कि वे थे तो पैदाइशी हिंदू और फिर उन्होंने हिंदू धर्म का त्याग कर दिया और जैन धर्म की दिगंबर शाखा में वे साधु हो गए।
जब कोई हिंदू जैन हो जाए तो जैनों की छाती फूल जाती है। जब कोई जैन हिंदू हो जाए तो हिंदुओं की छाती फूल जाती है। स्वभावतः, क्योंकि इससे सिद्ध हो गया कि जैन धर्म श्रेष्ठ है, नहीं तो क्यों गणेशवर्णी जैसा बुद्धिमान आदमी--बुद्धिमानी का केवल इतना ही सबूत दिया था उन्होंने जिंदगी में कि वे जैन हो गए थे और तो कोई सबूत दिया नहीं। मगर अब उनकी बुद्धिमानी की खूब चर्चा करनी पड़ेगी।
कोई हिंदू ईसाई हो जाए, उसको खूब सम्मान मिलता है। वह दो कौड़ी का हिंदू था, ईसाई होते ही से एकदम उसका मूल्य बढ़ जाता है--ईसाइयों में बढ़ जाता है। हिंदुओं में गिर जाता है। हिंदुओं में तो दुश्मन हो गया वह, पथ-भ्रष्ट हो गया, द्रोही सिद्ध हुआ, धर्मद्रोही।
एक ईसाई साधु हो गए--सरदार सुंदर सिंह। जब तक वे सरदार थे, किसी को पता
ही नहीं था कि वे बड़े प्रतिभाशाली हैं। एक तो सरदार थे, तो किसको पता चले कि प्रतिभाशाली हैं। जब वे ईसाई हो गए तो सारी दुनिया में ईसाइयों ने उनकी दुंदुभी पीट दी कि वे महान प्रतिभाशाली हैं। ऐसा आदमी ही नहीं है। ये

महात्मा बहुत पहुंचे हुए हैं। सिक्खों में उनका बहुत अपमान हो गया। सिक्खों में पहले अपमान भी नहीं था, सम्मान भी नहीं था--किसी को पता ही नहीं था कि सरदार जी में ऐसे गुण हैं।
मगर वह पता ही जब चला--दोनों बातों का पता एक साथ चला। जब सुंदर सिंह ईसाई हो गए तो ईसाइयों को पता चला कि इनमें महान प्रतिभा छिपी है। यह तो मसीहा की हैसियत के आदमी हैं। और सिक्खों को पता चला कि यह आदमी शैतान है। इसने धर्मद्रोह किया।
ईसाइयों ने उनकी जगत भर में प्रशंसा की। जगह-जगह उनका सम्मान हुआ। पोप ने उन्हें निमंत्रित किया; दूर-दूर देशों में उन्होंने यात्राएं कीं, बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में उनको मानद उपाधियां दी गईं कि हिंदुस्तान में ऐसा आदमी ही पैदा नहीं हुआ। यह है महात्मा असली! क्योंकि उन्होंने घोषणा कर दी कि जीसस के मुकाबले और कोई भी नहीं--न नानक, न कबीर, न बुद्ध, न महावीर, न कृष्ण--ये सब फीके पड़ गए हैं जीसस के सामने। बस, यही उनकी प्रतिभा थी।
मगर यहां सिक्खों की तो आग लग गई छाती में। अब सिक्ख कोई ऐसे तो नहीं
कि चुप बैठ जाएं। सिक्ख और चुप बैठ जाएं। असंभव। जब सुंदर सिंह वापस आए तो उनका पता ही नहीं चला वे कहां गए। सिक्खों ने सुनते हैं खातमा ही कर दिया उनका। किसने किया, यह भी पता नहीं है, मगर सिक्खों ने ही किया होगा और किसी को क्या पड़ी थी! किसी ने निकाल ली होगी कृपाण, सत श्री अकाल और फैसला कर दिया होगा। गए थे हिमालय की यात्रा को सुंदर सिंह, फिर लौटे ही नहीं। कोई पंच प्यारे पहुंच गए होंगे, कि अब तेरे को बताए देते हैं तेरी प्रतिभा! तूने धर्मद्रोह किया।
यही हालत गणेशवर्णी की थी। हिंदुओं में तो उनका विरोध था। जाति के वे सुनार थे। और जिस गांव से वे आते थे, दमोह से, जब मैं दमोह गया तो लोगों ने कहा, अरे वह सुनट्टा! मैंने कहा, तुम सुनट्टा कहते हो! पागल हो गए हो? दिगंबर जैनों में उनसे ज्यादा प्रतिष्ठित कोई आदमी ही नहीं है अब। जो जन्मजात दिगंबर मुनि थे, वे उनसे सब पीछे पड़ गए। और वे मुनि भी नहीं थे अभी।
दिगंबरों में पांच सीढ़ियां होती हैं। ब्रह्मचर्य से शुरू होता है; साधु पहले ब्रह्मचारी होता है, फिर छुल्लक होता है, फिर ऐसे बढ़ते-बढ़ते अंत में मुनि होता है। धीरे-धीरे छोड़ता जाता है। ब्रह्मचारी एक चादर रखता है, दो लंगोट रखता है। फिर छुल्लक चादर छोड़ देता है, दो लंगोट रखता है। फिर एलक, एक ही लंगोट रखता है। ऐसे बढ़ते-बढ़ते फिर मुनि, नग्न हो जाता है, कुछ भी नहीं रखता।
दिगंबरत्व दीक्षा का अर्थ होता हैः नग्न दीक्षा। दिगंबर यानी बस आकाश
ही जिसके वस्त्र हैं। और दिगंबर होकर जो मरता है, वही मोक्ष जाता है। जब गणेशवर्णी मरे तो मरने तक वे छुल्लक ही थे। दिगंबरत्व की दीक्षा अभी उन्होंने नहीं ली थी। आकांक्षा तो थी, मगर हिम्मत नहीं जुटा पाए थे नग्न होने की। मरते वक्त, आखिरी क्षण में उन्होंने कहा कि जल्दी से मुझे दिगंबरत्व की दीक्षा दिलवा दो।
मर रहे हैं, चिकित्सकों ने कह दिया है कि बस, अब आखिरी घड़ी है। अब उन्होंने सोचा, अब आखिरी घड़ी क्या घबड़ाना? अरे, अब नंगा ही होना है, अब मरना ही है; तो घड़ी भर पहले ही नग्न हो जाओ। अगर नग्न होने से मोक्ष मिलना है तो यह अवसर चूकना ठीक नहीं। इतने सस्ते में मोक्ष मिलता हो तो चूकना ठीक है भी नहीं! मरते वक्त जल्दी से मुनि को बुलाया गया--क्योंकि मुनि की दीक्षा मुनि ही दे सकता है। कोई दिगंबर मुनि ही मुनि की दीक्षा दे सकता है। जब तक दिगंबर मुनि को बुला कर लाया गया तब तक वे बेहोश हो गए थे। उन्होंने होश खो दिया था। मगर उनको बेहोशी में ही दिगंबरत्व की दीक्षा दे दी।
अब बेहोशी में तुम किसी को भी दिगंबरत्व की दीक्षा दे दो। अरे, लंगोटी
ही थी, निकाल दी। वे बेहोश पड़े हैं, जंतर-मंतर पढ़ कर और लंगोटी अलग कर दी उनकी। और वे दिगंबर हो गए। मोक्ष प्राप्त हो गया। और बस, जीवन भर की साधना पूर्ण हो गई। और वह आदमी बेहोश है, उसको पता ही नहीं कि दिगंबर हुआ कि नहीं!

वे चाहे यही ख्याल लेकर मरे हों, दुख में ही मरे हों, कि वह लंगोटी न छूटी सो न छूटी! उनको तो पता ही नहीं चलेगा।
अब तो तुम जिंदा को क्या मरे को ही दे दो। अरे, जब पता ही नहीं चलने का सवाल है, तो क्या फर्क पड़ता है। आदमी कोमा में है, बेहोश पड़ा है, कि मर गया-- सांस से क्या लेना-देना है--तो हर एक मुर्दे को ही दिगंबरत्व की दीक्षा दे दो और मोक्ष पहुंचा दो।
इन सज्जन ने, सन्मति जी सागर ने कहा, "अगर जरा देर पहले मुझे बता देते...
।"
देखो तुम, दुष्टता का हिसाब कुछ आंको! कहने को तो ये अहिंसा से भरे हुए लोग हैं, मगर दुष्टता देखो! यह मुनि भी नहीं बोला कि पानी पिला देना था। आदमी मर रहा है, तो उसको पानी दे देना था; थोड़ी देर पहले मुझे कहा होता तो मैं कह देता कि पानी पिला दो, इसमें क्या बात है। छान कर पिला दो! मगर... ! डिस्टिल्ड वाटर ले आओ; किसी भी तरह इस आदमी को बचा लो, मर रहा है। तुम नहीं पिला कर इसको मार रहे हो।
लेकिन मुनि ने और भी ऊंची बात बताई। उन्होंने कहा, तुमने अगर थोड़ी देर पहले मुझे कहा होता--पानी की तो बात ही नहीं उठाई, वह तो तुमने ठीक ही किया कि पानी नहीं दिया, नहीं तो भ्रष्ट हो जाता आदमी। दस दिन की साधना भी गई, उपवास भी गया, श्रम भी गया और पतित भी हो गए! वह तो अच्छा किया, वह तो सवाल ही नहीं उठता--और उन्होंने आगे का कदम बताया कि अगर मुझे बता दिया होता तो उनके कपड़े और उतार लेता।
बसंतीलाल कपड़े पकड़ते--क्योंकि अभी वे होश में थे, पानी मांग रहे थे। बसंतीलाल बड़े हैरान होते कि भैया, यह क्या कर रहे हो? मुझे पानी चाहिए और तुम कपड़े छीन रहे हो! मगर प्रियजन अगर उनके हाथ वगैरह पकड़ लेते तो करते क्या बसंतीलाल! दस दिन में कमजोर भी हो गए होंगे। भूखे दस दिन से पड़े थे, बीमार थे, उनकी हालत तो खस्ता हो रही होगी। उनको जबरदस्ती पकड़ कर कोई मुंह पर हाथ रख देताः तू चुप रह! मुनि महाराज जो कर रहे हैं करने दो! बसंतीलाल लाख चिल्लाते कि मुझे नंगा नहीं होना है; अरे, सब गांव के लोग देख रहे हैं, मुझे नंगा नहीं होना है, मुझे मोक्ष नहीं जाना है। मगर कोई सुनता! मोक्ष जैसी चीज, तुम्हें जाना हो कि न जाना हो, जिनको भेजना है वे भेजेंगे। ऐसे लोगों को पूछने लगे कि जाना है कि नहीं जाना है, कोई जाए ही नहीं! दे देंगे धक्का। और कोई बुरा काम थोड़े ही कर रहे हैं! काम तो अच्छा कर रहे हैं। इसलिए जबरदस्ती भी अगर कपड़े छीन लिए जाते तो भी घोषणा हो जाती कि वे मोक्ष को प्राप्त हो गए।
इस तरह की बातों को संन्यास कहोगे?
मैत्रेयी उपनिषद ठीक कहता हैः "कर्मों को छोड़ देना कुछ संन्यास नहीं है। इसी प्रकार, मैं संन्यासी हूं, ऐसा कह देने से भी कोई संन्यासी नहीं होता है।"
फिर संन्यासी कौन है?
"समाधि में जीव और परमात्मा की एकता का भाव होना ही संन्यास कहलाता है।"
अनुवाद में थोड़ी-सी भूल है। अक्सर मुझे अनुवादों में भूल दिखाई पड़ती है। और उसका कारण यह है कि अनुवाद करने वाले को ख्याल भी नहीं होगा कि भूल कहां हो रही है। अनुवाद करने वाले ने तो भाव से ही अनुवाद किया है। उसने तो ठीक ही सोच कर अनुवाद किया है। लेकिन चूंकि उसको स्वयं कोई अनुभव नहीं है-- भाषा को जानता होगा, लेकिन चूंकि अनुभव नहीं है तो भूल होनी निश्चित है। "समाधि में जीव और परमात्मा की एकता का भाव होना ही... ।"
एकता का कोई भाव होता है? अनुभव होता है। एकता का भाव का तो अर्थ हुआ
कि अभी हैं तो दो, मगर भाव एक का हो रहा है। जैसे दो प्रेमियों को होता है, कि दो शरीर और एक आत्मा। अरे, लाख तुम कहो कि दो शरीर और एक आत्मा, तुम्हें कोई मारेगा, तुम्हें कोई पीटेगा, तब पता चलेगा कि तुम पिट रहे हो और पत्नी खड़ी देख रही है!
फजलू बाहर खड़ा था अपने घर के और अंदर कुश्ती हो रही थी। पोस्टमैन ने आकर कहा कि तेरे पापा कहां हैं, फजलू? फजलू ने कहा कि पापा भीतर कुश्ती कर रहे हैं। पोस्टमैन ने भी खिड़की से झांक कर देखा, चीजें गिर रही हैं,

चंदूलाल और मुल्ला नसरुद्दीन में बड़े दांव-पेंच लग रहे हैं; घर के भीतर कुश्ती हो रही है, खुले बैठकखाने में, खिड़कियों में से लोग देख रहे हैं, मोहल्ले-पड़ोस के लोग झांक रहे हैं। पोस्टमैन ने पूछा कि अरे, ये दोनों आदमियों में कौन तेरे पापा हैं? फजलू ने कहा, इसी बात की तो कुश्ती हो रही है। तय कर रहे हैं कि कौन मेरे पापा हैं। यही तो झगड़ा है। और इसीलिए तो मैं यहां बैठा हूं, स्कूल नहीं गया हूं कि पक्का हो जाए कि कौन पापा है तो मैं स्कूल जाऊं। अब यह बात तो निर्णायक है कि है कौन पापा! और तुम मुझसे पूछ रहे हो, अभी तय ही नहीं हुई बात तो मैं क्या बताऊं!
यह जो जीव और परमात्मा की एकता का भाव! भाव नहीं होता, अनुभव होता है।
एक ही हैं। हां, दो हों तो फिर भाव की संभावना है। हैं तो दो मगर भाव एकता का हो रहा है। नहीं, जीव और परमात्मा दो कभी थे ही नहीं। दो की हमारी जो बात थी, वह भाव की बात थी। वह हमारी दृष्टि थी। वह हमारी भूल थी। वह हमारी भावना थी। अब जाना कि हम दो तो कभी थे ही नहीं, सदा एक थे। जब दो जानते थे तब भी दो नहीं थे, अब भी दो नहीं हैं। जिस दिन इस अनुभूति का अनावरण होता है कि अरे, मैं तो सदा ही इस अस्तित्व के साथ एक था--नहीं जानता था, यह बात और, मगर था तो सदा एक।
मूल सूत्र तो यही हैः संधौ जीवात्मनौरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः।
जिस दिन यह संधि अनुभव में आती है, यह जोड़ अनुभव में आता है, एक आनंद की लहर दौड़ जाती है, रोआं-रोआं पुलकित हो जाता है कि अहा, मैं तो सदा एक ही था और दो मान कर कितने दुख झेले! कितनी पीड़ा पाई! यह अवस्था ही समाधि है। समाधि का अर्थ हैः मैं और परमात्मा दो नहीं। एकता का भाव नहीं, ख्याल रखना, दोहरा दूं फिर, मैं और परमात्मा एक हैं, ऐसी प्रतीति नहीं। इसीलिए ज्ञानियों ने एकवाद शब्द का उपयोग नहीं किया, अद्वैतवाद शब्द का उपयोग किया--दो नहीं हैं। एक हैं, अगर ऐसा भी कहें तो खतरा है। अगर जोर दें कि मैं और परमात्मा एक, तो इस बात की संभावना है कि भीतर कहीं अभी भी लग रहा है कि हैं तो दो, मगर एक मान लिया है। इसलिए हमने इस देश में अद्वैतवाद शब्द गढ़ा। पश्चिम में जब पहली दफे उपनिषदों का अनुवाद होना शुरू हुआ तो उनको बड़ी हैरानी हुई कि अद्वैतवाद! एकवाद क्यों नहीं कहते? सीधी बात, उलटा कान क्यों पकड़ना? अगर एक ही हैं तो सिर्फ इतना कहोः एकवाद, मोनिज्म। लेकिन यह अद्वैतवाद, नान-डुआलिज्म, दो नहीं हैं, ऐसा उलटा कान क्यों पकड़ना!
उनकी समझ में बात कठिन थी, क्योंकि पश्चिम में मोनिज्म, एकवाद की धारणा के तो बहुत दार्शनिक हुए, लेकिन अद्वैतवाद शब्द ही पश्चिम की किसी भाषा में नहीं था। हो भी नहीं सकता था। क्योंकि जो एकवादी थे, वे दार्शनिक मात्र थे, और अद्वय का जो अनुभव है, दो नहीं, यह समाधि का अनुभव है। इसमें जोर इस बात का है कि दो हम कभी भी नहीं थे, अब भी नहीं हैं, कभी हो भी नहीं सकते थे, मगर भ्रांति थी हमारी।
जैसे रात तुम सोए और सपने में तुमने देखा कि तुम कहीं दूर चले गए, चांद-तारों पर घूम रहे हो; और कोई ने हिला कर जगा दिया, तो तुम चांद-तारों पर थोड़े ही जग जाओगे! जागोगे तो यहीं जहां सोए हो, अपने कमरे में। तुम यह थोड़े ही कहोगे कि भई, क्या किया तुमने भी, कैसी मुसीबत में डाल दिया, एकदम भागना पड़ा मुझे चांद-तारों से! इतनी लंबी यात्रा और तुमने क्षण में करवा दी। तीर की तरह चलना पड़ा! किरण की गति से चलना पड़ा। बामुश्किल पहुंच पाया अपने कमरे में। यह कोई ढंग है किसी आदमी को ऐसा हड़बड़ा कर उठा देना! मैं कहां चांद पर था! नहीं, जागते ही तुम पाओगे कि चांद पर तुम थे ही नहीं; थे तो तुम यहीं, रात भर यहीं थे, मगर एक भ्रांति थी, एक स्वप्न था चांद पर होने का।
दो होना भ्रांति है, स्वप्न है। एक होना सत्य है। लेकिन एक होना भाव नहीं है। भाव तो फिर विचार की ही बात हो गई। विचार से थोड़ी गहरी। लेकिन भाव साधा जाता है और अनुभूति उघाड़ी जाती है।
मेरे पास एक सूफी फकीर को लाया गया था। तीस साल से उनकी यह भावदशा थी, भावाविष्ट थे, हर चीज में उन्हें परमात्मा दिखाई पड़ता था। वृक्ष के सामने खड़े हो जाएं और बातें करने लगें। उनके भक्त इससे बहुत प्रभावित होते थे। उनके शिष्य बहुत थे, शागिर्द बहुत थे। पत्थर के सामने खड़े हो जाएं और

बातें करने लगें--पत्थर से। और उनके शिष्यों का चेहरा देखने लायक था कि देखो, गुरुदेव किस अवस्था में हैं!
मैंने उनसे कहा, ऐसा करो कि इन्हें तुम तीन दिन मेरे पास छोड़ दो। जब उनके शागिर्द उन्हें छोड़ कर चले गए और उनको तीन दिन मेरे पास रहना पड़ा तो मैंने उनसे पहले दिन यह कहा कि मैं आपसे एक बात पूछता हूंः तीस साल से आपको यह अनुभव होता है? उन्होंने कहा, हां। हर चीज में मुझे परमात्मा दिखाई पड़ता है। दीवार में, छप्पर में, फर्श में, हर जगह मुझे परमात्मा दिखाई पड़ता है। परमात्मा ही परमात्मा दिखाई पड़ता है। मैंने कहा, यह तो ठीक है। शुरुआत कैसे हुई? उन्होंने कहा, शुरुआत? मैंने इस तरह का भाव करना शुरू किया कि वृक्ष नहीं है, परमात्मा है। पहाड़ नहीं है, परमात्मा है। यह सूरज नहीं ऊग रहा है, परमात्मा ऊग रहा है, परमात्मा की किरणें फैल रही हैं। ये चांद-तारे परमात्मा हैं। मैंने भाव करना शुरू किया। मैंने कहा, भाव तो कल्पना हुई। जब तुमने भाव करना शुरू किया था तो तुम्हें पता था कि सच में ऐसा है? उन्होंने कहा, कैसे पता हो सकता था? पता तो बाद में चला। जब भावना प्रगाढ़ हो गई तब पता चला कि जो भाव किया था वह ठीक था।
मैंने कहा, यह तो बहुत अजीब बात हो गई। तुम भाव कुछ और भी करते, तो वह
भी प्रगाढ़ हो जाता। तो फिर वह भी सत्य हो जाता। बुनियाद में ही झूठ है, आधार में झूठ है, उसी झूठ पर तुमने यह सारा मंदिर खड़ा कर रखा है।
मैंने कहा, एक काम करो! तीस साल तुमने भावना की तब तुम अनुभव कर पाते
हो कि सब में परमात्मा है, तीन दिन के लिए यह भावना करना छोड़ दो। थोड़े तो वे झिझके, थोड़े तो डरे। मैंने कहा, डर रहे हो, इससे ही लगता है कि तुम्हें शक है कि तीन दिन में ही कहीं ऐसा न हो कि खिसक जाए बात।
नहीं, उन्होंने कहा, मैं क्यों डरूंगा? मुझे अनुभव ही हो रहा है कि सबमें परमात्मा है।
तो मैंने कहा, फिर तीन दिन में क्या हर्जा है? तीन दिन होने दो अनुभव, मगर तुम भाव मत करो। बोलना ही मत। न झाड़ से, न पत्थर से, न दीवार से। तीन दिन तुम यहां मेरे पास रहो--शागिर्दों को मैंने विदा कर दिया है, वे कोई आएंगे नहीं, तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं। मैं हूं और तुम हो। और तीन दिन तुम्हें कुछ करने नहीं दूंगा यह भावना।
झिझकते-झिझकते, डरते-डरते राजी हुए। और तीसरे दिन तो मुझ पर एकदम बिगड़ पड़े, नाराज ही हो गए। कहने लगे, मेरी तीस साल की साधना खराब कर दी। मैंने कहा, तुम थोड़ा सोचो तो! जो चीज सच थी, वह तीन दिन में भूल सकती है? वह सच थी ही नहीं। वह सिर्फ तुमने भाव किया हुआ था। और भाव तो आदमी कुछ भी कर ले। तीस साल तक अगर गाय में भैंस देखे तो भैंस दिखाई पड़ने लगेगी। इसमें कौन-सी खूबी की बात है। अरे, तीस साल लंबा समय है। यह तो सिर्फ आत्म-सम्मोहन हुआ। तुम जो चाहो वह हो जाएगा। सोने में मिट्टी दिख सकती है, मिट्टी में सोना दिख सकता है। इस तरह कोई अनुभूति तक नहीं पहुंचता। यह तो सिर्फ आत्म-सम्मोहित अवस्था है। और तीन दिन में फिसल गई। तीस साल में सधी और तीन दिन में फिसल गई। तो तुम खुद ही सोचो। नाराज मत होओ।
बामुश्किल वे शांत हुए। मैंने कहा, खुद विचार करो कि तीस साल का अनुभव अगर तीन दिन में गिर जाता हो तो कौन मजबूत है? और अब मत समय को गंवाओ! तीस साल तुमने यूं ही गंवाए, पानी पर लकीरें खींचते रहे। इस तरह नहीं कोई जाना जाता है कि मैं और परमात्मा एक हैं। मैं और परमात्मा एक हैं, यह तो समाधि का अनुभव है। तुम शांत हो जाओ, परमात्मा की फिकर छोड़ो--तुम्हें पता ही क्या परमात्मा का? है भी या नहीं, यह भी पता नहीं है। तो झूठों से शुरू मत करो! यात्रा का पहला कदम बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसी से सब कुछ निर्धारित होगा। उससे दूसरा कदम निकलेगा। तीसरा कदम निकलेगा। अगर पहला ही गलत है तो सब कदम गलत हो जाएंगे।
जो लोग विश्वास करके धर्म के जगत में उतरते हैं, वे झूठ में ही जीते हैं। धर्म तो अनुसंधान है, खोज है। और खोजी को विश्वासी नहीं होना चाहिए। विश्वास खोज में बाधा है। खोजी को तो कोई आकांक्षा-अभीप्सा भी नहीं होनी चाहिए। परमात्मा को पाने की भी नहीं, सत्य को पाने की भी नहीं; क्योंकि पता नहीं सत्य है भी या नहीं! अभी जिस चीज का पता ही नहीं है, उसको पाने की

अभीप्सा कैसे करोगे? अभी तो चुपचाप मौन सन्नाटे में चलना चाहिए। अभी तो मौन होना सीखो!
उनसे मैंने कहा कि निर्विचार होना सीखो। और जब निर्विचार की अवस्था सघन होगी, उस क्षण तुम्हें जो दिखाई पड़ेगा, वह सत्य होगा। फिर तीन दिन तो क्या, तीन जन्मों भी कोई चेष्टा करे तो तुम्हें सत्य से डिगा नहीं सकता। न सुकूने-दिल की है आरजू न किसी अजल की तलाश हैतेरी जुस्तजू में जो खो
गई मुझे उस नजर की तलाश हैन सुकूने-दिल की है आरजू...

जिसे तू कहीं भी न पा सका मुझे अपने दिल में वो मिल गयातुझे जाहिद इसका मलाल क्या ये नजर-नजर की तलाश हैन सुकूने-दिल की है आरजू...

तुझे दो जहां की खुशी मिली मुझे दो जहां का अलम मिलावो तेरी नजर की तलाश थी ये मेरी नजर की तलाश हैन सुकूने-दिल की है आरजू...

मेरी राहतों को मिटाके भी तेरे गम ने दी मुझे जिंदगीतेरा गम नहीं यूं
ही मिल गया मेरी उम्र भर की तलाश हैन सुकूने-दिल की है आरजू...

रही नूर मेरी ये आरजू न रहे ये गर्दिशे-जुस्तजूजो फरेब जल्वां न खा सके मुझे उस नजर की तलाश हैन सुकूने-दिल की है आरजू न किसी अजल की तलाश हैन सुकूने-दिल की है आरजू...
न सुकूने-दिल की है आरजू न किसी अजल की तलाश हैतेरी जुस्तजू में जो खो
गई मुझे उस नजर की तलाश हैन सुकूने-दिल की है आरजू...

जिसे तू कहीं भी न पा सका मुझे अपने दिल में वो मिल गया
तुझे जाहिद इसका मलाल क्या ये नजर-नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...

तुझे दो जहां की खुशी मिली मुझे दो जहां का अलम मिला
वो तेरी नजर की तलाश थी ये मेरी नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...

मेरी राहतों को मिटाके भी तेरे गम ने दी मुझे जिंदगी तेरा गम नहीं यूं ही मिल गया मेरी उम्र भर की तलाश है न सुकूने-दिल की है आरजू...

रही नूर मेरी ये आरजू न रहे ये गर्दिशे-जुस्तजू
जो फरेब जल्वां न खा सके मुझे उस नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू न किसी अजल की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...

खोज क्या है?
जो फरेब जल्वां न खा सके
जो धोखा न खा सके।
मुझे उस नजर की तलाश है
मुझे उस नजर की तलाश है
लेकिन तुम तो धोखे से ही बात शुरू करते हो। लोगों ने तुमसे कहा है सदियों-सदियों से कि पहले मानो, तब जान सकोगे। मैं तुमसे कहता हूं, यह बड़ी झूठी बात है, यह बड़ी जहरीली बात है। जिसने मान लिया, वह तो कभी भी जान न सकेगा। माना कि भटका। माना कि खोया। अगर जानना है तो मानना मत! क्योंकि मान ही लिया तो फिर खोजोगे कैसे? नजर ही खराब हो गई। नजर पर चश्मा चढ़ गया। नजर पर एक रंग छा गया। जो मान लिया, उसका रंग। फिर वही तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा। अब नजर पर हरे रंग का चश्मा चढ़ा लो, दुनिया हरी दिखाई पड़ने लगेगी। और फिर तुम कहोगे, दुनिया हरी है, क्योंकि मुझे हरी दिखाई पड़ती है। और तुम

गलत भी नहीं कह रहे हो, तुम्हें हरी दिखाई पड़ती है। लेकिन यह चश्मे के कारण। आंख से चश्मे उतारने हैं, पहनने नहीं हैं। आंख से पर्दे गिराने हैं। जो फरेब जल्वां न खा सके मुझे उस नजर की तलाश है
वह दृष्टि, वह निर्मल दृष्टि, वह निर्दोष दृष्टि, जो धोखा न खा सके।
लेकिन कोई गणेश जी की पूजा कर रहा है। यह कोई नजर है! कोई हनुमान जी की पूजा कर रहा है। कोई हनुमान चालीसा रट रहा है। कोई नमोकार मंत्र दोहरा रहा है! ये चश्मे हैं। कोई जैन है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, ईसाई है, बौद्ध है--ये सब चश्मे हैं। तुमसे मैं कहना चाहता हूंः नानक सिक्ख नहीं थे। इसलिए अगर नानक से तुम्हें थोड़ा भी प्रेम हो तो सिक्ख मत होना। महावीर जैन नहीं थे। अगर महावीर से थोड़ा भी प्रेम हो तो जैन मत होना। और ईसा ईसाई नहीं थे। शब्द ही उन्होंने नहीं सुना था कि ईसाई जैसी भी कोई चीज होती है। और बुद्ध बौद्ध नहीं थे।
जरा थोड़ा सोचो तो! बुद्ध बुद्ध हो गए बिना बौद्ध हुए, तो तुम क्यों न
हो सकोगे? और नानक बिना सिक्ख हुए सत्य को पा लिए, तो तुम क्यों न पा सकोगे? और कबीर क्या कबीरपंथी थे? आज तक जिन्होंने भी जाना है उन्होंने जाना ही है, माना नहीं। और तुम सिर्फ मान रहे हो। मानना उधार है, जानना अपना है। मानने का अर्थ हैः किसी और ने कह दिया है और तुमने मान लिया है।
जिसे तू कहीं भी न पा सका मुझे अपने दिल में वो मिल गया
हनुमान जी में खोज रहे हो? पहले यह भी तो पता कर लो कि हनुमान जी! जरा इनकी शकल तो देखो! थोड़ा विचार तो करो! आदमी हो तुम, क्या कर रहे हो?
एक मैंने प्यारी कहानी सुनी है। रामदास राम की कथा कहते थे। कहानी है
कि कथा वे इतनी प्यारी कहते थे कि हनुमान भी छिप कर सुनने आते थे। और उन्हें बड़ा मजा आता था कहानी सुनने में। रामदास जिस भाव से कहते थे, जिस अहोभाव से कहते थे--हालांकि हनुमान तो प्रत्यक्षदर्शी थे, उन्होंने तो देखी थी कहानी होते, मगर उनको भी सुनने में मजा आता था। रामदास के मुंह से सुन कर उनको भी बहुत-सी बातें पहली दफा दिखाई पड़नी शुरू हुई थीं। थे तो हनुमान जी ही! देखा जरूर होगा, मगर जब रामदास जैसे व्यक्ति अर्थ करें तो नई-नई अभिव्यंजनाएं होती हैं। नए फूल खिल जाते हैं। जहां कुछ भी न था वहां मरूद्यान खड़े हो जाते हैं। मरुस्थल मरूद्यानों में बदल जाते हैं। शब्दों में नए-नए काव्य, नए-नए गीत, नए-नए स्वर प्रकट होने लगते हैं।
मगर एक दिन बहुत मुश्किल हो गई। क्योंकि रामदास वर्णन कर रहे थे हनुमान जी का ही, कि हनुमान जी गए सीता से मिलने अशोक वाटिका में और उन्होंने अशोक वाटिका में यह देखा कि चारों तरफ सफेद ही सफेद फूल खिले हुए हैं। चांदनी के, जुही के, चमेली के, सफेद ही सफेद फूल। अशोक वाटिका में सफेद ही सफेद फूल थे। हनुमान जी ही ठहरे! यूं तो वे कंबल वगैरह ओढ़ कर छिप कर बैठते थे कि पूंछ वगैरह दिखाई न पड़ जाए किसी को। खड़े हो गए। भूल ही गए कि हम हनुमान जी हैं और हमको इस तरह बीच में खड़े नहीं होना चाहिए। कहा कि बस, और सब तो ठीक है, यह बात गलत है।
रामदास जैसे लोग, इस तरह की कोई हरकत करे! ... जैसे यहां कोई हनुमान जी खड़े हो जाएं! ... तो रामदास ने कहा, चुप! चुपचाप बैठ जा! हनुमान जी से कह दिया कि चुपचाप बैठ जा! रामदास जैसे फक्कड़ों का तो अपना हिसाब है। वह तो हनुमान जी को क्या, रामचंद्र जी को कह दें कि चुप! बीच-बीच में नहीं बोलना! शांति रखो!
हनुमान जी ने कहा, अरे, हद हो गई। कंबल भी फेंक दिया, कहा कि पहले देखो
तो मैं कौन हूं! मैं खुद हनुमान हूं! और मुझसे तुम कह रहे हो कि चुप बैठ जा! मैं गया था अशोक वाटिका कि तुम गए थे कि तुम्हारा बाप गया था? मैं गया था! और मैं तुमसे कहता हूं कि फूल सब लाल रंग के थे, सफेद नहीं थे। अपनी कहानी में बदलाहट कर लो!
रामदास तरह के लोग तो बड़े अलग ढंग के होते हैं, उन्होंने कहा, तुम हनुमान हो या कोई, तमीज रखो, बदतमीजी नहीं चलेगी! उठाओ अपना कंबल और शांति से बैठ जाओ! और मैं कहता हूं कि फूल सफेद थे और कहानी में फूल सफेद ही लिखे जाएंगे, मेरी कहानी को कोई नहीं बदल सकता।
हनुमान जी तो बहुत गुस्से में आ गए। उन्होंने कहा कि मैं नहीं चलने दूंगा; तुम्हें मेरे साथ रामचंद्र जी के पास चलना पड़ेगा। यह फैसला उन्हीं

के सामने होगा। अब तुम मानते नहीं हो और मैं चश्मदीद गवाह हूं और तुम देख रहे हो कि मैं हनुमान हूं।
सारी जनता प्रभावित हो गई कि बात तो ठीक है, हनुमान जी खुद खड़े हैं, अब
जब ये कह रहे हैं तो यह रामदास को क्या हुआ है? बहक गए हैं क्या? अरे, बदल लें, इतनी-सी बात है! मगर रामदास जैसे लोग बदलते नहीं। चाहे कुछ भी हो जाए! उन्होंने कहा, ठीक है, रामचंद्र जी के पास चलो, सीता मैया के पास चलो--जहां चलना हो।
हनुमान जी उनको बिठा कर कंधे पर रामचंद्र जी के पास ले गए। रामचंद्र
ने कहा कि हनुमान, पहले तो तुम्हें वहां जाना नहीं था। और गए अगर तुम तो अपने कंबल में छिपे रहना था। और अगर तुम्हें बात गलत जंच रही थी तो एकांत में जाकर उनसे बात करनी थी। और फिर मुझसे भी पूछ लेना था, इसके पहले कि विवाद करो। रामदास जैसे आदमी से विवाद नहीं करना चाहिए।
अरे, हनुमान जी ने कहा, हद हो गई! आप भी इस तरह से बोल रहे हो! पक्षपात
चल रहा है! न्याय का तो कहीं कोई हिसाब ही न रहा! मैं गया अशोक वाटिका कि तुम गए थे, जी? न तुम गए, न ये रामदास का बच्चा गया, कोई नहीं गया, मैं गया था! तुम हो कौन? यह मेरी भलमनसाहत है कि मैं तुम्हारे पास लाया। रामदास का हाथ पकड़ कर कहा कि चलो जी, सीता मैया के पास चलो! वही एक गवाह हैं, क्योंकि वे वहां रही थीं। इनको क्या पता? नाहक ही बीच में अड़ंगेबाजी कर रहे हैं। न इनको पता है, न तुमको पता है।
सीता के पास ले गए वे उनको। सीता ने कहा कि हनुमान, शांत हो जाओ, फूल सफेद ही थे! रामदास जैसे आदमी से जिद्द नहीं करनी चाहिए। ये कहते हैं तो सफेद ही थे।
हनुमान थोड़े ठंडे हुए कि अब बड़ा मुश्किल हो गया मामला! अब कहां से--और
तो कोई गवाह ही नहीं है! अब सीता भी बदल गईं! जिनको मैं ही बचा कर लाया और इतने उपद्रव किए--क्या-क्या उपद्रव नहीं करने पड़े! कहां-कहां की झंझटें सिर पर नहीं आईं! और ये रामदास ऐसा कौन-सा खास काम कर दिया है जिसकी वजह से रामचंद्र जी भी इसके साथ हैं, सीता भी कहती हैं कि ठीक ही कहते हैं, सफेद ही थे। तो हनुमान ने कहा कि मैं इतना भी पूछ सकता हूं कि यह सब मेरे साथ अन्याय क्यों हो रहा है?
सीता ने कहा, अन्याय नहीं हो रहा है, हनुमान, तुम समझे नहीं; तुम इतने क्रोध में थे कि तुम्हारी आंखों में खून भरा हुआ था, इसलिए तुम्हें फूल लाल दिखाई पड़े थे। फूल तो सफेद ही थे। तुम्हारी दृष्टि क्रोध से भभक रही थी, सुर्ख हो रही थीं तुम्हारी आंखें--मैंने तुम्हारी आंखें देखी थीं--आग जल रही थी उनमें, खून उतरा हुआ था, तुम पर खून सवार था, तुम्हें कैसे सफेद फूल दिखाई पड़ते? तुम्हें हर चीज लाल दिखाई पड़ रही थी। रामदास जो कहते हैं ठीक कहते हैं, फूल सफेद ही थे।
जब दृष्टि एक रंग से भरी हो, तो यह भूल हो जानी स्वाभाविक है। क्रोधित आदमी कुछ देख लेता है, शांत आदमी कुछ और देखता है। विचार से भरा हुआ व्यक्ति कुछ देखता है, निर्विचार से भरा हुआ व्यक्ति कुछ और देखता है। यह समाधि का अनुभव है।
जिसे तू कहीं भी न पा सका मुझे अपने दिल में वो मिल गया
तुझे जाहिद इसका मलाल क्या ये नजर-नजर की तलाश है
सच्चा खोजी तो नजर की तलाश करता है। उस नजर की जिस पर कोई पर्दा न हो।
उस दृष्टि की, उस सम्यक दृष्टि की, उस सम्यक दर्शन की, उस समाधि की, उस संबोधि की।
मैत्रेयी उपनिषद का सूत्र स्पष्ट है कि समाधि में जीव और आत्मा की दुई मिट जाती है। वे दो नहीं रह जाते। कभी थे भी नहीं, यह भी अनुभव हो जाता है। दुई हमारी भ्रांति थी। जैसे तुमने दो और दो चार गलती से पांच जोड़ रखे हैं। हिसाब करने बैठे हो, दो और दो चार तुमने गलती से पांच लिख दिए। फिर किसी ने तुम्हें बताया कि दो और दो चार होते हैं, पांच नहीं।
तो क्या तुम सोचते हो जब तुमने पांच लिखे थे तब दो और दो पांच हो गए थे? जब तुमने पांच लिखे थे तब भी वे चार ही थे। तुम लाख पांच लिखो, दो और दो तो चार ही रहेंगे। और अब जब तुम्हें पता चल गया है कि दो और दो चार हैं, तो क्या तुम कहोगे कि अब मुझे भाव हुआ कि दो और दो चार ही होते हैं?

नहीं, अब तुम कहोगे, मेरा पहला भाव गलत था। पहला भाव था मेरा कि दो और
दो पांच होते हैं; अब जो हो रहा है, यह सत्य है कि दो और दो चार हैं। पहला था भाव और अब है अनुभूति।
कर्मत्यागान्न संन्यासौ न प्रैषोच्चारणेन तु।
संधौ जीवात्मनौरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः।।
समाधि में अनुभव होता हैः दो नहीं हैं। और इस अनुभूति का नाम ही संन्यास है। इसलिए कोई संसार में करे कि पहाड़ में करे, कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझसे तुम पूछो तो मैं कहूंगाः संसार में रह कर ही यह अनुभव करना उचित है, क्योंकि वहां परीक्षा है; वहां अवसर है परखते रहने का; कसौटी है।

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या?
रहें आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या?
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें, हमन को इंतजारी क्या?
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सर पटकता है।
हमन हरि-नाम रांचा है, हमन दुनिया से यारी क्या?
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से।
उन्हीं से नेह लागा है, हमन को बेकरारी क्या?
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सर बोझ भारी क्या?
ये सिर पर बहुत-से विश्वासों और शास्त्रों का बोझ, सिद्धांतों का बोझ व्यर्थ का भार है।
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
दो है नहीं, दुई हमारे दिल की भ्रांति है। जब यह दुई की भ्रांति गिर जाती है, तब समाधि है। समाधि में समाधान है। और समाधिस्थ व्यक्ति के जीवन का नाम संन्यास है।

अगर है शौक मिलने का, तो हरदम लौ लगाता जा।
जला कर खुदनुमाई को, भसम तन पर लगाता जा।।
पकड़ कर इश्क की झाडू, सफा कर हिजरए-दिल को।
दुई की धूल को लेकर मुसल्लह पर उड़ाता जा।।
मुसल्लह फाड़, तसबीह तोड़, किताबें डाल पानी में।
पकड़ तू दस्त फरिश्तों का, गुलाम उनका कहाता जा।।
न मर भूखों, न रख रोजाः, न जा मस्जिद, न कर सिजदा।
वजू का तोड़ दे कूजा, शराबे-शौक पीता जा।।
हमेशा खा, हमेशा पी, न गफलत से रहो इकदम।
नशे में सैर कर, अपनी खुदी को तू जलाता जा।।
न हो मुल्ला, न हो ब्रह्मन, दुई को छोड़ कर पूजा।
हुक्म है शाह कलंदर का, अनलहक तू कहाता जा।।
कहे मंसूर मस्ताना, मैंने हक दिल में पहचाना।
वही मस्तों का मयखाना, उसी के बीच आता जा।।
समाधि की शराब पीओ। उसकी मस्ती में डूबो। और जब तुम्हारे जीवन में वह शराब बहेगी, तब संन्यास है। संन्यास उस मस्ती का नाम है जहां दुई गिर जाती है, जहां हम चांद-तारों, आकाश-बादलों, सूरज-पहाड़ों, सबके साथ अपने को एकात्म रूप से, सदैव शाश्वत रूप से जुड़ा हुआ पाते हैं। कभी टूटे नहीं और न कभी टूट सकते हैं, इस बात की अपरिहार्य प्रतीति संन्यास है।
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
सातवां प्रवचन

गुरु स्वयं को भी उपाय बना लेता है

पहला प्रश्नः ओशो, शाट्यायनीय उपनिषद गुरु की महिमा इस प्रकार गाता हैः
गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः।
एकाक्षर प्रदातमम नाभिनन्दति।
तस्य श्रुत तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुयत्।।
गुरु ही परम धर्म है, गुरु ही परम गति है। जो एक अक्षर के दाता गुरु का आदर नहीं करता, उसके श्रुत, तप और ज्ञान धीरे-धीरे ऐसे ही क्षीण होकर नष्ट हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े का जल।
ओशो, क्या ऐसा ही है?

स्वरूपानंद, सत्य को अभिव्यक्ति देने वाले शब्द दुधारी तलवार की भांति हैं। उनसे रक्षण भी हो सकता है, भक्षण भी। वे जीवन के लिए पाथेय बन सकते हैं--मार्ग, इशारा--और जीवन पर बोझ भी बन सकते हैं, भार भी बन सकते हैं। इतना भार कि उनके नीचे दबी आत्मा की मुक्ति असंभव हो जाए। इसलिए जिन्होंने जाना है उन्होंने कहाः सत्य की खोज पर निकलना खड्ग की धार पर चलने के समान है। जैसे कोई नंगी तलवार पर चलता हो। बहुत सावधानी की जरूरत है। जरा असावधानी, जरा चूक, और जन्मों के लिए भटकाव हो जाए। जितनी ऊंचाई से तुम गिरोगे उतना ही खतरा है।
और सत्य तो आकाश में उड़ता हुआ पक्षी है। गौरीशंकर के शिखर भी बहुत पीछे छूट जाते हैं। बदलियां भी नीचे रह जाती हैं। वहां एक-एक श्वास सावधानी की होनी आवश्यक है।
यह सूत्र उन खतरनाक सूत्रों में से एक है, जिन्हें गलत समझ लो तो जहर
हो जाएं और ठीक समझ लो तो अमृत। और गलत समझना सदा आसान है। क्योंकि गलत समझ तो हम सबके पास है। समझ को ठीक करना तो साधना से संभव होता है--ध्यान से, चैतन्य को निखारने से, धोने से, स्वच्छ करने से। गलत समझ सभी के पास है। उपलब्ध ही है।
यह सूत्र गुरु की महिमा के संबंध में प्रतीत होता है, असल में यह शिष्यत्व की महिमा का सूत्र है। गुरु तो बहाना है। मगर न शिष्य समझे, न गुरु समझे। शिष्यों ने इस सूत्र को गुरु की पूजा-आराधना का आधार बना लिया। और तथाकथित गुरुओं ने इसे शोषण का उपाय समझ लिया--सहारा मिल गया उपनिषदों का, वेदों का, कुरान का, बाइबिल का।
यह बात तुम पहले से ठीक से ध्यान में ले लेना। मैं चाहूंगा दोनों अर्थ तुम्हारे सामने साफ हो जाएं। देखने में तो यही लगता है कि उपनिषद कह रहा हैः "गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः। गुरु ही परम धर्म है, गुरु ही परम गति है।" गुरु की महिमा गा रहा है। इसलिए स्वरूपानंद ने पूछा कि उपनिषद गुरु की महिमा इस प्रकार गाता है।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं, इसमें गुरु की महिमा की बात ही नहीं है। गुरु तो बहाना है, निमित्त मात्र है। और बहाने की इसलिए जरूरत है कि बिना बहाने के तुम अपने अहंकार का समर्पण न कर सकोगे। तुमने अहंकार एक झूठ अपने भीतर पाल रखा है। तुम इसे सच ही मान कर चल रहे हो। और मान कर चल रहे हो, इसलिए यह सत्य ही हो गया है। तुम्हारे लिए तो सत्य ही हो गया है। जब तुम किसी सदगुरु के पास पहुंचोगे, किसी बुद्ध के पास, किसी कृष्ण के पास, तो वह तुम्हें कहेगाः छोड़ दो यह अहंकार, क्योंकि यही बाधा है तुम्हारे और परमात्मा के बीच, इसके अतिरिक्त और कोई दीवार नहीं है। यह हट जाए तो द्वार खुल जाए; यह मिट जाए तो सेतु बन जाए; यह है तो परमात्मा नहीं है। इसलिए कृष्ण ने कहाः मामेकं शरणं व्रज। हे अर्जुन, तू मेरी शरण आ!
जो कृष्ण-विरोधी हैं, वे कहेंगे, यह तो कृष्ण का अहंकार हुआ। कोई आदमी
यह कहे कि मेरी शरण आ, अब और क्या प्रमाण चाहिए अहंकार के! खुद अपने मुंह से

कहे कि मेरी शरण आ; मामेकं शरणं व्रज, मुझ एक की शरण आ, किसी और की शरण न चले जाना!
मगर कृष्ण असल में केवल इतना ही कह रहे हैं कि तूने जिस अहंकार को सत्य मान रखा है, उसे तू मुझे दे दे, मैं ले लेता हूं। कृष्ण को तो पता हैः अहंकार है ही नहीं। न कुछ देने को है, न कुछ लेने को है। मगर शिष्य तो मान कर जी रहा है कि अहंकार बहुत कुछ है, उसकी सारी संपदा और प्राण वही है, उसकी आत्मा वही है। वह तो गुरु के प्रेम में ही शायद छोड़ पाए तो छोड़ पाए। वह भी शायद! अर्जुन ने भी बहुत बचने की चेष्टा की, बचाव किया, हजार तर्क खोजे, हजार बहाने बताए, यह भी शर्त पूरी करने को कहा कि पहले मुझे अपना विराट रूप तो दिखाओ! मैं यह तो जानूं कि तुम परमात्मा हो! कोशिश एक ही थीः कैसे छोड़ दूं अपना अहंकार तुम्हारे चरणों में! पहले मुझे आश्वस्त तो करो कि यही हैं वे चरण जिनमें मैं अपने अहंकार को समर्पित करूं!
पूरी गीता अर्जुन अपने अहंकार को बचाने की चेष्टा कर रहा है और कृष्ण उसके अहंकार को मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं। और मजा यह है कि अहंकार है ही नहीं। न बचाए बचता है, न मिटाए मिटता है। हो तो मिटे, हो तो बचे। मगर कृष्ण को दिखाई पड़ता है कि नहीं है। पर आज अर्जुन को कैसे एकदम से कहो कि नहीं है। असंभव होगा उसके लिए यह समझना।
वह छोटा-सा बच्चा जो अपनी गुड़िया को छाती से लगाए दिन भर घूमता रहता है, मां देखती है कि थक गया है, परेशान हो रहा है, गुड़िया वजनी है। मां समझाती है कि अब गुड़िया को सुला देने का समय हो गया, आखिर गुड़िया को भी सोना होगा न, तू भी सोता है न, गुड़िया को दिन भर जगाए रखेगा तो मर ही न जाएगी! लिटा दे बिस्तर पर, सर्दी भी है, कंबल ओढ़ा दे, लोरी मैं गाए देती हूं, सो जाने दे! मां तो भलीभांति जानती है कि गुड़िया का क्या सोना और क्या जागना, मगर इस पागल का छुटकारा कैसे कराओ! नहीं तो यह गुड़िया को लादे फिरेगा!
मेरे एक अमरीकी संन्यासी एक बंदूक लिए घूमते थे। और उसको छिपाए रखते थे। मगर बड़ी बंदूक थी, लाख छिपाएं तो भी दिखाई पड़ जाती थी लोगों को। और छिपाने की कोशिश के कारण और लोगों को संदेह हुआ कि बात क्या है? बंदूक छिपानी क्यों? अगर रखनी है तो रखो, मगर छिपाने की क्या कोशिश? वह एक बड़े झोले में उस बंदूक को रख कर कंधे पर लटकाए रखते थे। लेकिन किसी ने झांक कर देख लिया। और उसने देखा कि वह बाजार में भी जाते हैं तो बंदूक झोले में लटकाए रखते हैं। उन मित्रों ने शीला को खबर की कि यह आदमी खतरनाक मालूम होता है। यह आदमी बंदूक लिए चलता है! शीला ने उस बेचारे संन्यासी को बुलाया और कहा कि भई, यह दिन-रात बंदूक रखने का क्या प्रयोजन है?
तब भी वह झोला अपने कंधे पर लटकाए थे। वह आदमी कहने लगा, मैं ऐसी मुसीबत में हूं कि जिसका हिसाब नहीं। न लटकाऊं तो बनती नहीं, लटकाऊं तो मुसीबत है। ये मेरे छोटे छोकरे को देखती हो? वह असली बंदूक नहीं है, खिलौना है--निकाल कर उन्होंने बंदूक बताई, खिलौना है--मगर इतनी बड़ी है कि इससे ढोई नहीं जाती। और यह दुष्ट बिना इस बंदूक के हिलता नहीं! जब तक यह बंदूक साथ न हो, यह चलने वाला नहीं। और मैं फंस मरा हूं, इसको यहां ले आया हूं! मैंने सोचा था कि इसकी भी यात्रा हो जाएगी, मगर यह मेरी जान लिए ले रहा है! रात को भी उठ-उठ कर देख लेता है कि बंदूक इसके बिस्तर पर लेटी है कि नहीं? और बंदूक इतनी बड़ी है कि खुद तो लेकर चल सकता नहीं, सो मुझे लेकर चलना पड़ रहा है। बाजार में भी लोग देखते हैं गौर से मुझे कि यह आदमी बंदूक क्यों लिए है? और चूंकि लोग गौर से देखते हैं, मैं छिपाता हूं। मैं छिपाता हूं तो लोग और गौर से देखते हैं। और मैं छिपाता हूं तो यह छोकरा झोले में झांक-झांक कर देखता है कि बंदूक है या नहीं?
अब मां को तो पता है कि बोझ ही ढो रहा है यह बच्चा। मगर करो क्या! इस बच्चे को अभी यह समझाना कि यह सिर्फ खिलौना है, गलत होगा, बेमानी होगा; इसे समझ में न आएगा, यह रोएगा; इसके लिए तो कोई उपाय खोजना पड़ेगा।
बुद्ध ने कहा हैः सदगुरुओं का एक ही काम है--बच्चों के लिए उपाय खोजना। डिवाइसेज। वे उपाय उतने ही झूठ होते हैं जितने बच्चों के खिलौने। जैसे एक कांटे से हम दूसरे कांटे को निकाल लेते हैं और फिर दोनों कांटों

को फेंक देते हैं, वैसे ही एक झूठ से दूसरे झूठ को निकाला जाता है और फिर दोनों को फेंक दिया जाता है।
गुरु की तरफ से तो बात साफ है कि अहंकार नहीं है। अगर गुरु भी मानता हो
कि अहंकार है, तो अभी गुरु नहीं है। गुरु तो वही है जिसे पता चल गया है कि मैं नहीं हूं, केवल परमात्मा है, केवल भगवत्ता है। मैं नहीं हूं, भगवान है। जैसा गुरु को पता चल गया है, वैसा ही चलवाना चाहता है पता शिष्य को भी। मगर अभी शिष्य तो बहुत दूर है; उस शिखर को छूना अभी दूर है; अभी तो जो नहीं है, उसको पकड़े बैठा है। लेकिन जो नहीं है, वह भी जब तुम पकड़े होते हो--और जोर से पकड़े होते हो--तो उसे छुड़ाने के लिए कोई उपाय करना होगा। गुरु खुद को भी उपाय बना लेता है। वह कहता हैः ठीक, मैं सम्हाल कर रख लूंगा, तू अहंकार को मुझे दे दे। क्या तू सोचता है तेरे पास ज्यादा सुरक्षित है? मेरे पास ज्यादा सुरक्षित होगा। मैं इसकी ज्यादा साज-सम्हाल कर लूंगा।
गुरु की सारी चेष्टा यह है कि शिष्य में श्रद्धा जगाए, प्रेम उमगाए-- इतना प्रेम, इतनी श्रद्धा कि वह अपने इस अहंकार को, जो प्राणों से भी प्यारा है उसे, गुरु के चरणों में रख दे। रखते ही राज खुल जाएगा। रखते ही शिष्य को भी पता चल जाएगा कि जो उसने रखा है, वह है नहीं। कहते हैं नः मुट्ठी बंधी हो तो लाख की, खुल जाए तो खाक की! वह ठीक है बात। वह कहावत जिसने भी ईजाद की हो, खूब जान कर ईजाद की है। बंधी मुट्ठी लाख की, वह जब तक भीतर छिपाया हुआ था अहंकार तब तक लाख का था। मुट्ठी बंधी थी। खुली मुट्ठी खाक की। गुरु के चरणों में रख कर उसको भी तो दिखाई पड़ जाएगा कि क्या चरणों में रखा है? कुछ भी तो नहीं! था ही नहीं जो!
गुरु का काम हैः शिष्य से उसको छीन लेना जो उसके पास नहीं है। और दूसरा काम हैः उसे वह दे देना जो उसके पास है ही। गुरु का काम बड़ा बेबूझ है, अटपटा है। जो नहीं है, उसे छीनना है; और जो है, जो है ही, उसे देना है। अहंकार को ले लेना है और आत्मा को देना है। और मजा यह है कि अहंकार है ही नहीं, आत्मा ही है। मगर तुम जब तक अहंकार को माने हो, जब तक "नहीं" पर तुम्हारी आंखें टिकी हैं, तब तक "है" का तुम्हें दर्शन न होगा। इसलिए गुरु स्वयं ही एक उपाय है।
पतंजलि ने तो बहुत अदभुत सूत्र कहा। पतंजलि ने तो मनुष्य के जीवन में क्रांति लाने के लिए जो विधियां बताई हैं, ईश्वर को भी उन विधियों में एक विधि माना है। पतंजलि यह कहते ही नहीं कि ईश्वर है या नहीं--यह सवाल ही नहीं है--ईश्वर भी एक आलंबन है अहंकार को छोड़ने का। मान लो तो पत्थर भी काम का हो जाता है और न मानो तो स्वयं बुद्ध भी सामने खड़े हों तो किस काम के। मान लो तो पत्थर की मूर्ति भी बुद्ध की जीवन में क्रांति ले आए। क्यों? क्योंकि पत्थर की मूर्ति के सामने भी अहंकार चढ़ाया जा सकता है।
हालांकि जरा कठिनाई होगी; क्योंकि पत्थर की मूर्ति न समझाएगी, न तर्क करेगी, न तुम्हारे तर्कों का खंडन करेगी, न तुम पर चोट करेगी। मगर अगर तुम्हारा भाव गहरा हो, तुम्हारी प्रीति गहरी हो, तुम्हारी श्रद्धा गहन हो, तो पत्थर की मूर्ति के सामने भी रख दे सकते हो। और वहीं मुट्ठी खुल जाएगी। और वहीं पता चल जाएगा कि अहंकार तो था ही नहीं, मैं एक झूठ के साथ जी रहा था। मैंने एक सपने को अपने भीतर सजा रखा था। मैं सपने में ही जीता था, उठता था, बैठता था, चलता था। सपना टूट गया, नींद खुल गई।
यह तो मूल प्रयोजन है इस सूत्र का। यह गुरु की महिमा नहीं, अहंकार का खंडन है।
गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः।
"गुरु ही परम धर्म है।"
क्योंकि अहंकार छूटा कि तुम्हें अपने स्वभाव का पता चला। धर्म का अर्थ होता हैः स्वभाव। न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। ये संप्रदाय हैं, धर्म नहीं। ये अलग-अलग संप्रदाय हैं धर्म तक पहुंचने के। दुनिया में कोई तीन सौ संप्रदाय हैं। सब धर्म तक पहुंचते हैं। तीन सौ रास्ते हैं। संप्रदाय का मतलबः रास्ता, मार्ग, नाव, घाट। किस घाट उतरे, क्या फर्क पड़ता है! घाट बहुतेरे; नदी तो एक है। नदी एक, घाट बहुतेरे। इस पार से उस पार चले गए, किस नौका में बैठे, इससे भी क्या फर्क पड़ता है! नौका इस

रंग की थी कि उस रंग की, कि यह झंडा लगा था नौका पर कि वह झंडा लगा था, क्या फर्क पड़ता है! नौका वह जो उस पार ले जाए। कोई घाट हो, कोई तीर्थ हो!
तीर्थ का मतलब होता हैः घाट। कोई तीर्थ हो, कोई घाट हो, कोई तीर्थंकर हो, कोई मल्लाह हो। तीर्थंकर का मतलब होता हैः मल्लाह, माझी, नाविक, जो तुम्हारी नाव को खे कर ले जाए इस पार से उस पार। कोई हो--महावीर, कि बुद्ध, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट, कि मोहम्मद--चलेगा, क्या अंतर आता है! उस पार पहुंच जाओ।
धर्म हैः स्वभाव। और हमें पता नहीं कि हम कौन हैं। हम कुरान खोले बैठे हैं, पुराण खोले बैठे हैं, और हमें पता नहीं कि हम कौन हैं। हम शास्त्र पढ़ रहे हैं, और हमें पढ़ने वाले का भी पता नहीं। हम सिद्धांत समझ रहे हैं, और हमारे भीतर जो समझ का सूत्र है उससे भी हमारी पहचान नहीं है। और वही है धर्म। धर्म का अर्थ हैः अपने को जान लेना, अपने स्वभाव को पहचान लेना, अपने चैतन्य से परिचित हो जाना।
"गुरु ही परम धर्म है।"
गुरु का अर्थ हैः वह, जो अपने स्वभाव से परिचित हो गया है। जिसने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है। आत्म-साक्षात्कार को उपलब्ध व्यक्ति के पास काश तुम अपने अहंकार को समर्पित कर सको तो उसके दर्पण में--उसके निर्मल दर्पण में तुम्हारी छवि झलक जाएगी। उसके दर्पण में तुम पहली बार अपने मौलिक स्वरूप को पहचान पाओगे। उसकी वीणा का संगीत बज उठा है। काश, तुम अपने अहंकार को, अपनी मन-बुद्धि को उसके चरणों में रख दो, तो तुम शून्य हो जाओगे। उस शून्य में उसकी वीणा के स्वर तुम्हारे भीतर भी प्रवेश करने लगेंगे।
वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं। एक बंद कमरे में एक कोने में वीणा बजाता है कोई; और दूसरे कोने में वीणा सिर्फ टिका कर रख दी है, कोई बजा नहीं रहा, कोई बजाने वाला नहीं है। लेकिन कमरा बंद है, कमरे में कोई सामान नहीं है, ताकि वीणा के स्वरों में कोई अवरोध न हो। वीणावादक वीणा बजाता है, और हैरानी की बात है कि दूर दूसरे कोने में रखी वीणा के तार झनझनाने लगते हैं। एक वीणा बजती है, दूसरी वीणा के तार बिना बजाए बजने लगते हैं।
बस यही घटना गुरु और शिष्य के बीच घटती है। गुरु बज उठा है, उसकी बांसुरी बज गई। शिष्य को अभी बजना है। बजने की क्षमता उसकी उतनी ही है जितनी गुरु की। गीत उसके भीतर उतने ही हैं, संगीत उसके भीतर उतना ही है, उसके प्राणों में उतना ही आलोक है, उसके भीतर वही साम्राज्य है। वही उसका स्वभाव है जो गुरु का, जरा भी भेद नहीं, रंच मात्र भेद नहीं। लेकिन किसी बजती हुई वीणा के पास अगर वह बैठ जाए तो शायद उसे अपनी स्मृति आ जाए, अपनी याद आ जाए; शायद उसके भीतर भी हृदयतंत्री पर कुछ झंकार हो जाए, कोई चोट पड़ जाए।
एक बुझे दीए को हम जले हुए दीए के करीब ले आते हैं--और एक क्रांति घट जाती है। बुझा दीया जैसे-जैसे जले दीए के करीब आता है वैसे-वैसे संभावना जले दीए से ज्योति के बुझे दीए में उतर जाने की बढ़ती जाती है। और फिर आती है वह अभूतपूर्व घड़ी, वह क्रांति का क्षण, जब अचानक छलांग लग जाती है। जला दीया अपनी ज्योति से बुझे दीए को जला देता है। और मजा यह है कि जला दीया कुछ खोता नहीं और बुझे दीए को सब कुछ मिल जाता है।
आध्यात्मिक जीवन का सार-सूत्र यही हैः देने वाले का कुछ जाता नहीं और लेने वाले को सब कुछ मिल जाता है।
यह गुरु की महिमा नहीं, शिष्य की ही महिमा है। लेकिन फिर क्यों, उपनिषद का ऋषि शिष्य की ही महिमा लिख देता, शिष्यत्व की महिमा लिख देता! खतरा था उसमें भी, खतरा है इसमें भी। उसमें और भी ज्यादा खतरा था। कम खतरे को चुना है। जब दो खतरे हों तो कम खतरे को ही चुनना चाहिए। शिष्य की महिमा में खतरा था कि अहंकार शिष्य का और मजबूत हो जाए। जिसकी बहुत संभावना है, क्योंकि शिष्य के पास अभी तो अहंकार ही है।
गुरु की महिमा में खतरा है--सिर्फ उन गुरुओं को खतरा है जो सच में ही गुरु नहीं। जो सच में गुरु है, उसको तो कोई खतरा नहीं है। जिसने अपने अहंकार को देख ही लिया है, उसकी असत्ता देख ली है, उसके लिए तो कोई खतरा नहीं है। उसकी तुम कितनी ही महिमा गाओ, उसके चरणों में सिर रखो, फूल चढ़ाओ,

उसकी आरती उतारो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। खतरा तो उसको है जो मिथ्या गुरु है।
मगर जो मिथ्या ही है, उसके खतरे की क्या चिंता करना, वह तो खतरे में है ही।
और जो मिथ्या नहीं है, उसकी क्या चिंता करना, वह तो खतरे के बाहर हो ही गया; अब कोई उपाय नहीं है उसे खतरे में वापस लाने का।
लेकिन अब और खतरा है। वह यह कि शिष्य अपने अहंकार को तो न छोड़े सिर्फ गुरु के गुणगान करने लगे। वह छोटा खतरा है। उतना बड़ा खतरा नहीं है जितना शिष्य का अहंकार मजबूत हो जाए।
इस सूत्र में यह खतरा है कि सुन कर गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः, कि गुरु ही परम धर्म और गुरु ही परम गति, तुम सोचो कि बस अब क्या करना! अब तो गुरु की पूजा उतारेंगे, अर्चना करेंगे, वंदना करेंगे, गुरु का नाम स्मरण करेंगे, गुरु-भक्ति करेंगे। बस, चूक गए तुम! बात चूक गए! तुम्हारा तीर जगह पर न लगा!
मैंने डायोजनीज के संबंध में सुना है। यूनान का एक बहुत मस्त फकीर हुआ। एक बाजार में एक तीरंदाज अपनी कला दिखला रहा था। सिक्खड़ ही था। दिखाने का शौक ज्यादा था, अभी दिखाने योग्य कुछ था नहीं। तीर तो मारता था, लेकिन निशाने पर एक तीर लगता नहीं था। कोई तीर इस तरफ चला जाता, कोई तीर उस तरफ चला जाता, कोई बीच में ही गिर जाता, कोई पार निकल जाता, कोई ऊपर उड़ जाता, कोई नीचे गिर जाता।
डायोजनीज गया और जहां उसने तीर के लिए निशाना बना रखा था, एक तख्ती टांग रखी थी, उसके नीचे बैठ गया। भीड़ ने कहा, पागल हो गए हो, डायोजनीज? तुम्हें कभी अकल आएगी या नहीं? डायोजनीज इस तरह के कामों के लिए प्रसिद्ध था। बड़ा फक्कड़ आदमी था। उसकी बहुत प्यारी कहानियों में एक कहानी यह भी है। कि वह बैठ गया वहां नीचे। भीड़ ने कहा, तुम पागल हो?
डायोजनीज ने कहा, पागल तुम हो! क्योंकि यह आदमी जिस तरह का तीरंदाज है,
यह जगह सबसे ज्यादा सुरक्षित है। यहां इसका तीर आने वाला नहीं। और कहीं भी खड़ा होना खतरे से खाली नहीं है। चारों दिशाओं में इसके तीर जा रहे हैं, सिर्फ इस तख्ते पर इसका कोई तीर नहीं लगा है।
आदमी मूर्च्छा में जीता है। कहीं चलता है, कहीं पहुंच जाता है। कहीं तीर चलाता है, कहीं लग जाता है। मगर अहंकार ऐसा है कि स्वीकार नहीं करता कि मेरे तीर गलत लग रहे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे फजलू को लेकर शिकार पर गए थे। बेटे के सामने बड़ी हांक रहे थे; बड़े तीसमारखां हो रहे थे। फजलू ने कहाः "पापा, अब कुछ दिखलाइए भी, बातचीत बहुत हो गई।" मुल्ला नसरुद्दीन ने फौरन अपनी बंदूक उठाई, भरी, और तभी एक बगुला झील के ऊपर उड़ा। मुल्ला नसरुद्दीन ने बंदूक चलाई। बगुले को न लगनी थी न लगी। फजलू इसके पहले कि कुछ बोले, मुल्ला थोड़ी देर तो उड़ते हुए बगुले को देखता रहा और बोलाः "देख, बेटा देख, चमत्कार देख! अरे, मरा हुआ बगुला उड़ रहा है!"
आदमी मानने को राजी थोड़े ही होता है कि मेरे निशाने नहीं लगे। चमत्कार दिखलाता है कि देखो, मरा हुआ बगुला उड़ रहा है। फजलू ने कहाः "वही तो पापा मैं सोचूं कि बंदूक भी चल गई और बगुला उड़ भी रहा है!" नसरुद्दीन ने कहाः "चमत्कार होते हैं, बेटा! दुनिया में चमत्कार ही चमत्कार हैं! देखने वाले चाहिए, आंख चाहिए, तो चमत्कारों की कोई कमी नहीं है।"
चूकने की संभावना है, अगर तुम गुरु की पूजा में लग जाओ। निशाना भटक गया। गुरु की पूजा का सवाल नहीं है, गुरु के चरणों में अपने अहंकार को चढ़ा देने का सवाल है। फूल चढ़ाने से कुछ भी न होगा और न आरती-वंदन से। अहंकार को रख दो उसके चरणों में, समर्पित कर दो! बस, हो गई पूजा, हो गया वंदन, हो गई अर्चना! अहंकार को उसके चरणों में रखते ही तुम पाओगे कि जो था ही नहीं मगर भीतर छुपा था तो दिखाई नहीं पड़ता था, अब प्रकट हो गया, मुट्ठी खुल गई। उसी क्षण दिखाई पड़ेगा अपना स्वभाव, अपनी आत्मा, अपने चैतन्य की प्रतीति।
इसी को कहा हैः "जो एक अक्षर के दाता गुरु का आदर नहीं करता।"
एक अक्षर! अक्षर शब्द बड़ा प्यारा है। जिसका कभी क्षय न हो। जो कभी विनष्ट न हो।
"जो एक अक्षर के दाता गुरु का आदर नहीं करता उसके श्रुत, तप और ज्ञान धीरे-धीरे ऐसे ही क्षीण होकर नष्ट हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े का जल।"

जिसने गुरु का आदर नहीं किया। आदर का मतलब फिर मत चूक जाना। जिसने गुरु के चरणों में अपना अहंकार नहीं रखा। वही आदर है, और कोई आदर नहीं। जिसने गुरु का आदर नहीं किया उसके श्रुत--उसने जो सुन रखा है। और तुम्हारा ज्ञान है क्या? श्रुत। जाना तो है नहीं, सुना है।
यह श्रुत शब्द बड़ा प्यारा है, बड़ा सार्थक है। इसलिए हमने शास्त्रों
को श्रुतियां कहा है, स्मृतियां कहा है। सुना है, याददाश्त में रख लिया है। श्रुति यानी सुना, स्मृति यानी याददाश्त में रखा। अभी जाना नहीं है, बोध नहीं है, अनुभव नहीं है, अपनी कोई प्रतीति नहीं है।
जैसे तुमने सुना कि आग जलाती है; यह श्रुत। और तुम्हारा हाथ जला, यह श्रुत नहीं है। किसी ने कहा, आग जलाती है; किसी ने कहा, पानी से प्यास बुझ जाती है। यह किसी ने कहा है। पता नहीं ठीक हो, पता नहीं गलत हो। लेकिन जब तुम स्वयं जान लोगे तब गलत और सही का सवाल नहीं उठेगा, तब प्रमाणों की कोई जरूरत नहीं होगी। ज्ञान स्वतः प्रमाण है। ज्ञान अपना प्रमाण स्वयं है। कोई साक्षी नहीं चाहिए, कोई गवाह नहीं चाहिए। मगर श्रुत के लिए तो गवाहियां चाहिए।
इसलिए शास्त्र को समझाने के लिए पंडित चाहिए, व्याख्याकार चाहिए, पुरोहित चाहिए। और फिर भी कहां समझ में आता है! फिर भी क्या खाक समझ में आता है! सुन लेते हो, याद भी कर लेते हो--और जैसे सुन लेते हो वैसे ही भूल भी जाते हो। मगर गुरु के पास बैठ कर अगर अहंकार उसके चरणों में न रखा तो जल्दी ही तुम पाओगे कि श्रुत किसी काम नहीं पड़ता। गुरु के पास मौका था जान लेने का।
इसलिए जो गुरु के पास केवल सुनने के लिए जाता है वह गलती करता है; व्यर्थ जा रहा है। सुनने का काम तो शास्त्र पढ़ कर घर पर ही हो सकता है। यह तो किसी पंडित-पुरोहित के पास बैठ कर भी हो सकता है। इसके लिए किसी सदगुरु के पास होने की आवश्यकता नहीं है। कबीर को खोजो, नानक को खोजो, फरीद को खोजो, रैदास को खोजो--बेकार, क्या जरूरत! साखियां तो कबीर की लिखी हुई रखी हैं, गुरुग्रंथ तो मौजूद है, गुरु को क्या खोजना, पढ़ लेंगे; भाषा ही समझने की बात है, तो सीख लेंगे।
काश, भाषा की ही बात होती तो दुनिया में सभी ज्ञानी हो गए होते! जो भी सुशिक्षित होता वही बुद्ध हो जाता। लेकिन सुशिक्षित होने से बुद्धत्व का कोई संबंध नहीं है। अशिक्षित भी बुद्ध हो गए हैं। मोहम्मद अशिक्षित थे, जीसस भी अशिक्षित थे, कबीर भी अशिक्षित थे, लेकिन बुद्ध हो गए। और शिक्षितों से सारी दुनिया भरी पड़ी है आज, कितने बुद्ध हैं दुनिया में? शिक्षा और बुद्धत्व का कोई नाता नहीं है। तुम कितना ही जान लो, अगर सुना हुआ ही है जाना हुआ, तो किसी काम न आएगा। तुम जो भी निष्पत्तियां निकालोगे, गलत होंगी।
मैंने सुना एक बहुत बड़ा दार्शनिक झील के तट पर खड़ा था और देख रहा था कि
एक मछुआ मछलियों को पकड़ने के लिए जाल बुन रहा है। बड़ा प्रभावित होकर देख रहा था। दार्शनिक ही था। मंत्रमुग्ध होकर देख रहा था। आखिर मछुए ने पूछा कि आप बड़ी देर से देख रहे हैं और आप आनंदित भी मालूम होते हैं देखकर, आखिर आपके इतने प्रसन्न होने का, इतने जिज्ञासा से भरे होने का क्या कारण है? दार्शनिक ने कहा, मैं यह देख रहा हूं कि तू किस गजब से छोटे-छोटे छेदों को इकट्ठा कर रहा है। आज तक मैंने ऐसा कलाकार नहीं देखा। छोटे-छोटे छेद जोड़ता जा रहा है। जाल बना रहा है।
मछुए को ख्याल ही नहीं है यह कि वह छोटे छेद जोड़ रहा है! वह तो सोच रहा
है कि वह धागे जोड़ रहा है! यह तो दार्शनिक की खोज हुईः छोटे-छोटे छेदों को जोड़ रहा है। ऐसी ऊंची बातें दार्शनिक ही खोज सकते हैं।
इमेनुअल कांट ने दो बिल्लियां पाल रखी थीं। उनके मारे बहुत परेशान था। क्योंकि जब तक वे लौट न आएं तब तक वह सो नहीं सकता था। किसी मित्र ने कहा कि तुम व्यर्थ परेशान होते हो। एक छेद कर दो दरवाजे में, जब भी उनको आना होगा लौट आएंगी। अब बिल्लियां ही हैं। चूहों की तलाश में निकली हैं रात में। कभी देर हो जाती है, कभी जल्दी हो जाती है। अब कोई चूहों के रेस्ट्रां तो हैं नहीं कि गए और बेयरे को बुलाया और कहा कि ले आ दो चूहे! दो प्लेट चूहे! खोजेंगी बेचारी, कहीं पाएंगी--कभी देर से पाएंगी, कभी जल्दी,

तुम नाहक रात आधी-आधी खराब करते हो! फिर गुस्सा होते हो, भनभनाते हो। फिजूल की बात, छोटा-सा काम, इतने बड़े बुद्धिमान आदमी, एक छेद कर दो, बिल्लियां जब आएंगी आ जाएंगी और सो जाएंगी। बात जंची इमेनुअल कांट को।
दूसरे दिन मित्र ने देखा, हैरान हो गया। उसने दो छेद किए हुए थे। मित्र ने पूछा, दो किसलिए छेद किए हैं? इमेनुअल कांट ने कहा, दो बिल्लियां हैं न! एक छोटी, एक बड़ी। एक छेद में से दोनों कैसे घुसेंगी?
जैसे कि एक ही साथ घुसना है! अरे, इतनी अकल तो बिल्लियों में भी है कि
एक साथ नहीं घुसेंगी! मगर दार्शनिकों की अकल का क्या कहो! उसने गणित के हिसाब से दो छेद कर दिए। एक बड़ी बिल्ली के लिए बड़ा छेद, एक छोटी बिल्ली के लिए छोटा छेद। इतना ही नहीं, कोई भूल-चूक न हो जाए, उसने छोटे छेद पर लिख दियाः छोटी बिल्ली के लिए, बड़े छेद पर लिख दियाः बड़ी बिल्ली के लिए। अरे, बड़ी बिल्ली कहीं छोटे छेद में घुस जाए तो फंस जाए। और छोटी बिल्ली अगर बड़े छेद से निकले ज्यादा निकल जाए!
दार्शनिक बड़ी चिंताएं कर लेते हैं, बड़ी तार्किक चिंताएं कर लेते हैं। श्रुत ज्ञान ज्ञान नहीं है, ज्ञान का धोखा है। इसलिए सूत्र ठीक कहता
है कि अगर गुरु के पास रह कर अहंकार को समर्पित न किया, तो तुम जान न पाओगे। गुरु के पास सुनते ही मत रहना, क्योंकि सुनने का काम तो दो कौड़ी के पंडित करवा देते हैं। सत्यनारायण की कथा कोई भी करवा देता है। न उसमें सत्य होता है, न नारायण होते हैं, कथा पूरी हो जाती है। न कहने वाले को पता है, न सुनने वाले को पता है। कहने वाले ने कह दिया, सुनने वाले ने सुन लिया; न कहने वाले ने कहा, न सुनने वाले ने सुना; बात जहां थी वहीं की वहीं रही। कितनी दफा सत्यनारायण की कथा हो चुकी, तुम्हें पता चला कि सत्य क्या है? कि नारायण क्या हैं? अरे, उससे भी तो पूछो जो करवाता है रोज, मुहल्ले में इधर से उधर करवाता फिरता है, दिन में पांच-सात जगह करवा देता है सत्यनारायण की कथा, उसको सत्य का कुछ पता है? किसी को प्रयोजन ही नहीं है! किसी को लेना-देना भी नहीं है।
संत भीखण हुए। राजस्थान के एक छोटे-से गांव में बोल रहे थे। सुनने वाले सुन रहे थे--जैसे सुनने वाले सुनते हैं! धार्मिक सभाओं में कोई सुनने के लिए तो जाता नहीं। धार्मिक सभाओं में तो लोग सोने के लिए जाते हैं। चिकित्सक तक जिनको नींद नहीं आती है, अनिद्रा की बीमारी है, उनसे कहते हैंः भैया, सत्संग करो! सत्संग में जिसको नींद न आ जाए, वह बड़ा गजब का आदमी है। जिसको रात भर भी नींद नहीं आती, उसको जैसे ही ब्रह्मचर्चा शुरू हुई कि नींद आनी शुरू हो जाती है।
और फिर दिन भर के थके-मांदे लोग, सांझ को भीखण का भाषण सुनने आए थे। गांव का जो सबसे बड़ा धनपति था, आसोजी, वह स्वभावतः धनपति था गांव का तो सबसे आगे बैठा था, भीखण के बिल्कुल सामने बैठा था। मारवाड़ी था। बड़ी तोंद। और जब नींद में आए तो ऐसा घुर्राए और पूरा पेट हिले कि भीखण जी का बोलना मुश्किल कर दिया उसने।
आखिर भीखण ने कहा, आसोजी, सोते हो? जल्दी से उसने आंख खोली, उसने कहा, नहीं-नहीं महाराज, कभी नहीं! अरे, आप प्रवचन करें और मैं सोऊं! भीखण भाखण करें और मैं सोऊं! कभी नहीं, कभी नहीं! आंख बंद करके सुनता हूं, महाराज। भीखण ने फिर बोलना शुरू किया। वह कोई आंख बंद करना ही तो था नहीं। क्योंकि आंख बंद करने से कोई घुर्राता नहीं। मगर फिर आसोजी घुर्राने लगे। भीखण ने फिर कहा, आसोजी, सोते हो? अब जरा आसोजी को गुस्सा आ गया कि गांव भर सुन रहा है, बार-बार मेरा ही नाम लेकर कहते हैं सोते हो, सोते हो! उसने कहा, आपको हुआ क्या है? आपको व्याख्यान देना है कि बस मुझ पर ही नजर रखनी है? अरे, पूरा गांव देख रहा है, पूरा गांव सुनने आया है, गांव भर में चर्चा होगी कि आसोजी सो रहे थे। क्यों ऐसी बात कहते हैं आप? मैंने आपका क्या बिगाड़ा? अरे, मैं तो ध्यानपूर्वक सुन रहा हूं।
भीखण ने फिर बोलना शुरू कर दिया, आसोजी फिर सो गए, फिर घुर्राए। भीखण
ने कहा, आसोजी, जीते हो? भीखण ने कहा, नहीं-नहीं, महाराज! फिर आप वही बातें करने लगे! बिल्कुल नहीं। भीखण ने कहा, अब आप फंस गए। क्योंकि मैंने वह बात कही ही नहीं। वे वही सुन रहे हैं कि सोते हो। अब नींद में ही हैं वे, किसी तरह पुरानी बात याद रखी--श्रुत था--याद रहा कि दो दफे पूछ चुके हैंः सोते

हो, तो इस बार भी वही पूछा होगा। अबकी बार सवाल बदल दिया था भीखण ने। खूब तरकीब की थी। कहा, आसोजी, जीते हो? मगर आसोजी नींद में थे, इनकार कर गए। कि नहीं-नहीं, महाराज, कभी नहीं! कौन कहता है? आप कैसी बातें करते हो? आप क्यों बार-बार वही बात करते हो? भीखण ने कहा, अब न चलेगा। अब मैंने वही बात नहीं की। अब मैंने कुछ और बात की। लेकिन वहां सुनने वाला कौन है?
गुरु के पास भी जो सुनने के लिए इकट्ठा हुआ है, वह गलती कर रहा है। यह काम तो दो कौड़ी के आदमी कर देंगे। गुरु के पास तो अहंकार विसर्जित करो, तो दृष्टि खुले। सत्य कानों से नहीं आता--याद रखना--आंखों से आता है। सुना सुनी की है नहीं, लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात। कान से नहीं आता सत्य। नहीं तो ग्रामोफोन रिकार्डों से आ जाए। आंख से आता है, देखने से आता है--दृष्टि, दर्शन।
जो व्यक्ति गुरु के पास भी सुन रहा है, या पुराने सुने हुए को लेकर बैठा है, उसका श्रुत क्षीण हो जाएगा। सुने हुए का कोई मूल्य ही नहीं है। वह तो अब खोया तब खोया। उसका तप भी व्यर्थ हो जाएगा। जिसने सुन-सुन कर तप किया है उसका तप ही गलत होता है।
तुम भी उपवास करते हो, क्योंकि तुमने सुना कि महावीर ने उपवास किया और उपवास करके परम सत्य को पा लिया। बात उलटी है। महावीर ने परम सत्य पाया और इसलिए कभी-कभी उपवास हुआ--किया नहीं। करने और होने में फर्क है। महावीर कभी-कभी ध्यान में ऐसे मग्न हो जाते थे कि दिन बीत जाता और भूख की याद ही न आती--शरीर की ही याद न आती तो भूख की कैसे याद आए? शरीर की ही बात बिसर जाती तो स्वभावतः भूख की बात भी बिसर जाती। यही उपवास शब्द का अर्थ है। उपवास का अर्थ हैः अपने निकट होना; आत्मा के निकट होना। इतने निकट होना कि शरीर बहुत दूर, बहुत दूर रह जाए। उसकी ध्वनि भी सुनाई न पड़े। इतना पीछे छूट जाए कि दिखाई भी न पड़े कि अब है या नहीं।
उपवास शब्द बड़ा प्यारा है। अब तो राजनेता भी जो करते हैं उसको उपवास कहते हैं लोग। अनशन कहो। भूखे मर रहे हैं, यह कहो। लेकिन उपवास मत कहो। उपवास बड़ा ऊंचा शब्द है। वह तो सिर्फ महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियों के लिए सार्थक है। मोरारजी देसाई जो करते हैं, वह अनशन है, उपवास नहीं। उपवास के लिए तो कुछ और ही प्रक्रिया चाहिए। उपवास तो ध्यान का फल है।
जब कोई ध्यान में डुबकी लगाता है गहरी और आत्मा में ठहर जाता है, तो शरीर भूल जाता है। दिनों बीत सकते हैं और शरीर की स्मृति न आए। तो उतनी देर भीतर वास हुआ, इसलिए भोजन की जरूरत न पड़ी--याद ही न पड़ी तो जरूरत कैसे पड़ती! शरीर से इतने दूर निकल गए कि शरीर खबर भी न दे पाया कि मैं भूखा हूं, कि मैं प्यासा हूं। यह उपवास।
लेकिन जिसने किसी तरह भूख को सम्हाल रखा है, किसी तरह अनशन किए बैठा है, नहीं खाएंगे, लेकिन मन में खाने ही खाने के विचार चल रहे हैं, भोजन ही भोजन के विचार चल रहे हैं--चलेंगे ही, क्योंकि बैठे तो तुम शरीर के पास हो और भ्रांति यह पैदा कर रहे हो कि उपवास है। सच तो यह है कि जब तुम अनशन करोगे तब तुम शरीर के पास ज्यादा रहोगे। रोज से भी ज्यादा रहोगे।
इस तरह का तप तो क्षीण हो जाएगा। ये कोई टिकने वाली चीज नहीं; ये तो पानी पर खींची गई लकीरें हैं। तुम खींच भी न पाओगे और मिट जाएंगी। और जिसको तुम ज्ञान कहते हो, वह क्या है? सिर्फ सूचना मात्र। ये सूचनाएं भी काम आने वाली नहीं हैं। समय पर काम नहीं आएंगी।
लोग इस देश में आत्मा की अमरता को मानते हैं। लेकिन घर में कोई मर जाए, फिर देखो! फिर भूल गए सब ज्ञान! बिसर गया सब ज्ञान! बैठे रो रहे हैं!
मेरे गांव में एक वैद्यराज थे। उनके घर ज्ञानी हमेशा ठहरते रहते थे। महात्माओं का अड्डा था। जब उनकी पहली पत्नी चल बसी और मैंने उनको रोते देखा तो मैंने कहा, पंडित जी, आप क्या कर रहे हैं? आप और रो रहे हैं! यह आपको शोभा देता है! अरे, आपको मैंने हजारों दफे सुना है यह कहते कि आत्मा अमर है! तो पत्नी मरी थोड़े ही! मर सकती ही नहीं। नैनम छिंदन्ति शस्त्राणि। अरे, शस्त्र छेद नहीं सकते। नैनम दहति पावकः। आपको ही मैंने सुना है गीता पढ़ते कि अग्नि जला नहीं सकती, शस्त्र छेद नहीं सकते। तो पत्नी मरी थोड़े ही है, अमर हो गई। और कोई साधारण पत्नी थी! आपकी पत्नी थी! ज्ञानी की पत्नी थी! और

ज्ञानी का इतना सत्संग चला और ऐसे महात्मा जमे रहे यहां--और आपसे ज्यादा सेवा तो महात्माओं की उसने की!
वे मुझसे बोले कि अभी यह बकवास न करो। मैंने कहा, बकवास! यह तो तत्वज्ञान है, पंडित जी! अरे, उन्होंने कहा, तुम मेरा पीछा छोड़ो। तुम्हें भी ऐसे उलटे अवसर सूझते हैं तत्वज्ञान! इधर मेरी पत्नी मर गई, तुम्हें तत्वज्ञान सूझा है! मैंने उनसे कहा, मैंने तो सोचा कि यही ठीक अवसर है तत्वज्ञान छेड़ने का, कि साफ-साफ हो जाएगा कि तत्वज्ञान है या नहीं! मैंने उनसे कहा, वैसे आपकी मर्जी, लेकिन अब ख्याल रखना, अब कभी यह अगर मैंने सुना आपको कि आत्मा अमर है तो फिर मुझसे बुरा कोई नहीं! उन्होंने कहा, तुम्हारा मतलब? मैंने कहा कि मैं मतलब बताऊंगा। अब कभी इस घर में ठहरने नहीं दूंगा किसी महात्मा को।
फिर इसके बाद जब मैं उनको गीता पढ़ते देखता था तो मैं फौरन पहुंच जाता
था कि बंद करो! वह मुझे देख कर गीता बंद कर देते थे, कहतेः तुम जाओ। तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो? मेरी पत्नी मर गई तब तुम तत्वज्ञान बताने आए और अब मैं शांति से तत्वज्ञान पढ़ रहा हूं तो तुम कहते हो कि गीता बंद करो! मैंने कहा कि जब अवसर हो तभी परीक्षण है। उसी वक्त मौका था कि आपको मैं हंसता-मुस्कुराता देखता, आनंदित देखता, तो जानता कि ज्ञान ज्ञान है। यह केवल सूचना थी। और वही सूचना फिर इकट्ठी कर रहे हो। फिर समय गंवा रहे हो। उन्हीं बुद्धुओं के साथ फिर समय गंवा रहे हो। जिंदगी भी पूरी उन्हीं के साथ गई, तुम्हारी पत्नी उन्हीं की सेवा करते-करते मरी और तुम भी उन्हीं की सेवा करते-करते मरोगे। उनको भी पता नहीं है कि आत्मा अमर है या नहीं। उनकी हालत देख कर मैं कह सकता हूं उनको पता नहीं कि आत्मा अमर है या नहीं। ज्ञान, सूचना ही अगर है तो व्यर्थ का कूड़ा-करकट है, बहा दो, जला दो, होली में डाल दो। लेकिन एक और भी ज्ञान है, जो अहंकार को छोड़ने से उपलब्ध होता है। एक और भी तप है, जो अहंकार को छोड़ने से उपलब्ध होता है। एक और भी बोध है, जो किसी बुद्ध के चरणों में बैठने से उपलब्ध होता है।
यह चरणों में बैठना ही आदर है। आदर का मतलब कुछ यूं नहीं होता कि तुम औपचारिक रूप से चरण छुओ। इस देश में तो चरण छूना एक औपचारिकता है--कोई किसी के चरण छू रहा है। जो देखो उसी के चरण छू रहा है। चरण छूने से जैसे कुछ हो जाएगा! चरण छूने से कुछ भी न होगा। भावपूर्वक अहंकार का विसर्जन। तब यह सूत्र तुम्हें गहरा मालूम पड़ेगा--
गुरुदेव परौ धर्मो गुरुदेव परा गतिः।
जिसके चरणों में तुमने अपने अहंकार को चढ़ा दिया, वही तुम्हारा गुरु है। गुरु शब्द भी अच्छा है। गुरु का अर्थ होता हैः जिससे अंधकार मिट जाए। गुरु शब्द का अर्थ होता हैः जो अहंकार को मिटा दे; जो ज्योति की भांति है। और निश्चित ही ज्योति ही गति है। क्योंकि छोटी-सी ज्योति भी तुम्हें मिल जाए तो तुम्हारी सूर्य की तरफ यात्रा शुरू हो गई। एक किरण पकड़ ली तो सूरज तक पहुंच जाएंगे; फिर कोई संदेह नहीं। एक नदी की धार में तुम उतर गए तो सागर तक पहुंच जाओगे। पहुंच ही जाओगे!
एकाक्षर प्रदातमम नाभिनन्दति।
अभागा है वह व्यक्ति जो अक्षर देने वाले को भी अभिनंदन न करता हो, अहंकार जिसके चरणों में न रखता हो, जिसके सामने झुकता न हो।
तस्य श्रुत तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुयत्।।
उसका सब कुछ ऐसे क्षीण हो जाता है जैसे कच्चे घड़े में भरा हुआ जल। बह जाएगा। जल ही नहीं बह जाएगा धीरे-धीरे, घड़ा भी बह जाएगा। जल भी जाएगा, घड़ा भी जाएगा। और जिसने अहंकार को चढ़ाया, वह पक्का घड़ा है। वह अग्नि से गुजरा, पका। अब उसमें जो भी भरा जाएगा, भरा रहेगा। पक्का घड़ा हो जाए व्यक्ति तो अमृत से भर सकता है। लेकिन उस पकान के लिए, उस परम अवसर की तलाश में तुम्हें कुछ गंवाना पड़ेगा। हालांकि जब गंवाओगे तब लगेगा गंवा रहे हो, गंवाने के बाद तो तुम हैरान होओगे--तुमने कुछ भी गंवाया नहीं, कमाया ही कमाया।
इस दुनिया का गणित तुम ठीक से समझ लो। इस दुनिया में कमाओगे तो कमाओगे, गंवाओगे तो गंवाओगे। लेकिन इसके पार जो दुनिया है, वहां अगर कमाओगे तो गंवाओगे, अगर गंवाओगे तो कमाओगे।

जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो अंतिम खड़े हैं, क्योंकि मेरे प्रभु का राज्य उन्हीं का है। धन्य हैं वे जो अंतिम खड़े हैं। वे, जिन्होंने अपने अहंकार को छोड़ दिया। जो इतने विनम्र हो गए हैं कि अब अंतिम खड़े हो सकते हैं। मेरे प्रभु का राज्य उन्हीं का है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, प्रथमः प्रश्नम संस्कृतस्य सूत्रानाम श्रवणोपरांतम्।
प्रवचन मा त्रिसहस्र जन मध्ये त्वम जाग्रति केवलम्।।
अर्थात हे भगवान, पहले प्रश्न में ही संस्कृत के सूत्रों को सुन कर प्रवचन में बैठे तीन हजार जनों में केवल आप ही जाग्रत रह जाते हैं।
चिदानंदम्, पूर्णानंदम्, सहजानंदम्, शरणानंदम अपि।
प्रति दिनम सूत्रः-मूत्रः पूछंते, कछु और धंधा न करंते।।
अर्थात ये स्वामी चिदानंद, पूर्णानंद, सहजानंद, शरणानंद भी रोज-रोज सूत्र-मूत्र आदि ही पूछते हैं, कुछ और काम नहीं करते।
कछु और न करंते, बस सूत्तर-मूत्तर ही पूछंते
कबहुं आइसक्रीम या पानी-पुरी का नाम तक न लेवंते,
खुद भूखों मरंते, अरु हमहुं मारंते
ओशो, जठराग्नि उपनिषद के इन श्लोकों के अनुसार कृपापूर्वक समझाइए कि क्या इन लोगों को हत्या का पाप न लगंते?

अमृत प्रिया! बाई, तू सत्य कहंती। बात सौ टका सत्य कहंती। ये चिदानंद, पूर्णानंद, सहजानंद, शरणानंद बड़े खतरनाक आदमी हैं। ये पता नहीं कहां से आ गए हैं! इन दुष्टों को कछु और न सूझंते। न कछु समझंते। बस पूछंते ही पूछंते। जरा भी न सोचंते।
मैं तो बहुत कछु समझायो, अब तू ही इन्हें जगावंते तो जगावंते। बाई, इन्हें समझा कि भाई, कायकूं मारा-मारी करंते? कायकूं न शांति धरंते? अमृत प्रिया! खोज, मिल जाएंगे, यहीं हैं। सब यहीं मौजूद हैं।
और तू कहती है कि "पहले प्रश्न में ही संस्कृत के सूत्रों को सुन कर प्रवचन में बैठे तीन हजार जनों में केवल आप ही जाग्रत रह जाते हैं।"
यह तो सच है। मगर प्रश्न कोई भी हो, आंखें खुली हों तो भी तुम सोए हो, आंखें बंद हों तो भी तुम सोए हो। तुम्हारा सोना बहुत गहरा है। तुम्हारा जागना बहुत ऊपरी है। और फिर मेरा काम ही जगाना है। और जगाने के पहले अच्छा है कि तुम्हें ठीक से सुला दिया जाए। इसलिए पहले मैं ये चिदानंद, पूर्णानंद, स्वरूपानंद, निजानंद, सहजानंद, इनका सूत्र ले लेता हूं, ताकि तुम ठीक से सो जाओ। आखिर जागने के लिए पहले ठीक से विश्राम आवश्यक है न! प्रोफेसर मेडिकल के छात्रों से पूछ रहे थे कि अच्छा अब बताओ कि ऐसे मरीज का आप कैसे इलाज करेंगे जो आपसे कहे कि मैं बीमार हूं पर जिसे कोई बीमारी न हो?
एक छात्र बोलाः "महाशय, यह भी कोई समस्या है! पहले तो मैं उसे दवा देकर बीमार करूंगा, फिर उस बीमारी की दवा करूंगा।"
प्रोफेसर ने उसे शाबाशी देते हुए कहाः "तुम बनोगे आदर्श डाक्टर। तुम किसी नई जगह जाकर अपना दवाखाना क्यों नहीं खोल देते? बेकार में अपना समय यहां पढ़ाई-लिखाई में क्यों खराब कर रहे हो?"
यही होनहार छात्र उसी दिन मेडिकल कालेज छोड़ कर चला गया और हकीम बीरूमल बन गया। होनहार बिरवान के होत चीकने पात।
पहले तो सुलाना जरूरी है। पहले तो दवा देनी पड़ती है ताकि आदमी बीमार हो। बीमार हो जाए फिर ठीक करना तो आसान है।
चंदूलाल ने ट्रेन में सफर कर रहे अपने सहयात्री से पूछाः "सिगरेट होगा क्या आपके पास?" सहयात्री बोलाः "यह लीजिए पूरा पैकेट!"
चंदूलाल बोलेः "शुक्रिया! जरा माचिस और देंगे क्या?"
सहयात्री बोलाः "यह लाइटर लीजिए और इसे आप अपने पास ही रख सकते हैं।" चंदूलाल आश्चर्य भरे स्वर में बोलेः "जनाब, यह दरियादिली! लगता है आप कोई जागीरदार हैं या कोई अरबपति व्यापारी!"

सहयात्री बोलाः "महोदय, न तो मैं कोई जागीरदार हूं और न कोई अरबपति व्यापारी हूं, मैं तो फेफड़ों के कैंसर का डाक्टर हूं--हकीम बीरूमल।"
पहले बीमारी पैदा करनी पड़ती है, अमृत प्रिया, फिर जगाना आसान पड़ता है।
और ये सब मेरे काम में ही लगे हैं--चिदानंद, पूर्णानंद, सहजानंद, शरणानंद। ये ऐसे-ऐसे सूत्र ले आते हैं कि तुम जी भर कर सो लो! कछु और न करंते। बड़े ज्ञानी भवंते। ज्ञानी कछु और कैसे करंते! बस सूत्तर-मूत्तर ही पूछंते। कबहुं आइसक्रीम या पानी-पूरी का नाम न लेवंते। बाई, ये चौपाटी पर ही रहवंते। ये पानी-पूरी से बहुत छकंते। ये ज्ञानी हैं! ये ऐसी छोटी-मोटी बातें नहीं मानंते। उपवास करंते और करवावंते। यह इनका सिद्धांत सदा से है, खुद भी मरंते, औरों को भी मारंते।
तो तू ठीक कहती है कि खुद भूखों मरंते अरु हमहुं मारंते। मगर इनकी बातों में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। इन्हें मरने दो भूखा! इनको सूत्तर-मूत्तर पूछने दो। तुम अपने को सम्हाल कर रखो, इनकी बातों में न आना--ये खुद भी नहीं आते।
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
आठवां प्रवचन

सवाल अहिंसा का नहीं, कोमलता का

पहला प्रश्नः ओशो, आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः। सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभै सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।।
आहार की शुद्धि होने पर सत्व की शुद्धि होती है, सत्व की शुद्धि होने
पर ध्रुव स्मृति की प्राप्ति होती है। और स्मृति की प्राप्ति से समस्त ग्रंथियां खुल जाती हैं।
ओशो, छांदोग्य उपनिषद के इस सूत्र की व्याख्या करने की अनुकंपा करें।

सत्यानंद, आहार की शुद्धि होने पर सत्व की शुद्धि होती है। आहार का अर्थ हैः जो भी बाहर से भीतर लिया जाए। जो भीतर है, वह सत्व। जो स्वरूप है, वह सत्व। और जो उस पर आच्छादित होता है, वह आहार। इसलिए आहार से भोजन मात्र न समझना। भोजन तो आहार का एक छोटा-सा अंग है--और वह बहुत महत्वपूर्ण भी नहीं, बहुत गौण अंग है।
जो भी हम बाहर से भीतर लेते हैं--कान से ध्वनि, शब्द, आंख से रूप, नाक से गंध, हाथ से स्पर्श--हमारी पांचों इंद्रियां पांच द्वार हैं, जिनसे हम बाहर के जगत को भीतर आमंत्रित करते हैं। प्रत्येक इंद्रिय का आहार है। अस्सी प्रतिशत आहार तो हम आंख से लेते हैं, बीस प्रतिशत शेष चार इंद्रियों से। इसमें जो हम जिह्वा से लेते हैं--भोजन, स्वाद--वह तो अति गौण है। मगर नासमझों के कारण गौण प्रमुख हो गया है। कुछ पागल अपना पूरा जीवन इसी चिंता में व्यतीत करते हैं--क्या खाएं, क्या न खाएं; क्या पीएं, क्या न पीएं; कितनी देर रखा हुआ दूध पी सकते हैं या नहीं; कितनी देर का घी ले सकते हैं या नहीं।
कल मुझे पत्र मिला है, ऊंझा फार्मेसी के मालिक का। जैन हैं वे। और दो जैन मुनियों ने उन्हें कहा कि तुम कुछ ऐसी औषधियां तैयार करते हो जिनमें थोड़े न थोड़े अंश में अल्कोहल होती है और यह तो जैन शास्त्रों के बहुत विपरीत बात है। तुम शराब ही बेच रहे हो। पांच प्रतिशत ही सही, मगर है तो शराब। तो बंद करो इस तरह की औषधियों का निर्माण।
ऊंझा फार्मेसी के मालिक चिंता में पड़ गए होंगे कि अब क्या करना। अगर
उन औषधियों का उत्पादन बंद कर दें तो सारा धंधा जाए। और मुनि जो कहते हैं सो बात भी सच है, शास्त्र की है, जंचती है। मुझे कभी उन्होंने पत्र लिखा न था। ऐसे समय में उन्हें मेरी याद आई कि अगर कोई बचा सकता है... । तो मुझे लिखा है, अब आप जैसा आदेश करें। क्या मैं इन औषधियों को बंद कर दूं क्योंकि इनमें पांच प्रतिशत या तीन प्रतिशत शराब होती है? या इनका उत्पादन जारी रखूं? आप जैसा कहें।
उन्होंने भी ठीक आदमी से पूछा! भरोसे से पूछा है कि मैं तो कहूंगा नहीं कि बंद करो। क्योंकि शराब पांच प्रतिशत क्या सौ प्रतिशत भी शुद्ध शाकाहार है। इसमें इतनी चिंता की क्या बात है? और औषधि में जा रही है, लोगों की चिकित्सा के काम आ रही है, यह तो सेवा ही हो गई। तुम्हारे लिए धंधा हुआ, पर साथ-साथ सेवा भी हो गई। मगर जैन मुनियों की न पूछो। उनकी चिंता बस यही। उनका मन ही यहां अटका हुआ है।
ऐसे-ऐसे पागल हैं जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है।
मैं एक महात्मा के साथ यात्रा कर रहा था। हिंदू हैं। सिर्फ गऊ का दूध
ही पीते हैं। और सब चीजों को अशुद्ध मानते हैं; दुग्ध-आहार ही केवल शुद्ध है। मैंने उनसे पूछा कि तुम यह भी तो सोचो कि गऊ तो घास खाती है, और भी न मालूम क्या-क्या खाती है, और उसी से यह दूध बनता है। तो अंततः तो यह घास-पात से ही बन रहा है। दूध शुद्ध हो गया, और घास-पात? मैंने कहा, अगर तुम समझदार हो तो गऊ को कष्ट क्यों देना, घास-पात खाओ! सीधा दूध पैदा करो। इतना लंबा रास्ता क्यों लेना? और गऊ को कष्ट दे रहे हो, उससे काम ले रहे हो और उसको गऊमाता भी कहते हो।

जब उनके साथ यात्रा की तब तो मैं और भी मुश्किल में पड़ा। क्योंकि वे केवल सफेद गऊ का ही दूध पीएं! मैंने उनसे पूछा, भलेमानस, कोई काली गाय का दूध क्या काला हो जाता है? दूध तो सफेद ही होगा। तुम सफेद दूध पीओ, यह समझ में आता है, मगर काली और सफेद गाय का क्या हिसाब रखना?
वे कहने लगे, रंग का बड़ा महत्व है। सफेद रंग--दैवीय! और काला रंग-- आसुरी!
मैंने कहा, होगा गऊ का काला रंग आसुरी, मगर तुमसे कह कौन रहा है कि तुम काला रंग पीओ? दूध में तो रंग आता नहीं, चमड़ी पर रंग है, चमड़ी से तुम्हें क्या लेना-देना।
फिर तो जब मैंने पूरी जानकारी की कि उनका हिसाब-किताब तो बहुत जालसाजी का था। हिसाब-किताब यूं था कि कोई स्त्री नहाए और गीले वस्त्र पहने ही गऊ का दूध लगाए, तब वे दूध पीते थे। शुद्ध! सर्दी के दिन, ठिठुरती स्त्रियां, गीले वस्त्र पहने हुए उनके लिए दूध लगाएं। मैंने कहा, तुम नरक के भागी होओगे। पी लो दूध तुम सोच कर कि शुद्ध है, मगर तुम यह जो करवा रहे हो कार्य, यह तो सीधा सताना है।
लेकिन करीब-करीब भारत का सारा धर्म आहार पर ठहर गया है। बस भोजन ही हमारी चिंतना का कारण बन गया है। हमारी चिंतना, हमारी साधना, हमारी सत्व-शुद्धि, सब भोजन पर अटक गई है। और इस सूत्र के कारण ही यह उपद्रव हुआ है। सूत्र नासमझों के हाथ में पड़ जाएं तो यही परिणाम होने वाला है।
मैंने सुना है कि अहमदाबाद में डोंगरे महाराज का भागवत-सप्ताह चल रहा था। संयोजक के यहां डोंगरे महाराज अन्य पंडित-पुरोहितों के साथ भोजन कर रहे थे। एक कटोरी में बैंगन की सब्जी परोसी गई, तो डोंगरे महाराज ने उस कटोरी को उठा कर भोजन की थाली में से अलग कर दिया। पास ही बैठे पंडित पोपटलाल ने पूछा, क्यों महाराज जी, बैंगन की सब्जी आपने भोजन की थाली से निकाल कर अलग क्यों रख दी?
डोंगरे महाराज ने धीर-गंभीर मुद्रा में उत्तर दिया, कमाल है, पंडित जी, आपको इतना भी पता नहीं है कि सावन में बैंगन खाने से अगले जन्म में मनुष्य मूर्खों जैसी बातें करता है!
पंडित पोपटलाल ने डोंगरे महाराज को थोड़ी देर गौर से घूर कर देखा और कहा, महाराज, यह बात आपको पिछले जन्म में पता नहीं थी?
पिछले जन्म में खाए बैंगन, तभी ऐसी बातें सूझ रही हैं! गरीब बैंगन, सावन का प्यारा महीना, क्या उपद्रव मचाया हुआ है! लेकिन अच्छे से अच्छे, सुंदर से सुंदर स्वर्ण-सूत्र भी बुद्धुओं के हाथ में पड़ जाएं तो उनकी दुर्गति हो जाती है। सोने को छू दें, मिट्टी हो जाए।
चिलम फूंकते हुए उस्ताद ने शागिर्द से कहा, जब भी किसी से बात करो, निहायत साफ-सुथरी एवं विद्वतापूर्ण भाषा में ही, ताकि उसे आभास हो जाए कि तुम किसी अच्छे उस्ताद के शागिर्द हो।
संयोग से एक चिंगारी चिलम से निकल कर उस्ताद के साफे पर पड़ गई। शागिर्द मन ही मन पांच मिनट तक शब्दों का संयोजन करते हुए बोला, हुजूर, फैजगंजूर, मौलाना ओ मुख्तदाना, किब्लाओं कवाम, हुजूर के दस्तारे अजमत असार पर अर्थात साफे पर, एक अखगेर नाहंजार शररबार आतिशकदे चिलम से परवाज करके शोला अफगन है। अर्थात एक चिंगारी आपके साफे पर बैठी हुई है। लेकिन तब तक साफे के साथ-साथ उस्ताद की चांद भी लौ देने लगी थी।
यह सूत्र तो प्यारा हैः आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः।
लेकिन आहार का बड़ा व्यापक अर्थ है। साफ है आहार का अर्थ, जिसे बाहर से भीतर लिया जाए--आहार। निश्चित ही, तुम जो बाहर से भीतर ले जाओगे, वह तुम्हारे स्वरूप पर आच्छादित होगा। भीतर जो है वह तुम्हारा स्वरूप है। धूल ले जाओगे तो धूल आच्छादित हो जाएगी। स्वर्ण ले जाओगे तो स्वर्ण आच्छादित हो जाएगा। जो भी तुम बाहर से भीतर ले जाओगे वही तुम्हारे चित्त के दर्पण पर जमेगा और उससे ही तुम्हारा जीवन निर्धारित होगा।
कैसे इसकी शुद्धि हो? आहार तो करना ही होगा। आंखें देखेंगी ही; कम देखें ज्यादा देखें, लेकिन देखेंगी ही। तो वही देखना जो देखने योग्य है, सुंदर है, प्रीतिकर है, आल्हादित करता है।

लेकिन लोग गलत चीजें देखते हैं। अगर रास्ते पर दो व्यक्ति कुश्तम-कुश्ती कर रहे हों, दंगा-फसाद कर रहे हों, वाह गुरु जी की फतह बोल रहे हों, तो देखो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। मुफ्त तमाशा कौन न देखे! सर्कस हो रहा है। लाख काम छोड़ कर लोग वहीं खड़े हो जाते हैं। पहले यह मजा देख लें, फिर काम कर लेंगे। कोई यह नहीं सोचता कि जब तुम दो आदमियों को लड़ते हुए देखोगे तो तुम हिंसा का आहार कर रहे हो। तुम अपने भीतर गाली-गलौज ले जा रहे हो। वे दोनों आदमी गालियां बक रहे हैं, अभद्र व्यवहार कर रहे हैं, अशोभन शब्द बोल रहे हैं।
और जब भी दो पुरुष लड़ते हैं तो हैरानी की बात है, लड़ते पुरुष हैं मगर गालियां स्त्रियों को देते हैं। वह उसकी मां को ठीक कर रहा है, वह उसकी बहन को ठीक कर रहा है, वह उसकी बेटी को ठीक कर रहा है। यह भी थोड़ी सोचने जैसी बात है कि यह समाज बातें तो करता है स्त्री-समादर की, मगर यह समादर है! बातें तो यूं की जाती हैं कि जहां-जहां नारी की पूजा होती है वहां-वहां देवता रमण करते हैं। और स्त्री की पूजा के नाम पर हो क्या रहा है? सदियों से क्या हो रहा है? सिवाय अपमान और अनादर के कुछ भी नहीं।
अगर दो आदमी लड़ रहे हैं तो एक-दूसरे से निपटो, इसमें स्त्रियों को बीच में लाने की क्या जरूरत है? इसमें किसी की मां ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? किसी की पत्नी ने, किसी की बेटी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? लेकिन गाली तो स्त्रियों को ही दी जाएगी, लड़े कोई। अपमान तो स्त्री का ही होगा, लड़े कोई। और तुम खड़े होकर यूं पीते हो, जैसे अमृत मिल गया हो!
जहां झगड़ा हो रहा हो वहां क्या तुम सोचते हो कोई आदमी झपकी ले ले, नींद में चला जाए? कभी नहीं। धर्म-सभा में लोग नींद में जाते हैं। शास्त्र सुनते हैं तो नींद आती है। माला फेरते हैं तो झपकी खाते हैं। लेकिन दो आदमी गालियां दे रहे हों, तो सोए हुओं की तो बात छोड़ दो, मुर्दों को भी अगर पता चल जाए तो उठ कर खड़े हो जाएं! कि जरा देख लें फिर सो जाएंगे कब्र में, ऐसी जल्दी क्या है? यह मजा तो और देख लें जाते-जाते!
लेकिन तुम आहार कर रहे हो और वे गालियां तुम्हारे दर्पण पर आच्छादित
हो रही हैं।
तुम सुनते क्या हो? लोग फिल्मी गाने सुन रहे हैं, व्यर्थ की बातें सुन रहे हैं। एक-दूसरे की निंदा सुन रहे हैं--झूठी। और कोई संदेह नहीं उठाता। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिससे तुम किसी की निंदा करो और वह संदेह उठाए। हां, प्रशंसा करो तो हर एक संदेह उठाएगा। कहो किसी से कि फलां व्यक्ति बड़ा साधु-चरित्र। और दूसरा आदमी तत्क्षण बोलेगा, छोड़ो भी, किन बातों में पड़े हो! अरे, यह कलियुग है! हो गए साधु सतयुग में, अब नहीं होते! सब पाखंडी हैं! सब धोखेबाज हैं। सब लूट-खसोट में लगे हैं। अरे, हर ढोल में पोल है। हजार बातें कहेगा वह आदमी। तुमने सिर्फ इतना ही कहने की भूल की थी कि फलां आदमी साधु है। एक से एक बातें वह निकालेगा, बात में से बातें निकालता जाएगा।
और अगर तुम किसी आदमी की निंदा करो तो कोई इनकार न करेगा। यूं पी जाएगा जैसे प्यासा आदमी धूप से थका-मांदा ठंडा जल पी जाए, यूं पी जाएगा। इनकार ही न करेगा। कभी न कहेगा कि भाई, ऐसी निंदा पर मुझे भरोसा नहीं आता, वह आदमी इतना बुरा नहीं हो सकता। किसी की प्रशंसा करो, और तुम तत्क्षण पाओगे कि कोई तुम्हारी बात को मानने को राजी नहीं है। लोग प्रमाण मांगेंगे। और किसी की निंदा करो, और तत्क्षण लोग अंगीकार करने को राजी हैंः न प्रमाण कोई मांगता, न इनकार कोई करता।
ये हमारे आहार के ढंग हैं। अशुद्ध को तो हम आहार कर लेते हैं और शुद्ध
को हम इनकार करते हैं। सदियों-सदियों तक संदेह जारी रहते हैं।
आज भी लोगों को भरोसा नहीं है कि महावीर या बुद्ध जैसे लोग सच में हुए। इतिहासज्ञ खोज में लगे रहते हैं, सिद्ध करने में लगे रहते हैं कि ऐसे आदमी हो कैसे सकते हैं? कल्पनाएं हैं, पुराणकथाएं हैं, किंवदंतियां हैं। लेकिन कोई शक नहीं करता सिकंदर पर, कोई शक नहीं करता नादिरशाह पर, चंगेजखान पर, तैमूरलंग पर। हत्यारों पर कोई शक नहीं। जीसस पर शक है, जुदास पर कोई शक नहीं। राम पर तुम्हें शायद शक हो, लेकिन रावण पर कोई शक नहीं। यह तो रावण को मानने के लिए तुम्हें राम को मानना पड़ता है, मानते तो तुम रावण

को ही हो। लेकिन रावण को अकेला कैसे मानें? बिना राम की पृष्ठभूमि के रावण को मानना मुश्किल होगा। इसलिए निमित्त मात्र राम को भी स्वीकार कर लेते हो।
अच्छे पर हमें संदेह है। फूलों पर हमें भरोसा नहीं, कांटों पर हमारी श्रद्धा है। नकार हमारी जीवन-दृष्टि है, विधेय नहीं। हम ऐसे ही हैं, जिनको नरक पर कभी भी कोई संदेह नहीं उठता। मैंने आज तक ऐसी किताब नहीं देखी जिसने नरक पर संदेह उठाया हो कि नरक नहीं है। लेकिन स्वर्ग पर संदेह उठाने वाली बहुत किताबें हैं। शैतान के खिलाफ लिखी मैंने एक किताब नहीं देखी, ईश्वर के खिलाफ लिखी हजारों किताबें देखी हैं। यह कैसा आदमी है! हम क्या कर रहे हैं?
और ध्यान रहे, अगर कांटे चुनोगे तो कांटे ही तुम पर इकट्ठे हो जाएंगे। फिर चुभेंगे भी। इतने चुभेंगे, इतनी पीड़ा देंगे, इतने घाव से भर देंगे, इतनी मवाद फैल जाएगी, इतने नासूर हो जाएंगे कि फिर फूल मिल भी जाएं तो भरोसा न आएगा। फूलों पर भरोसा करो। फूलों को भीतर ले जाओ। फूलों से अपने प्राणों को आच्छादित करो--इतना कि अगर कांटे मिल भी जाएं तो भी फूलों से आच्छादित आत्मा उनसे अप्रभावित रहे।
लेकिन लोग अजीब हैं! मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठा हुआ था। उसका बेटा फजलू आया, और मुल्ला ने आव देखा न ताव और लगा उसकी पिटाई करने। चार-छह झपाटे जोर से लगा दिए। वह बेचारा बच्चा रोने लगा! मैंने पूछा कि मैं देख रहा हूं, उसने कोई कसूर किया नहीं, एक शब्द बोला नहीं, तुम उसे मार क्यों रहे हो? मुल्ला नसरुद्दीन कहने लगा, इसके कसूर के लिए मार ही कौन रहा है! अरे, दो दिन बाद इसका परीक्षा-फल निकलने वाला है और मैं आज ही बाहर जा रहा हूं।
अभी से इंतजाम किए दे रहा है वह। अजीब लोग हैं! मगर ऐसे ही लोगों से यह दुनिया भरी है। तुम भी अपने भीतर अगर खोजोगे तो ऐसे ही आदमी को पाओगे। छिपा हुआ। क्योंकि सीधा-सीधा देख लोगे तब तो फिर उसका जीना मुश्किल हो जाएगा।
आहार-शुद्धि का अर्थ हैः अपने भीतर वही ले जाना, जो प्रीतिकर हो, स्वादिष्ट हो, सुमधुर हो, सुंदर हो, सत्य हो। ताकि तुम्हारे भीतर के स्वरूप परशृंगार आए, जवानी आए; ताकि तुम्हारे भीतर स्वरूप निखरे, प्रकट हो; उस पर उभार आए, गर्द-गुबार न जम जाए।
आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः।
और उसी आहार में एक छोटा-सा हिस्सा भोजन है। जरूर उसका भी विचार करना, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। इतना ही काफी विचार है कि अपने भोजन के लिए किसी को कष्ट मत देना, दुख मत देना। इतना ही विचार काफी है। जब भोजन बिना किसी को दुख दिए हो सकता हो तो पशुओं को काटना और मारना अनुचित है। जब फल और सब्जियां और अनाज तुम्हारे लिए परिपूर्ण पौष्टिक हो जाते हों, तो क्या जरूरत है कि पशुओं को मारो? क्या जरूरत है इतना दुख देने की?
और अगर इतना दुख तुम दोगे तो स्वभावतः तुम कठोर होते चले जाओगे। मांसाहारी कठोर होगा ही, नहीं तो मांसाहार कैसे करेगा? और जब कठोर होगा तो मनुष्यों के साथ भी कठोर होगा। अब कठोरता कोई नियम थोड़े ही मानती है कि इसके साथ कठोर होंगे, उसके साथ कठोर नहीं होंगे। और जब कठोर होगा तो अपनों के साथ भी कठोर होगा, परायों के साथ ही थोड़े कठोर होगा। और जब कठोर होगा तो अपनों के ही साथ नहीं, अपने साथ भी कठोर होगा। कठोरता तो एक भीतर बैठ गई चट्टान की तरह है। सबसे पहले तो खुद के प्रति कठोर हो जाएगा, दुष्ट हो जाएगा।
इसी मुल्ला नसरुद्दीन को मैंने एक दिन देखा साइकिल पर बैठा चला जा रहा है, फजलू को आगे बिठाए। बीच-बीच में उसको चपतें लगा रहा है। मैंने रोका। मैंने कहा कि नसरुद्दीन, खैर उस दिन तुम बोले थे कि इसका दो दिन बाद परीक्षा-फल निकलने वाला है, अब कौन-सी मुसीबत आ गई है? और तुम रह-रह कर इसे मार रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा, क्या करूं, साइकिल में घंटी ही नहीं है। बेटे से घंटी का काम ले रहे हैं। सो बेटा रो रहा है, वे उसको चपतें लगा रहे हैं। जैसे ही उनको भीड़ हटानी होती है, चपत लगा देते हैं एक, बेटा रोने लगता है।

तुम कठोर होओगे ही। तुम क्या भोजन कर रहे हो उसमें इतना ही विचार पर्याप्त है कि हिंसा न हो, अकारण हिंसा न हो। कम से कम हिंसा हो, न्यूनतम हिंसा हो। जितना हिंसा से बचा जा सके, शुभ है, ताकि तुम्हारी कोमलता नष्ट न हो जाए। सवाल अहिंसा का नहीं है, सवाल तुम्हारी कोमलता का है।
इसको भी ख्याल रखना। नहीं तो कुछ बुद्धू इसी फिक्र में लगे रहते हैं
कि कहीं चींटी न दब जाए, कहीं मच्छर न मर जाए। मगर उनको असली बात भूल गई, दृष्टि गलत चीज पर टिक गई। असली बात इतनी है कि तुम्हारी कोमलता न मर जाए। क्योंकि तुम्हारी कोमलता के द्वार से ही सत्य का पदार्पण होगा। तुम जितने कोमल होओगे उतनी ही संभावना है कि तुम्हारे भीतर आनंद का गीत उठे, उत्सव जगे, परमात्मा तुम्हारे भीतर बांसुरी बजाए। उसके लिए तुम्हारी कोमलता जरूरी है। यह कोई मच्छर-मक्खी मारने का सवाल नहीं है, सवाल तुम्हारी कोमलता का है। और तुम अगर मच्छर, मक्खी, चींटियां मारने से बच भी गए, लेकिन इस बचने में ही कठोर हो गए, तो सब व्यर्थ हो गया, किया-कराया सब व्यर्थ हो गया। क्योंकि असली बात थी कि भीतर की कोमलता... !
और ऐसा हुआ। जैनों में आचार्य तुलसी का पंथ है--तेरापंथ। महावीर ने तो अहिंसा की बात कही थी कि तुम्हारी कोमलता प्रगाढ़ हो। लेकिन महावीर की ही परंपरा में पैदा हुआ तेरापंथ कहता है, अगर तुम रास्ते से जा रहे हो और कोई प्यासा मर रहा हो तो उसे पानी मत पिलाना। क्योंकि तुमने अगर उसे पानी पिलाया तो तुम उसके कर्म में बाधा डाल रहे हो। कर्म-फल भोग रहा है वह। पिछले जन्मों में, सावन के महीने में बैंगन खाई होगी! वह अपना कर्म-फल भोग रहा है; न खाता बैंगन, न इस तरह के फल भोगता! वह अपना कर्म-फल भोग रहा है और तुम बाधा डाल रहे हो--पानी पिलाकर! तो तुम उसके कर्म-फल को आगे सरका रहे हो। फिर कल भोगेगा, फिर परसों भोगेगा। तुम उसके जीवन में उलझन खड़ी कर रहे हो। तुम कोई अच्छा काम नहीं कर रहे हो। यह मत सोचना कि तुम सेवा कर रहे हो। यह तो भूल कर मत सोचना। तेरापंथ में सेवा का निषेध है। क्योंकि सेवा का अर्थ है, हिंसा। तुमने बाधा डाल दी, यह हिंसा हो गई।
और फिर और भी झंझटें हैं। हिसाब-किताब लगाने वाले लोग कैसे-कैसे हिसाब- किताब लगा लिए! कहां से कहां निकल गए! कितनी दूर निकल गए! अगर तुमने इस आदमी को पानी पिला दिया और यह बच गया, अभी मर रहा था, और बच कर अगर समझो कि कल इसने चोरी की--कल का क्या भरोसा? चोरी करे, किसी की स्त्री ले भागे, जुआ खेले, किसी की हत्या कर दे--फिर उस सब पाप के भागीदार तुम भी होओगे। क्योंकि न तुम इसे बचाते, न किसी की स्त्री यह भगाता। न तुम इसे बचाते, न यह चोरी करता। न तुम इसे बचाते, न यह हत्या करता। तुम्हारे बचाने ने ही तो सारी चीज के लिए शुरुआत करवा दी, बीज बो दिए। तुम ही बीज बोने वाले हो। फसल में तुमको भी हिस्सा बांटना पड़ेगा।
इसलिए सावधान! तेरापंथ कहता है कि चुपचाप अपने रास्ते पर चलते चले जाना। वह लाख चिल्लाएः पानी-पानी; तुम सुनना ही मत। ऐसी झंझट में पड़ना मत। उसको भी कोई लाभ नहीं है तुम्हारे पानी पिलाने से--उसको प्यासा मरना ही पड़ेगा। जितना कर्म किया है बुरा उतना फल भोगना ही पड़ेगा। और तुम नाहक अपने जीवन को बिगाड़ लोगे आगे के लिए। पता नहीं अब यह क्या करे बच जाने के बाद, क्या न करे! इसलिए चुपचाप अपनी राह पर चले जाना।
कल्पना भी महावीर ने न की होगी कभी कि मेरी अहिंसा की दृष्टि का ऐसा अर्थ भी हो सकता है! अर्थ नहीं कहेंगे इसे, अनर्थ कहेंगे। मगर उधार जिनके जीवन हैं, उधार जिनकी जीवन-दृष्टि है, उनसे अनर्थ ही हो सकता है।
चंदूलाल ढब्बू जी से कह रहे थेः "ढब्बू जी, कल जो तुम मुझसे छाता ले गए
थे वह वापस दे दो, भाई।"
ढब्बू जी ने कहाः "क्या तुम्हें वह अभी चाहिए, बिल्कुल अभी चाहिए? उसे
तो मेरा मित्र मुल्ला नसरुद्दीन ले गया है।"
चंदूलाल ने कहाः "छाता मुझे तो नहीं चाहिए ढब्बू जी, पर जिससे मैं लाया था, वह कह रहा है कि उसने जिससे छाता लिया था वह लेने के लिए उसके घर पर आकर खड़ा हुआ है।"
यूं उधारी चल रही है। महावीर कुछ कहते हैं, लेकिन उधार-उधार होते- होते, आचार्य तुलसी तक पहुंचते-पहुंचते कैसी दुर्गति हो जाती है! और यही आचार्य तुलसी जैसे लोग महावीर की परंपरा को बचाने वाले लोग हैं! यही, जो

वस्तुतः नष्ट करने वाले लोग हैं, बचाने वाले बन बैठे हैं। भक्षक रक्षक बने बैठे हैं।
आहार की जरूर विचारणा होनी चाहिए, क्योंकि तुम मनुष्य हो, तुम चुनाव
कर सकते हो--क्या खाना, क्या नहीं खाना; क्या पीना, क्या नहीं पीना। बस, इतना ही सूत्र ध्यान रहे कि किसी को अकारण कष्ट न हो। क्योंकि कष्ट दोगे तो कठोर हो जाओगे। कठोर हो जाओगे तो बंद हो जाओगे। बंद हो जाओगे तो परमात्मा को पाना असंभव है। फूल जैसी कोमलता चाहिए, ताकि परमात्मा तुम पर यूं उतरे जैसे शबनम की बूंदें सुबह फूल पर जम जाती हैं; जैसे ओस के मोती फूल की कोमल पंखुड़ियों पर चमकते हैं! ऐसा तुम पर, वह जो दिव्य अवतरण है, संभव हो सके! मगर फूल की पंखुड़ी चाहिए। फूल जैसे रहना!
और भोजन को ही सब मत समझ लेना। आहार बड़ी चीज है, बहुत बड़ी चीज है!
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहाः आंखों को नीची करके चलो। चार फीट देखो, बस इतना काफी है। चलने के लिए इतना काफी है। चार फीट आगे देख रहे हो, इतना बहुत है। लेकिन तुम तो सारे पोस्टर पढ़ रहे हो सड़क के किनारे लगे। उन्हीं पोस्टरों को रोज पढ़ रहे हो, क्योंकि उसी रास्ते से रोज निकलते हो। वही हमाम साबुन है। वही पहलवान छाप बीड़ी है। वही चारमीनार सिगरेट है।
कितनी बार नहीं पढ़ चुके हो! क्या सार है आंखें खराब करने से? लेकिन पढ़ोगे उसी को तुम!
अखबारों में लोग वही पढ़ रहे हैं, फिल्मों में लोग वही देख रहे हैं।
वही फिल्म तुम देख रहे हो जन्मों-जन्मों से, वही त्रिकोण--दो आदमी, एक औरत। फिर चाहे वे दो आदमी राम और रावण हों और औरत सीता हो; या कोई हों, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, वही कहानी है--दो आदमी, एक औरत। या दो औरतें, एक आदमी। त्रिकोण होना चाहिए, कहानी बनने लगी। और कहानी में होगा क्या? तुम्हें भलीभांति पता है क्या होना है। तुम खुद ही लिख सकते हो कहानी। इतनी फिल्में देख चुके हो। दो फिल्में देखो, तीसरी कहानी लिख दो। पांच उपन्यास पढ़ो, छठवां लिख डालो। यूं ही तो किताबें लिखी जाती हैं, यूं ही फिल्में बनती हैं।
वही गीत तुम सुन चुके हो बहुत बार--वही लारे-लप्पा! कब तक लारे-लप्पा करते रहोगे? जरा कानों को कुछ सम्हालो। आंखों को जरा संयम दो। क्या बोलते हो, क्या सुनते हो, क्या गुनते हो--इसके पीछे विवेक तो होना ही चाहिए। महावीर ने कहाः विवेक से उठे, विवेक से बैठे, विवेक से चले, विवेक से देखे, विवेक से सुने, क्योंकि मनुष्य को पशुओं से अलग करने वाला तत्व विवेक है।
आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः।
और तुम जो भीतर ले जा रहे हो, अगर यह शुद्ध है तो तुम्हारे भीतर जो छिपा हुआ स्वरूप है, वह ढकेगा नहीं; उघड़ेगा, निखरेगा, ताजा होगा, नहाएगा-- सद्यःस्नात!
सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
और जिसने अपने भीतर के सत्व को शुद्धता में जान लिया है, उसकी स्मृति ध्रुव हो जाती है।
स्मृति शब्द को ख्याल रखना। स्मृति उस अर्थों में प्रयोग नहीं हो रही, जिस अर्थों में तुम करते हो--याददाश्त के अर्थों में नहीं, मेमोरी के अर्थों में नहीं। क्योंकि वैसी स्मृति तो कंप्यूटर में भी होती है, उसके लिए आदमी होना जरूरी नहीं है। कंप्यूटर तुमसे ज्यादा याददाश्त वाला होता है। और उसकी याददाश्त में कम भूलें होती हैं, तुमसे तो भूलें हो सकती हैं। अब तो मशीनें बन गई हैं जो सब याद रख लें। अब तो तुम्हें कुछ याद रखने की जरूरत नहीं है। जो काम मशीन कर देती है, उस काम में कोई गुणवत्ता नहीं है। फिर स्मृति से क्या अर्थ है? ध्रुवा स्मृतिः! उसे ऐसी स्मृति उपलब्ध
हो जाती है--अडिग, अचल, चंचलता से शून्य, थिर।
यह बड़ा अलग अर्थ है स्मृति का। बुद्ध ने इसके लिए उपयोग किया हैः सम्मासती। महावीर ने इसको कहा हैः सम्यक स्मृति। दोनों का एक ही अर्थ है; सम्मासती पाली है, सम्यक स्मृति संस्कृत। ठीक-ठीक बोध। स्मृति से याददाश्त का सवाल नहीं है, स्मरण का सवाल है--अपना स्मरण, आत्म-स्मरण। तुम

भूल गए हो कि तुम कौन हो। तुम्हें याद ही न रही कि तुम कौन हो, किसलिए हो, कहां से आए हो, कहां जा रहे हो! तुम्हें कुछ भी पता नहीं।
मैंने सुना है, एडीसन, अमरीका का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, या चाहो तो कहो कि दुनिया का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, क्योंकि उसने एक हजार आविष्कार किए। एक आदमी ने इतने आविष्कार कभी नहीं किए। मगर बहुत भुलक्कड़, अतिशय भुलक्कड़। एक बार खुद अपना नाम ही भूल गया।
औरों का नाम भूल जाना तो तुमने सुना होगा, अपना नाम भूल जाना बड़ी कठिन बात है, बड़ी मुश्किल बात है। लोग नींद में भी नहीं भूलते। तुम सब यहां सो जाओ... । जैसे मैं छांदोग्य उपनिषद पर बोलता ही रहूं, बोलता ही रहूं, बोलता ही रहूं, तो फिर तुम क्या करोगे? तुमको सोना ही पड़ेगा। आखिर बचने के लिए आदमी को कुछ तो ढाल चाहिए। छांदोग्य उपनिषद पर बोलते-बोलते तुम देखोगे यह तो खतरा हुआ जा रहा है। जल्दी से तुम अपनी ढाल सम्हाल लोगे और सो जाओगे।... तुम सब सो जाओ और मैं पुकार दूंः सत्यानंद! तो कोई नहीं सुनेगा, लेकिन सत्यानंद कहेगा कि भई, कौन नींद खराब करने आ गया! क्यों परेशान कर रहे हो! नींद में भी अपना नाम नहीं भूलता। गहरी नींद में भी, अतिशय गहरी नींद में, सुषुप्ति में भी अपना नाम याद रहता है। लेकिन एडीसन को एक बार अपना नाम भूल गया। पहले महायुद्ध में राशन शुरू हुआ अमरीका में, वह कतार में खड़ा था; और जब उसकी पुकार आई--थामस अल्वा एडीसन--तो वह इधर-उधर देखने लगा। जो आदमी पुकार रहा था, उसको भी पता था कि यही आदमी एडीसन है, क्योंकि इसके अखबारों में फोटो देखे थे, जाना-माना आदमी था, जग-जाहिर था। उसने फिर बुलायाः थामस अल्वा एडीसन! और एडीसन इधर-उधर देखने लगा। उसने कहा, मामला क्या है! और एडीसन के पीछे जो खड़ा था, उस आदमी ने भी कहा कि बात क्या है! वह आपको बुला रहा है, आप सुन नहीं रहे! एडीसन ने कहा, ठीक याद दिलाया। वही मैं सोच रहा था कि नाम कुछ पहचाना-सा मालूम पड़ता है। कहीं न कहीं सुना है। धन्यवाद! तुमने अच्छी याद दिला दी।
एक दिन सुबह-सुबह एडीसन बैठा था। उसकी पत्नी आई--उसने कह रखा था कि जब मैं सोच-विचार में होऊं तो मुझे कभी बाधा मत डालना--नाश्ता लेकर आई थी, तो नाश्ता उसने बगल में रख दिया और चुपचाप चली गई कि जब वह सोच-विचार पूरा कर लेंगे तो नाश्ता कर लेंगे।
तभी एक मित्र आ गया। उसने नाश्ता देखा रखा हुआ बगल में, एडीसन को विचार-मग्न देखा, उसने सोचा इनको विचार करने दो, तब तक मैं नाश्ता कर लूं। उसने नाश्ता कर लिया। खाली प्लेटें सरका कर एक तरफ रख दीं। तब तक एडीसन अपने सोच-विचार के जगत से वापस लौटे। खाली प्लेटें देखीं, मित्र को देखा, कहाः "भाई, जरा तुम देर से आए। मैं नाश्ता कर चुका। जरा ही पहले आ गए होते तो साथ-साथ नाश्ता कर लेते।"
मित्र ने कहाः "कोई चिंता न करें।" मित्र बहुत हैरान हुआ। उसे भरोसा
ही नहीं आया, कि हद हो गई, नाश्ता मैं कर गया हूं और यह आदमी खाली प्लेटें देख कर कह रहा है कि मैं नाश्ता कर चुका!
एक बार एडीसन ट्रेन में सफर कर रहा था। टिकट कलेक्टर आया, उसने टिकट पूछी। एडीसन ने इस खीसे में देखा, उस खीसे में देखा, सब खीसे टटोल डाले, सूटकेस खोल कर सब सामान फैला दिया, जब बिस्तर खोलने लगा तो टिकट कलेक्टर ने कहा कि आप चिंता न करें, मैं आपका विद्यार्थी रह चुका हूं और मैं आपको जानता हूं कि आप बिना टिकट नहीं चलेंगे, टिकट होगा, जरूर होगा। एडीसन ने कहा कि चुप, टिकट की कौन चिंता कर रहा है! अरे, सवाल यह है कि मुझे जाना कहां है? बिना टिकट के यह पता कैसे चलेगा? तू बताएगा! कौन बताएगा अब मुझे? अब मैं झंझट में पड़ा। तू भी खोज। मेरे बिस्तर में देख, मेरे सूटकेस में देख। विद्यार्थी रहा है, चल साथ दे! बिना टिकट के पता कैसे चलेगा कि मुझे जाना कहां है, मैं निकला कहां के लिए था?
हमारी हालत यूं ही है। तुम्हें भी पक्का पता नहीं है कि तुम कौन हो।
और जो नाम तुम सोचते हो तुम्हारा है, वह तो तुम्हारा है नहीं, वह तो दे दिया है। वह तो लेबिल लगा दिया औरों ने। वे कुछ और लगा देते। सत्यानंद न कह कर मैं इनको नित्यानंद नाम दे देता, फिर? यह नित्यानंद ही हो जाते। अखंडानंद हो जाते, मुक्तानंद हो जाते, कुछ भी... । इनके भाग्य में कुछ न कुछ होना बदा था! कोई न कोई नाम जरूरी है, मगर नाम तुम्हारा अस्तित्व तो नहीं है।

स्मृति का अर्थ है उसकी स्मृति, जो मैं हूं, जो मैं लेकर आया हूं इस जगत में, जो मेरे भीतर चैतन्य का स्रोत है। वह क्या है? कहां से मैं आ रहा हूं और किस दिशा में मेरी गति हो रही है? मैं क्या कर रहा हूं इस क्षण? उससे कोई संबंध है मेरे आने-जाने का या नहीं? या व्यर्थ की बातों में उलझ गया हूं? जाना कहीं और था, चल पड़ा हूं कहीं और! पहुंचना कहीं और है, दिशा पकड़ ली है कोई और!
यही तो दुख है हमारा। सारी पृथ्वी दुखी लोगों से भरी है। क्या है दुख? इतना ही दुख है कि हम वह कर रहे हैं जिसका हमारे स्वरूप से कोई तालमेल नहीं है। सुख का अर्थ होता हैः जीवन की ऐसी चर्या, जिससे हमारे स्वरूप का तालमेल हो। और दुख का अर्थ होता हैः ऐसी चर्या, जिससे हमारे स्वरूप का कोई तालमेल न हो। और आनंद का अर्थ होता हैः ऐसा जीवन, जो हमारे भीतर के छंद के साथ बिल्कुल एकरूप हो; तालमेल ही न हो, एक ही हो जाए। जिस क्षण हम इस जगत के धर्म को अपने भीतर के धर्म के साथ निमज्जित कर लेते हैं, इसमें डूब जाते हैं और इसे अपने में डुबा लेते हैं, जिस दिन बूंद सागर में डूब जाती है और सागर बूंद हो जाता है, उस दिन जीवन में आनंद; उस दिन जीवन में छंद। वही छांदोग्य उपनिषद का सार है। उस दिन जीवन में गीत, बांसुरी। उस दिन पायल बजती है, घूंघर बजते हैं। उस दिन ढोल पर थाप पड़ती है। उस दिन जीवन में पहली बार पता चलता है कि कितना बड़ा अहोभाग्य है--एक श्वास लेना भी!
सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
आत्म-स्मरण का नाम स्मृति है। इसी सम्मासती, सम्यक स्मृति को मध्य-युग के संतों ने--कबीर ने, नानक ने, दादू ने, रैदास ने, फरीद ने--सुरति कहा है। सुरति सम्मासती का ही रूप है लोकभाषा में--और भी प्यारा हो गया! सम्यक स्मृति थोड़ा कठिन, सुरति सीधा-साफ हो गया।
लेकिन सुरति के नाम से बड़ा धोखा चल रहा है। खास कर पंजाब में। क्योंकि पंजाब में नानक ने सुरति की दुंदुभी बजा दी, और नानक के पास जो आए वे भीग कर लौटे, अमृत से भीग कर लौटे। लेकिन सदा होना है यह। नानक ने लोगों को सुरति दी अर्थात स्मृति दी अपनी, उन्हें याद दिलाई खुद की; और अब पंजाब में क्या चल रहा है? सुरति-शब्द-योग! उसका उससे कोई नाता नहीं। शब्द-योग! वह केवल मंत्रोच्चार का ही दूसरा नाम है। बैठे-बैठे राम-राम, राम-राम, राम-राम कर रहे हैं तोते की तरह; या जो भी तुम्हें प्यारा शब्द हो वही--ओंकार का नाद करो, कि नमोकार मंत्र पढ़ो, कि जपुजी पढ़ो।
लेकिन शब्दों को दोहराने से, मंत्रों को दोहराने से केवल आत्म-सम्मोहन पैदा होता है, सुरति पैदा नहीं होती। वस्तुतः उलटी ही बात होती है, विस्मृति पैदा होती है, सुरति पैदा नहीं होती। अपना स्मरण क्या खाक आएगा शब्दों से! अपना स्मरण तो निःशब्द में आता है। सुरति-निःशब्द-योग कहो तो समझ में आए। सुरति-शब्द-योग! शब्द तो ढांक लेता है। शब्द ही तो उपद्रव है। शब्द ही तो हमारा मन है। सारे शब्दों से मुक्त होना है, ताकि निस्तब्धता छा जाए, ताकि मौन उतर आए, ताकि भीतर सन्नाटा हो। उसी सन्नाटे में अपनी स्मृति आएगी। जब कुछ भी न बचेगा याद करने को, तभी अपनी याद आएगी। जब तक कुछ और बचेगा, तब तक याद उसी में उलझी रहेगी।
आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः। सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभै सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।।
और जिसको अपनी सुरति आ गई, जिसको अपना स्मरण आ गया, उसकी सारी ग्रंथियां टूट जाती हैं। यह शब्द बड़ा प्यारा है। ये सूत्र छोटे-छोटे शब्दों पर खड़े हैं। सूत्र का अर्थ ही होता हैः बीज। इनमें विस्तार नहीं होता है। इनमें बात थोड़े में कही जाती है। सूत्र का अर्थ होता हैः टेलीग्राम।
और ध्यान रखना, टेलीग्राम का ज्यादा परिणाम होता है। तुम पूरा का पूरा शास्त्र लिख भेजो किसी को--कि जोग लिखा महा शुभस्थाने और सब जने राजी खुशी हैं, और आगे हाल यह है--और चलते जाओ तो भी उसका वह परिणाम नहीं होता। और इसलिए जो समझदार हैं, वे लंबी चिट्ठी लिखने के बाद क्या लिखते हैं--थोड़ा लिखा और ज्यादा समझना! अरे, चिट्ठी लिखी है और तार समझना! गजब कर दिया, तो तार ही भेज देते न! चिट्ठी लिखी और तार समझना! मगर लिखने में राज है। तार समझने का मतलब है कि जब तार आ जाता है तो ज्यादा अर्थ लाता है; शब्द कम होते

हैं, अर्थ ज्यादा होता है। चिट्ठी में शब्द ज्यादा होते हैं, अर्थ कम होता है। इसलिए कहते हैं कि चिट्ठी लिखी और तार समझना।
ये तार हैं। सूत्र का अर्थ होता हैः संक्षिप्त, बिल्कुल सार। जरा भी असार को नहीं रखा है, सब हटा दिया है। सिर्फ सार को ही बचाया है। इनमें एक-एक शब्द महत्वपूर्ण है।
"सर्वग्रंथीनां--सारी ग्रंथियां।"
ग्रंथि का अर्थ होता हैः गांठ। और हममें गांठें ही गांठें हैं। उन्हीं गांठों के कारण तो हम सब अष्टावक्र हो गए हैं, जगह-जगह से टेढ़े हो गए हैं। आदमी तो कहां मिलते हैं--ऊंट। चले जा रहे हैं ऊंट, कतारबद्ध ऊंट! जगह-जगह गांठें हैं--ऊंट की खूबी यही है। सब जगह से तिरछा है।
यहूदियों में कथा है कि जब भगवान सबको बना चुका तब उसने ऊंट बनाया, बचा-खुचा जो सामान था। मतलब कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा! ऊंट को उसने बनाने का इरादा नहीं रखा था। बना चुका हाथी, घोड़े, गधे-- सब बना चुका--आदमी, औरतें, पशु-पक्षी। बच रहा होगा सामान। हमेशा जब तुम मकान बनाते हो, तो कुछ सीमेंट बच गई, कुछ चूना बच गया, कुछ ईंट बच गईं, कोई लक्कड़-पत्थर बच गए, अब इन सबको मिला कर कुछ बना दिया। ऐसे ऊंट बना। इसलिए ऊंट दिखता भी है अजीब। क्या उनकी चाल, क्या उनके पैर, क्या उनकी देह की संरचना!
यहूदियों में दूसरी कहानी है कि ऊंट को भगवान ने आखिरी समय में बनाया,
जब वह बिल्कुल थक चुका था और झपकी खाने लगा था। ऐसा थोप-थाप कर किसी तरह खतम किया। आखिरी मामला था, निपटें, सुलझें, झंझट मिटाएं। छठवें दिन आखिरी चीज ऊंट बनाई। और फिर जो सोया सो तब से सोया ही है। क्योंकि यहूदियों में तो छह दिन में सृष्टि बन गई और सातवें दिन के बाद फुरसत। सातवां दिन इसीलिए, रविवार, छुट्टी का दिन है। मगर तुम्हारा तो सोमवार होता है, परमात्मा का फिर सोमवार नहीं हुआ। फिर दफ्तर नहीं गए वे। फिर तो जो उन्होंने टांग पसारी! अरे, घोड़े क्या ऊंट भी बेच कर सो गए!
ग्रंथि का अर्थ होता हैः गांठ। और जितनी ग्रंथियां होती हैं उतना ही आदमी इरछा-तिरछा होता है। कहेगा कुछ, मतलब उसका कुछ और होगा। करना कुछ और चाहेगा, करेगा कुछ और। जाएगा उत्तर और जाना चाहेगा दक्षिण। उसकी बात का भरोसा करना मुश्किल होता है। तुम्हें सोचना पड़ता है कि इसका मतलब क्या, इसके इशारे का मतलब क्या।
मैंने सुना है, दो व्यापारी... । फलीभाई पहचानते होंगे उनको! वहीं शेयर बाजार बंबई के आदमी थे दोनों, बोरीबंदर पर मिले। एक ने दूसरे से पूछा कि भाई, कहां जा रहे हो? उसने कहा, कहीं नहीं, यहीं दादर तक जा रहा हूं। दूसरे ने कहा, अरे, तू किसी और को बुद्धू बनाना, मुझे पक्का पता है कि तू दादर ही जा रहा है!
देखते हो मजा! उसने कहा, मुझे पक्का पता है कि तू दादर ही जा रहा है! तू किसी और को बुद्धू बनाना! क्योंकि जाएगा कहीं और बताएगा कहीं, वह मुझे मालूम है। तू सोचता होगा कि दादर की बताएगा तो मैं समझूंगा थाना जा रहा है। मगर मैं पक्का पता लगा कर आया हूं कि तू दादर ही जा रहा है।
अब बेचारा सच बोल रहा है कि दादर ही जा रहा हूं, मगर माने कौन!
इस जगत में इतने तिरछे लोग हैं। यहां सभी राजनीति में पड़ गए हैं। छोटे-छोटे बच्चे तक राजनीति में पड़ जाते हैं। पड़ना ही पड़ता है। क्योंकि मां कहती है कि हंसो, अरे मैं तुम्हारी मां हूं! मुस्कुराओ, क्या पड़े हो! छोटा-सा बच्चा! मनोवैज्ञानिकों ने खोज की है कि छह सप्ताह का बच्चा राजनीति सीखना शुरू कर देता है। जैसे ही माताराम को आते देखता है, मुस्कुराने लगता है। कोई मतलब नहीं है उनको मुस्कुराने का। इन माताराम को देख कर उसे कोई बड़ी प्रसन्नता नहीं हो रही है। मगर झंझट से बचना है तो मुस्कुराना ठीक है। पोपला मुंह खोल देता है। न कुछ दांत हैं न कुछ, न हृदय में कोई मुस्कुराहट का अभी सवाल है, मगर ओंठ फाड़ देता है। माताराम प्रसन्न हो जाती हैं। स्वागत हो गया। बाप आते हैं, वे भी झूले पर खड़े होकर बेटे को देखते हैं। बेटे को मुस्कुराना पड़ता है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी, बेटा फजलू और छोटे बच्चे को लेकर--अभी नया-नया दो ही साल का बच्चा--किसी के घर निमंत्रित थे, भोजन करने गए थे।

सबने छोटे बच्चे को अभी पहली दफा देखा था, इसलिए सभी छोटे बच्चे की बात कर रहे थे। गृहपति ने कहा कि बाल तो बिल्कुल नसरुद्दीन, तुमसे मिलते हैं। अरे, तुम्हारे बाल देख लो कि इसके बाल देख लो। गृह-पत्नी ने कहा नसरुद्दीन की पत्नी से कि गुलजान, आंखें तो बस बिल्कुल तुमसे मिलती हैं। ऐसा लगता है बिल्कुल तुम्हारी आंखों की ही प्रतिछबि।
फजलू चुपचाप खड़ा रहा कि मेरे बाबत भी कुछ बोला जाता है कि नहीं। जब देखा कि कुछ कोई नहीं बोल रहा और उसने कहाः "पाजामा मेरा है! मिलता ही नहीं, बिल्कुल मेरा है!"
क्या करोगे! जहां सब अपनी-अपनी चला रहे हैं, अपनी-अपनी धाक रहे हैं-- कोई के बाल, किसी की आंखें! आखिर लड़का यह भी तो सोचे कि आखिर मेरी भी कोई इज्जत है, मेरी भी कोई प्रतिष्ठा है! इनके मिलते होंगे, मगर मेरा पाजामा बिल्कुल मेरा है! कसम खाकर कहता हूं। मुहल्ले-पड़ोस के लड़कों को लाकर गवाही में खड़ा कर सकता हूं। सालों मैंने पहना है और अब यह पहन रहा है।
छोटे-छोटे बच्चों को भी अहंकार पकड़ना शुरू होता है। और वहीं से गांठ पड़नी शुरू होती है। और मां-बाप भी अहंकार को पकड़ाते हैं, जहर पिलाते हैं। कुछ करके दिखाना! अरे, दुनिया में आए हो तो कुछ करके दिखाओ! कुछ नाम ही कर जाओ! जैसे जो नाम कर गए पहले, कुछ बहुत कर गए! क्या हो गया उनके नाम के कर जाने से? मगर हर बच्चे को हम कहते हैंः कुछ होकर दिखाओ, कुछ करके दिखाओ, कुछ बन कर दिखाओ। यह बन जाओ, वह बन जाओ। स्कूल भेजते हैं, स्कूल में भी वही दौड़ महत्वाकांक्षा की--प्रथम आओ! स्वर्णपदक जीतो! कुछ न कुछ दुनिया के सामने अपने अहंकार को घोषणा देनी है।
इससे ग्रंथियां पैदा होती हैं, गांठें पैदा होती हैं। महत्वाकांक्षा ग्रंथियां लाती है। और महत्वाकांक्षा हीनता पैदा करवाती है कि अभी मैं कुछ भी नहीं। न सिकंदर बन पाया, न अशोक बन पाया, न अकबर बन पाया, न बुद्ध बन पाया, न महावीर बन पाया, कुछ भी नहीं। जिंदगी यूं ही चली जा रही है! अभी तक अपनी कोई छाप नहीं छोड़ पाया दुनिया पर। हस्ताक्षर नहीं कर पाया। तो हीनता पैदा होती है। महत्वाकांक्षा का जहर हीनता को पैदा कर देता है।
और हीनता बड़ी गांठ है। फिर आदमी धन से, पद से, प्रतिष्ठा से, किसी भी तरह से, अगर अच्छी तरह से न मिले तो गलत तरह से--चोरी से, बेईमानी से, गुंडागर्दी से--अगर यूं प्रसिद्धि न मिले तो फिर आदमी कुछ भी साधन अख्तियार कर लेता है। फिर साध्यों की फिक्र नहीं रह जाती कि वे शुभ साधन से ही मिलने चाहिए। मिलने चाहिए! साधन फिर शुभ हों कि अशुभ। केलिफोर्निया में दो वर्ष पहले एक आदमी ने सात हत्याएं कीं--दो घंटे
के भीतर। जो मिला, उसको शूट कर दिया। यह भी नहीं देखा, किसको शूट कर रहा है। पीछे से भी मार दी गोली लोगों को। उनका चेहरा भी नहीं देखा था पहले कभी। उस पर जब अदालत में मुकदमा चला तो मजिस्ट्रेट भी हैरान था। उसने पूछा
कि तुमने यह किया क्यों? अरे, लोगों की कोई दुश्मनी होती है तो कोई किसी को मारता है, समझ में आता है, कोई तर्क है। तुमने तो ऐसे आदमियों को मारा, जिनको तुमने जिंदगी में पहले देखा भी नहीं था। इसमें एक आदमी तो पहली दफे ही केलिफोर्निया आया था। और उसका तुमने चेहरा भी नहीं देखा था, पीछे से गोली मार दी!
उस आदमी ने कहा, मुझे इसकी कोई फिक्र नहीं। मैं अपनी तस्वीर अखबारों में देखना चाहता हूं। अरे, जिंदगी यूं ही चली जा रही है! कोई चर्चा ही नहीं! आज हर जबान पर मेरा नाम है। गांव की चर्चा मैं हूं। जो देखो मेरी बात कर रहा है। जिंदगी सफल हो गई। अब फांसी लगे, कोई फिक्र नहीं। उसकी भी चर्चा होगी। मर जाऊंगा, मगर याद छोड़ जाऊंगा।
जार्ज बर्नार्ड शा को जब नोबल प्राइज मिली तो उसने इनकार कर दिया लेने से। वह पहला आदमी था इनकार करने वाला। एक तो नोबल प्राइज का मिलना, सारी दुनिया में चर्चा हुई। प्रथम, अखबारों की सुर्ख सुर्खियों में नाम आया। और दूसरे दिन उसने इनकार कर दिया लेने से। फिर अखबार में खबर छपी। यह पहला मौका था कि कोई नोबल प्राइज लेने से इनकार कर दे। नोबल प्राइज के लिए तो लोग मरे जाते हैं। हजार कोशिश करते हैं, सिफारिशें करवाते हैं, चेष्टाएं करते हैं, क्या नहीं करते आदमी! और इसने नोबल प्राइज को इनकार कर दिया! मिलने से भी बड़ी खबरें छपीं कि यह इतिहास की पहली घटना है! इतना बड़ा

पुरस्कार--कोई बीस लाख रुपए मिलते हैं--और सारे जगत में सम्मान, ऐसा कोई पुरस्कार नहीं। और बर्नार्ड शा ने इनकार कर दिया! बहुत चर्चा हुई, बहुत शोरगुल मचा।
दो-तीन दिन बर्नार्ड शा को बहुत खोजा गया, उसका पता ही न चले कि वह कहां है। तीन दिन बाद पता चला। वह अपने गांव चला गया था। उस पर बड़ा दबाव डाला गया। इंग्लैंड की सरकार ने दबाव डाला, दुनिया के बड़े-बड़े प्रसिद्ध लोगों ने पत्र लिखे, तार किए कि भई, ऐसा मत करो, इसमें अपमान है नोबल प्राइज बांटने वाली कमेटी का। तुम स्वीकार कर लो, फिर चाहे तुम इस हाथ से स्वीकार करना और उस हाथ से दान कर देना, मगर स्वीकार कर लो।
मगर वह भी टिका रहा, सात दिन तक अखबारों में रोज चर्चा चलती रही कि आज
इस महाराजा ने प्रार्थना की, आज उस राजा ने प्रार्थना की, आज इस लेखक ने, कल उस कवि ने। सात दिन तक उसने धूम-धड़ाका मचा दिया। सारी दुनिया की सब खबरें गौण हो गईं। सातवें दिन उसने घोषणा की कि जब इतने लोग आग्रह कर रहे हैं तो मैं कैसे इनकार कर सकता हूं, मैं स्वीकार करता हूं। उसने नोबल प्राइज स्वीकार की। फिर अखबार में खबर छपी।
और उसने एक हाथ से दस्तखत किए स्वीकार करने के और दूसरे हाथ से उसको दान कर दिया एक संस्था को--फेबियन सोसायटी को दान कर दिया। फिर अखबारों में खबर छपी कि उसने स्वीकार किया, मगर अदभुत दानी कि बीस लाख रुपए यूं दान कर दिए! कि दो पैसे भी आदमी देने में सोचता है, बीस लाख रुपए देने में!
और आज के बीस लाख नहीं, उस दिन के बीस लाख बहुत थे। आज का तो एक करोड़ रुपया भी उनसे कम है, उस दिन के बीस लाख रुपए आज के करोड़ों रुपए से भी ज्यादा थे। कुछ चीजों के दाम तो सात सौ गुने ज्यादा हो गए हैं उस दिन से अब तक। रुपए की तो कीमत ही गिरती चली गई है। रुपए का तो कोई मूल्य ही नहीं रहा। भिखमंगे को भी तुम रुपया दो तो वह धन्यवाद नहीं देता; उलटे उसको देखता है कि असली है कि नकली। मतलब तुम पर एहसान कर रहा है स्वीकार करके। अखबार में खबरें छपीं, बहुत खबरें छपीं। और फिर पता चला कि वह फेबियन सोसायटी जो थी वह जार्ज बर्नार्ड शा की ही बनाई हुई एक छोटी-सी समिति थी, जिसके वही अध्यक्ष थे और वही सदस्य थे एकमात्र--और कोई भी नहीं। फिर तो बहुत शोरगुल मचा, कि यह तो हद हो गई, यह तो बेईमानी हो गई।
यूं पंद्रह दिन तक उस आदमी ने सारी दुनिया को उलझाए रखा। और सोलहवें दिन उसने घोषणा कर दी कि इसमें क्या संकोच की बात है! सच बात तो यह है कि मैंने जान कर यह सब किया, क्योंकि नोबल प्राइज मिली, एक दिन छप गई खबर, खत्म हो गई बात, यह भी कोई बात है! अरे, नोबल प्राइज मिली तो इसको जितना खींचा जा सके लंबा, जितने दिन तक अखबारों में टिका जा सके टिकना चाहिए। इसलिए तो मैंने इतना पूरा नाटक किया।
फिर खबर छपी कि यह नाटक था पूरा का पूरा। यह नाटककार नाटक ही कर रहा था। यह इसने किसी को दान वगैरह किए नहीं, इस हाथ से अपने को ही दान कर लिए वापस। यह सब धोखाधड़ी थी। यह आदमी बेईमान है। जगह-जगह गालियां और जगह-जगह असम्मान और व्यंग्य-चित्र छपे।
मगर उसने कहा कि इसमें क्या बात है! मैंने पूरा लाभ लेना चाहा जितना लाभ लिया जा सकता है। क्या यूं ही नोबल प्राइज मिली और बस ले ली, किसी को पता भी न चला, कानों-कान खबर न हुई! एक-एक बच्चे को पता चल गया।
ऐसी ग्रंथियां मन में पैदा हो जाती हैं--अहंकार की, विशिष्टता की, खास होने की।
स्मृतिलाभै... ।
लेकिन जिसको अपना स्मरण आ गया, उसकी ये सारी ग्रंथियां मिट जाती हैं।
फिर उससे ऊपर कुछ भी नहीं है--न धन है, न पद है, न प्रतिष्ठा है। जिसको अपना स्मरण आ गया, उसे तो परम पद मिल गया, परम धन मिल गया। उस परम पद और परम धन का नाम ही मोक्ष है।
स्मृतिलाभै सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।
उसका सभी ग्रंथियों से मोक्ष हो जाता है, मुक्ति हो जाती है। सारी ग्रंथियां टूट कर गिर जाती हैं, जैसे जंजीरें टूट कर गिर गई हों किसी कैदी की।

इस सूत्र को बहुत सावधानी पूर्वक समझना। आहार अर्थात जो बाहर से भीतर आता है। स्मृति अर्थात आत्म-स्मृति। ग्रंथियां अर्थात वे सब आकांक्षाएं जो तुम्हें बांधे हुए हैं; वासनाएं जो तुम्हें बांधे हुए हैं; गांठें जिनमें तुम उलझ गए हो। जैसे मछली जाल में फंसी हो और तड़फती हो। जिसकी सारी ग्रंथियां टूट जाती हैं, उसका मोक्ष है, उसका ही मोक्ष है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपने सुझाव दिया था, इसलिए डोंगरे का बालामृत तो
पी लिया परंतु उसमें भी झंझट हो गई। अब डोंगरे महाराज से पीछा नहीं छूट रहा। शिष्य तो आपका हूं और वचन उनके चोट कर जाते हैं। अभी हाल ही में उन्होंने कुछ क्रांतिकारी वचन कहे, जैसे--
पहलाः किसी मनुष्य का भरोसा न करो। ईश्वर का भरोसा मत छोड़ो।
दूसराः गरीबी पाप नहीं है। गरीबों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करो। तीसराः जब जन्म होता है तब मृत्यु का स्थान, कारण तथा समय तय हो जाता है। परंतु यदि अतिशय भक्ति हो जाए तो उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो सकता है।
चौथाः जगत के साथ बैर न करो, परंतु जगत बहुत प्रेम करने योग्य भी नहीं है।
ओशो, क्या अब भी डोंगरे का बालामृत पीना जारी रखूं? क्योंकि डर है कि उसे पीते-पीते शक्ति और भक्ति मिलना तो दूर, कहीं मति ही तिरोहित न हो जाए। संकट में हूं, भगवान, कृपया मार्गदर्शन दें।

सत्य वेदांत, डोंगरे का बालामृत पीने का इसीलिए तो सुझाव दिया था कि थोड़ी झंझट हो। झंझट हो तो झंझट से छूटने का उपाय खोजा जा सकता है। झंझट तो है, प्रकट नहीं होती; डोंगरे के बालामृत ने प्रकट कर दी। बीमारी तो थी, डोंगरे के बालामृत ने छिपी बीमारी को अभिव्यक्त कर दिया।
अच्छा हुआ, झंझट साफ हुई। साफ हुई तो अब तोड़ी भी जा सकती है।

बाजार का ये हाल है
कि ग्राहक पीला
और दुकानदार लाल है

दूध वाला कहता है--
दूध में पानी क्यों है
गाय से पूछो
गाय कहेगी--
पानी पी रही हूं
तो पानी ही तो दूंगी
दूध वाला मेरे प्राण ले रहा है मैं तुम्हारे लूंगी।

कोयले वाला कहता है--
कोयले की दलाली में
हाथ काले कर रहे हैं
बर्तन खाली ही सही
हमारी बदौलत
चूल्हे तो जल रहे हैं।

कपड़े वाला कहता है--
जिस भाव में आया है
उस भाव में कैसे दें
आपको हंड्रेड परसेंट आदमी बनाने का आपसे फिफ्टी परसेंट भी न लें?

धोबी कहता है--

और हम उनकी तिजोड़ी तोड़ कर अधिकार और कर्तव्य को
एक साथ निभा रहे हैं
किसी तिजोरी में झांक कर देखिए, आत्मा हिल जाएगी
किसी न किसी कोने में पड़ी लोकतंत्र की लाश मिल जाएगी।

भिखारी कहता है--
दाता!
पांच पैसे में तो जहर भी नहीं आता जो आपका नाम लेकर खा लें
और ऐसे समाजवाद से छुट्टी पा लें
इस सरकार ने तीस बरस में
इतने भिखारी पैदा किए हैं
कि स्वयं सरकार को गिनने में
चालीस बरस लग जाएंगे।

सत्य वेदांत, उलझनें तो बहुत हैं। डोंगरे का बालामृत पीओगे तो ये सब प्रकट होकर सामने आएंगी। ये सब प्रकट होनी शुरू हो गई होंगी। तभी तो डोंगरे महाराज से पीछा नहीं छूट रहा है। और उनके वचन चोट करेंगे। वचन ही कीमती हैं! क्या गजब की बातें कही हैं!
पहलाः "किसी मनुष्य का भरोसा न करो।"
और डोंगरे महाराज कौन हैं? पशु हैं, पक्षी हैं? गधे हैं, घोड़े हैं, ऊंट हैं, हाथी हैं, क्या हैं? किसी मनुष्य का भरोसा न करो! यहीं तो बात गड़बड़ हो गई। अब आगे बढ़ने की जगह ही कहां रही। और वे समझा रहे हैं कि ईश्वर का भरोसा मत छोड़ो। आदमी समझा रहा है कि ईश्वर का भरोसा मत छोड़ो और आदमी का भरोसा करना मत! अब देखा कैसी गांठ लगाई! लाख खोलो तो न खुले। जितनी खोलो उतनी और मजबूत होती चली जाए। इधर से खोलो तो उधर से गड़बड़ हो। उधर से खोलो, इधर से गड़बड़ हो जाए। अगर उनका भरोसा करो तो आदमी पर भरोसा हो गया। वचन भंग हुआ। अगर उनका भरोसा न करो तो ईश्वर पर भरोसा नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर की बातें आदमी ही तो कर रहे हैं।
"किसी मनुष्य का भरोसा न करो!"
और यही लोग कहते हैं कि कण-कण में परमात्मा विराजमान है। और मनुष्य में कौन विराजमान है? कण-कण में विराजमान है--सिर्फ मनुष्य को छोड़ कर। मैं तुमसे कहता हूंः सवाल इसका नहीं कि तुम किस पर भरोसा करते हो, सवाल भरोसा करने का है। मैं तो कहता हूं, बेईमान से बेईमान का भी भरोसा करो, धोखेबाज से धोखेबाज का भी भरोसा करो। अरे, क्या ले जाएगा! समझो जेब ही काट लेगा, कि कुछ पैसा चुरा लेगा, तो क्या खो जाएगा तुम्हारा! उसका ही कुछ खोएगा। चार पैसे में वह अपनी आत्मा खो देगा और तुम्हारा क्या जाएगा! हां, तुमने भरोसा खोया तो तुम्हारी आत्मा भी गई। चार पैसे के लिए भरोसा मत खोना। चार पैसे खो जाएं तो खो जाएं, भरोसा मत खोना।
मैं इंदौर से खंडवा आया। और आगे मुझे जाना था। खंडवा स्टेशन पर गाड़ी कोई घंटे भर रुकती है। एक भिखमंगा आया। फर्स्ट क्लास के डिब्बे में मैं अकेला था, खिड़की के पास बैठा था। उसने कहा, कुछ मिल जाए। मैंने उसे एक रुपया दिया। सोचा होगा उसने कि यह आदमी बड़ा भोला-भाला है! और गाड़ी घंटे भर रुकनी है। सो वह अपने पर संवरण न रख पाया होगा। थोड़ी देर बाद...
(इतने में ही थोड़ी देर के लिए बिजली गुल हो गई।)
किसी मनुष्य का भरोसा न करो। तो माइक्रोफोन का क्या भरोसा करें? बिजली भी धोखा दे गई! सामने बिजली का बल्ब है, वह जले तब मेरे इंजीनियर कहते हैं कि तब बोलना शुरू करना। वह जला ही नहीं, अभी तक नहीं जला। सत्य वेदांत, डोंगरे महाराज ठीक ही कहते हैं! अरे, क्या खाक भरोसा करो! अगर मैं भरोसा करूं तो बस बैठा ही रहूं! ...

वह आदमी थोड़ी देर बाद फिर आया। अब की बार टोपी लगा कर आया। उसने फिर मुझसे मांगा, मैंने फिर उसे एक रुपया दिया। उसने मुझे बड़े गौर से देखा कि हद हो गई! क्या मेरी टोपी धोखा दे गई! दूसरी दफे कोट पहन कर आया, फिर मुझसे मांगा, फिर मैंने उसे एक रुपया दिया। अब तो वह थोड़ी देर खड़ा रहा, विचार करता रहा कि आदमी पागल तो नहीं है! टोपी और कोट क्या इतना धोखा दे जाएंगे? तीसरी बार फिर आया। अब की बार हाथ में सिर्फ एक छड़ी लेकर आया। उसने फिर मांगा, मैंने फिर उसे एक रुपया दिया।
उसने मुझसे कहा कि भाई साहब, क्या आप से एक बात पूछूं? मैंने कहा, पूछो। उसने कहा, मुझे यह पूछना है कि क्या आप चार दफे में भी नहीं पहचान पाए कि मैं वही हूं? मैंने कहा, यही मैं सोच रहा हूं कि तू भी चार दफे में नहीं पहचान पाया कि मैं भी वही हूं। और न तो मैंने टोपी पहनी, न कोट बदला, न छड़ी उठाई। मैं भी चकित था। यही मैं सोच रहा था कि मुझी से मांगता है आकर, यह पहचान नहीं पा रहा बेचारा! यह सोचता है फिर कोई दूसरा आदमी, फिर कोई दूसरा आदमी।
वह मेरी बात से खुश हुआ। मैंने कहा, आ, भीतर आ, बैठ! घंटे भर गाड़ी रुकनी है, तू बार-बार आए-जाए, क्या तकलीफ? हर पांच-दस मिनट में मैं एक रुपया तुझे देता जाऊंगा, तू यहीं बैठ।
वह थोड़ा डरा। अरे, मैंने कहा, तू आ जा भीतर, डर मत!
उसने कहा कि नहीं-नहीं, मैं बाहर ही ठीक हूं।
मैंने कहा, तू बिल्कुल भय मत कर। तू भीतर आ जा, शांति से बैठ।
मगर वह भीतर न आए। मैंने कहा, मैं तुझे एक-एक रुपया दूंगा धीरे-धीरे, बैठ तो तू। मुझे भी कोई आंख के अंधे गांठ के पूरे दे गए हैं, तो तू भी ले जा, क्या फर्क पड़ता है! न मैं कुछ लेकर आया, न तू कुछ लेकर आया, न अपना कुछ है, न तेरा कुछ है। खेल है! इधर से उधर। और रुपए का तो काम ही है चलन। इसलिए अंग्रेजी में उसे करेंसी कहते हैं। करेंसी मतलब जो चलती रहे। तेरा बहुत मन भर जाए तो लौटा देना। जैसी तेरी मर्जी।
इतना मैंने कहा कि लौटा देना कि वह तो चल ही दिया वहां से। अरे, मैंने कहा, जाता कहां है, कम से कम एक रुपया तो लेता जा! उसने कहा, मुझे नहीं लेना, जी! आप आदमी हैं कि पागल हैं, क्या बात है? उलटी-सीधी बातें कर रहे हैं। फिर नहीं आया। फिर तो मुझे उतर कर उसे खोजने जाना पड़ा। गया मैं उतर कर। बैठा था एक दीवार के पास। मुझे देख कर ही एकदम से खड़ा हो गया और कहा कि मुझे नहीं चाहिए। मुझे बिल्कुल लेना ही नहीं है। बहुत हो गया। आज के लिए काफी है।
मैंने कहा, मैं तो यूं ही बातचीत करने चला आया और तेरा मन होगा तो दे देंगे एकाध रुपया और।
कि नहीं बाबा, आप मुझे माफ करो! आप क्यों मेरे पीछे पड़े हो? वह मुझसे कहने लगा कि मैं क्यों उसके पीछे पड़ा हूं!
सत्य वेदांत, क्या गजब की बात डोंगरे महाराज ने कहीः "किसी मनुष्य का भरोसा न करो!"
असल में भरोसा मूल्यवान है। न तो भरोसा मनुष्य का होता है न ईश्वर का होता है। अगर तुम मुझसे पूछो तो आस्तिक मैं उसको नहीं कहता जो ईश्वर का भरोसा करता है; आस्तिक मैं उसको कहता हूं जो भरोसा करता है। ईश्वर से क्या लेना-देना? भरोसे में आस्तिकता है। और अगर आदमी पर ही भरोसा न किया तो फिर भरोसे का पाठ कहां सीखोगे? आदमी पर भरोसा करोगे तो ही ईश्वर पर किसी दिन भरोसा कर पाओगे। आदमी पर भरोसा करने में अड़चन है, यह बात जरूर सच है, क्योंकि जिस पर भरोसा करोगे वह धोखा देगा।
मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा चला। उसने गांव के एक सीधे-सादे आदमी के भरोसे का दुरुपयोग किया था। मजिस्ट्रेट ने कहा कि नसरुद्दीन, यह सीधा- सादा आदमी, भोला-भाला आदमी; गांव भर इसको जानता है। तुम्हें धोखा देने को यही आदमी मिला? तुम्हें शर्म न आई?
नसरुद्दीन ने कहाः "मालिक, अब मैं और किसको धोखा दूं? यही एक आदमी है
जो धोखा खा सकता है। और तो गांव में बड़े पहुंचे हुए लफंगे हैं, वे तो मुझी को धोखा दे रहे हैं। यही एक है बेचारा, भोला-भाला, जिसको मैं भी धोखा दे

सकता हूं। और जो जिसको दे सकता है मालिक, उसी को तो देगा। अब जिसको दे ही नहीं सकते उसको देकर क्या झंझट में पड़ना है!"
बात तो उसने पते की कही कि जो जिसको दे सकता है उसी को देगा।
आदमी पर भरोसा करने में खतरा तो है। क्योंकि भरोसा करोगे तो कोई लूटेगा, कोई झपटेगा, कोई छीनेगा। मगर वही तो मौका है। वही चुनौती है। अगर फिर भी तुमने भरोसा किया... फिर भी शब्द पर ख्याल रखना। क्योंकि अगर कोई आदमी तुम्हारे अनुकूल हो, और तुम भरोसा करो, तो उस भरोसे की क्या कीमत, दो कौड़ी का है! कोई आदमी तुम्हें धोखा दिए जाए, फिर भी तुम भरोसा करो, तो भरोसे में कुछ बल है, आत्मा है। कितना ही धोखा दे और तुम्हारा भरोसा न टूटे, तो तुम्हारा भरोसा अडिग है। तब तुमने एक ऐसे भरोसे को पा लिया, जिसे कोई भी हिला न सकेगा। ऐसा भरोसा ही ईश्वर को जान पाता है।
डोंगरे महाराज को कुछ भी पता नहीं है। न आदमी से कोई पहचान है, न ईश्वर
से कोई पहचान है। और दूसरी बात उन्होंने कहीः "गरीबी पाप नहीं है। गरीबों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करो।"
मैं इस बात से राजी हूं, लेकिन किसी और अर्थ में। सदियों से यह कहा गया
है कि गरीबी पाप का फल है। तुमने पिछले जन्मों में जो पाप किए थे उसका फल भोग रहे हो; वही तुम्हारी गरीबी है। गरीबी पाप नहीं है, गरीबी पाप का फल है। और अगर इस गरीबी को तुम आनंदपूर्वक निभा लोगे, संतोषपूर्वक निभा लोगे, तो अगले जन्म में अमीर हो जाओगे। इसलिए गरीबी को मिटाना नहीं है। और उसका स्वाभाविक परिणाम होता है कि गरीबों का सम्मानपूर्वक व्यवहार करो।
यह हम कर रहे हैं सदियों से। और इसीलिए जितना देश हमारा गरीब है, दुनिया में कोई इतना गरीब नहीं। गरीबों का सम्मान कर रहे हैं, गरीबी को साधना मान रहे हैं।
मैं तुमसे कहता हूंः गरीबी व्यक्ति का पाप नहीं है, कोई कसूर नहीं है व्यक्ति का। और मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूं कि यह सिद्धांत, कि गरीबी पिछले जन्मों के पाप का फल है, एकदम गलत है। पिछले जन्मों से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। हिसाब-किताब तत्काल हो जाते हैं, जन्मों तक नहीं ठहरते। अभी आग में हाथ डालोगे तो अभी जलोगे, अगले जन्म में नहीं जलोगे। जगत में नियम नगद हैं, उधार नहीं हैं। लेकिन यह तरकीब तुम्हें समझाई गई है। और इस तरकीब के कारण एक सांत्वना पैदा हो गई है।

चंद रोज और मेरी जान फकत चंद ही रोज
जुल्म की छांव में दम लेने पै मजबूर हैं हम
और कुछ देर सितम सह लें, तड़फ लें, रो लें
अपने अजदाद की मीराज से माजूर हैं हम
जिस्म पर कैद है, जज्बात पै जंजीरें हैं
फिक्र महबूस पै गुफ्तार पै ताबीरें हैं
पर अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिए जाते हैं और जिंदगी क्या किसी मुफलिस की कबा है जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबंद लगे जाते हैं लेकिन अब जुल्म की मीयाद के दिन थोड़े हैं इक जरा सब्र कि फरियाद के दिन थोड़े हैं अर्साए-दहर की झुलसी हुई वीरानी में,
हमको रहना है तो यूं ही तो नहीं रहना है अजनबी हाथों का बेनाम गरांबार सितम
आज सहना है, हमेशा तो नहीं सहना है
ये तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम की गर्द
अपनी दोरोजा जवानी की शिकस्तों का शुमार
चांदनी रातों का बेकार दहकता हुआ दर्द
दिल की बेसूद तड़फ, जिस्म की मासूम पुकार
चंद रोज और मेरी जान फकत चंद ही रोज
हम ऐसा अपने को समझाते रहे हैंः थोड़े दिन की बात है। और थोड़े दिन की।
एक जन्म और, फिर सब ठीक हो जाएगा। ये धोखे तोड़ देने के हैं। अब समय है कि हम इन्हें तोड़ दें।

और उन्होंने कहा कि "जन्म के साथ सब तय हो जाता है।"
बिल्कुल व्यर्थ बकवास है।
और उन्होंने कहाः "जगत के साथ बैर न करो, परंतु जगत प्रेम के योग्य स्थान भी नहीं है।"
दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकेंगी? एक ही बात हो सकती है। अगर प्रेम
का स्थान नहीं तो बैर हो गया। अगर प्रेम का स्थान है तो बैर नहीं हो सकता है।
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
नौवां प्रवचन

योग ही आनंद है

पहला प्रश्नः ओशो, आप सदा आनंदमग्न हैं, इसका राज क्या है? मैं कब इस मस्ती को पा सकूंगा?

योगानंद, मैं तुम्हें नाम दिया हूं योगानंद का, उसमें ही सारा राज है। मनुष्य दो ढंग से जी सकता है। या तो अस्तित्व से अलग-थलग, या अस्तित्व
के साथ एकरस। अलग-थलग जो जीएगा, दुख में जीएगा--चिंता में, संताप में। यह स्वाभाविक है। क्योंकि अस्तित्व से भिन्न होकर जीने का अर्थ हैः जैसे कोई वृक्ष पृथ्वी से अपनी जड़ों को अलग कर ले और जीने की चेष्टा करे। मुरझा जाएगा, पत्ते कुम्हला जाएंगे, फूल खिलने बंद हो जाएंगे। वसंत तो आएगा, आता रहेगा, मगर वह वृक्ष कभी दुल्हन न बनेगा, दूल्हा न बनेगा। उसके लिए वसंत नहीं आएगा। जिसकी जड़ें ही पृथ्वी से उखड़ गई हों, उसके लिए मधुमास का क्या उपाय रहा! फिर कहां आनंद, कहां मस्ती! फिर सुबह नहीं है, फिर तो अंधेरी रात है, अमावस की रात है--और ऐसी रात कि जिसकी कोई सुबह नहीं होती। इस तरह के जीवन का नाम ही अहंकार है।
और जो वृक्ष पृथ्वी के साथ योग साध रहा है, पृथ्वी में जड़ें फैला रहा है, आकाश में शाखाएं, बदलियों से बतकही, चांद-तारों से संबंध जोड़ रहा है, वह आनंदित न होगा तो क्या होगा! हवाएं आएंगी तो नाचेगा, गुनगुनाएगा। हवाएं गुजरेंगी तो गीत गाएंगी। पक्षी उस पर बसेरा करेंगे। सूर्य की किरणें उसके फूलों पर अठखेलियां करेंगी। ऐसे जीवन का नाम ही संन्यास है।
संन्यास अर्थात निरहंकारिता। संसार अर्थात अहंकार। संसार अर्थात मैं हूं अलग, भिन्न।
और जहां यह ख्याल उठा कि मैं अलग हूं, भिन्न हूं, वहीं इसका स्वाभाविक तार्किक परिणाम यह होता है कि मुझे संघर्ष करना है, लड़ना है, विजय-पताका फहरानी है। और छोटा-सा आदमी, बूंद जैसा, सागर से लड़ने चल पड़ेगा तो कितनी न चिंताओं से भर जाएगा? कितने न संताप उसे घेर लेंगे? कितने भय और कितनी असुरक्षाएं? उसके चारों तरफ मेला भर जाएगा चिंताओं ही चिंताओं का।
हम अलग नहीं हैं, इस सत्य को जानने की प्रक्रिया का नाम हैः योग। योग अर्थात हम इकट्ठे हैं, जुड़े हैं, संयुक्त हैं। योग का अर्थ होता हैः जोड़। जैसे ही व्यक्ति ने जाना कि मैं जुड़ा हूं, फिर न तो कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। जैसे ही जाना कि मैं जुड़ा हूं अस्तित्व से, तत्क्षण हम शाश्वत हो गए। अस्तित्व जब से है, हम हैं; और अस्तित्व जब तक रहेगा, हम रहेंगे। और अस्तित्व तो सदा है। ऐसा कभी न था कि न हो। ऐसा भी कभी न होगा कि न हो जाए। तो फिर जन्म और मृत्यु तो छुद्र घटनाएं हैं। जीवन की प्रक्रिया जन्म और मृत्यु के पार है। देह आती है, जाती है, बनती है, मिटती है, हम नहीं।
लेकिन यह प्रतीति तभी संभव है जब अहंकार को हम बीच से हटा लें। जैसे
ही अहंकार आया कि दीवार आई। हम टूटे। अलग हुए। और जैसे ही अहंकार गया कि दीवार हटी। सेतु बना। हम संयुक्त हुए। युक्त हुए। योग को उपलब्ध हुए। योगानंद, तुम्हारे नाम में कुंजी छिपी है। योग ही आनंद है। और तब अमावस भी पूर्णिमा हो जाती है। देर नहीं लगती, एक क्षण में हो जाती है।
हम पर तुम्हारी चाह का इल्जाम ही तो है
दुश्नाम तो नहीं है ये, इकराम ही तो है
करते हैं जिस पर ताम कोई जुर्म तो नहीं
शौके-फिजूल-ओ-उल्फते-नाकाम ही तो है
दिल नाम ही तो नहीं नाकाम ही तो है
लंबी है गम की शाम मगर शाम ही तो है दस्ते-फलक में गर्दिशे-तकदीर तो नहीं दस्ते-फलक में गर्दिशे-अय्याम ही तो है आखिर तो इक रोज करेगी नजर वफा
वो यारे खुशफिसाल सरे-बाम भी तो है

अभी भी है रात, "फैज" गजल इब्तदा करो
वक्ते-सरोद दर्द का मदाम भी तो है
जैसे ही तुमने जुड़ने की थोड़ी-सी पहल की, अनुभव में आने लगता है--
लंबी है गम की शाम मगर शाम ही तो है
आखिर तो इक रोज करेगी नजर वफा
वह घड़ी दूर नहीं है जब अस्तित्व तुम पर आनंद की वर्षा कर देगा, जब अस्तित्व तुम्हारे लिए प्रसाद हो जाएगा। तुम योग साधो, अस्तित्व प्रसाद है। तुम योग साधो, फिर कोई दुश्मनी नहीं है अस्तित्व से, फिर हम उसके अंग हैं--अपरिहार्य अंग। लहर सोच ले कि मैं सागर से अलग हूं तो मुश्किल में पड़ जाएगी। और लाख सोचे कि मैं सागर से अलग हूं, अलग है तो नहीं। हो भी नहीं सकती। और जब तुम असत्यों में जीने लगते हो तो दुख। और जैसे सत्य के करीब आए कि सुख। और जैसे सत्य के साथ एक हो गए कि आनंद।
पूछा है तुमने योगानंदः "आप सदा आनंदमग्न हैं, इसका राज क्या है? मैं
कब इस मस्ती को पा सकूंगा?"
कभी भी पा सकते हो। अभी ही पा सकते हो। यह बात बहुत पाने की नहीं है। तुम्हारे भीतर आनंद तो मौजूद है। इसे पाना कम, आविष्कृत ज्यादा करना है। उघाड़ना है। मौजूद है, ढका है।
उपनिषदों के ऋषियों ने प्रार्थना की हैः हे प्रभु, मेरे इस स्वर्ण से ढके हुए पात्र को उघाड़ दे!
यह प्रार्थना प्यारी है। स्वर्ण के ढक्कनों में ही तो तुम्हारा आनंद
ढक गया है। स्वर्ण में आ गया सब--तुम्हारी आशाओं-वासनाओं का जाल, पद-प्रतिष्ठा, धन की दौड़--स्वर्ण में सब आ गया। स्वर्ण तो प्रतीक है। कुछ पा लूं। कुछ मूल्यवान बाहर मिल जाए। कोई सिंहासन!
उपनिषद का ऋषि कहता हैः हे प्रभु, इस स्वर्ण के ढकने को अलग कर ले तू, ताकि मैं अपने को जान लूं।
अपने को जानने में आनंद है। मगर इतना तो कम से कम करना ही पड़े। इतनी प्रार्थना तो कम से कम करनी ही पड़े।
कहता है कौन ख्वाब की ताबीर चाहिए
आंखों के सामने तेरी तस्वीर चाहिए
कहता है कौन ख्वाब की ताबीर चाहिए
वो आए मुझको ढूंढने को और मैं मिलूं नहीं
ऐसी भी जिंदगानी से तकदीर चाहिए
कहता है कौन ख्वाब की ताबीर चाहिए
ऐसे तो चांद-तारे न टूटेंगे अपने आप
हर दो कदम पै अपनी भी तदबीर चाहिए
आंखों के सामने तेरी तस्वीर चाहिए
कहता है कौन ख्वाब की ताबीर चाहिए
ये पूछते हो क्या कि है गुरबत का क्या इलाज
तारीकियों के सामने तन्वीर चाहिए
आंखों के सामने तेरी तस्वीर चाहिए
कहता है कौन ख्वाब की ताबीर चाहिए
बस, स्मरण बना रहे--आंखों के सामने तेरी तस्वीर चाहिए--याद बनी रहे कि अभी मैं पहुंचा नहीं हूं वहां, अभी मैं आया नहीं उस स्थल पर जहां जीवन सौभाग्य हो जाता है, जहां जीवन का कमल खिलता है, जहां दीवाली होती है, जहां दीए ही दीए जल उठते हैं--कतारों के अंदर कतारें, दीए ही दीए जल उठते हैं और ऐसे दीए जो कभी बुझते नहीं हैं। लेकिन थोड़ी-सी तो तदबीर चाहिए। उतना ही योग है।
ऐसे तो चांद-तारे न टूटेंगे अपने आप हर दो कदम पै अपनी भी तदबीर चाहिए आंखों के सामने तेरी तस्वीर चाहिए
याद बनी रहे और थोड़ा-सा श्रम।
कृष्ण ने गीता में बहुत मूल्य की बात कही है कि परमात्मा को पाने के लिए बहुत थोड़ा-सा श्रम चाहिए। थोड़ी-सी तदबीर, थोड़ा-सा यत्न। उतना ही जितना कि आंख में अगर धूल का एक कण पड़ जाता है तो सामने खड़ा हुआ विशाल हिमालय भी छिप जाता है। बात जरा-सी! जरा-सी धूल आंख में पड़ गई है और विशाल हिमालय को

छिपा लिया। जरा-सी धूल ने ऐसी ओट कर दी, इतनी बड़ी ओट कर दी! कहां हिमालय और कहां धूल का छोटा-सा कण! मगर छोटा-सा कण भी आंख में हो तो हिमालय ओझल हो जाता है। आंख से धूल का कण निकाल लो, बस इतनी तदबीर चाहिए।
इतना श्रम, इतना प्रयत्न, इतना ध्यान, इतना योग, इतना धर्म। धूल के कण
के हटते ही सारा हिमालय प्रकट हो जाता है। हिमालय तो था ही, धूल ने तुम्हारी आंख को खुलने से रोक दिया था। तुम्हारे आंख के बंद होने से हिमालय विदा नहीं हो जाता। आनंद तो तुम्हारे भीतर मौजूद है, मगर भीतर की आंख पर कंकड़ी पड़ी है। और आंख पर भीतर इसीलिए इतनी धूल जम गई है कि भीतर तुम कभी देखते ही नहीं।
मैंने सुना है, इंग्लैंड के चिकित्सा शास्त्र के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना उल्लिखित है, कि एक महिला चालीस साल तक बिस्तर पर लेटी रही। फ्लू हुआ था उसे। डाक्टर देखने आया था, दो-चार दिन में फ्लू ठीक हो जाने को था, लेकिन डाक्टर ने जाते वक्त कहाः जब तक मैं न कहूं, उठना मत, विश्राम करना। फ्लू ही था, कोई बड़ी बीमारी न थी। सो डाक्टर उस महिला के संबंध में भूल-भाल गया। रही होगी सिद्धांत की पक्की महिला! वह नहीं उठी बिस्तर से। अरे, जब तक डाक्टर न कहे! फ्लू ठीक हो गया, उसको भी लगे कि फ्लू ठीक हो गया, सब ठीक हो गया, मगर डाक्टर कहे तभी उठे न! वह लेटी ही रही।
फिर लेटे-लेटे मजा भी आने लगा। काम-धाम से भी छुटकारा मिल गया। जब तक उसकी मां जिंदा रही--बूढ़ी मां उसकी फिकर करती रही। जब मां मर गई तो उसके बेटे-बेटियां, बहुएं उसकी फिकर करते रहे। वह खूब जीयी, क्योंकि बिस्तर पर ही जीयी। बेटा भी मर गया, बहू भी मर गई, बेटी भी मर गई, तो उसके रिश्तेदार और मोहल्ले के लोग उसकी देखभाल करने लगे। मगर नहीं उठी बिस्तर से--चालीस साल! संयोग से डाक्टर उस मोहल्ले से निकलता था, उसे ख्याल आया कि इस परिवार में मैं हमेशा पहले आता था वर्षों पूर्व, बहुत दिन से न कोई बीमार पड़ा न मुझे बुलाया गया, बात क्या है? और घर बेरौनक भी मालूम होता है! बिल्कुल उजड़ गया। तो उसने दरवाजे पर दस्तक दी। भीतर से आवाज आईः आप चले आइए, मैं बिस्तर से उठ नहीं सकती हूं। दरवाजा अटका है, खोल लीजिए। दरवाजा खोल कर भीतर गया, वह महिला बिस्तर पर लेटी थी। मोटी भी बहुत हो गई थी। उसने पूछा कि क्या तकलीफ है? क्यों लेटी हो? उसने कहा, तकलीफ? अरे आप ही कह गए थे चालीस साल पहले कि जब तक मैं न कहूं उठना मत।
दो साल मेहनत करनी पड़ी डाक्टर को तब वह महिला खड़ी हो सकी। क्योंकि चालीस साल लेटी रही, शरीर ही भूल गया खड़ा होना। हड्डियां सख्त हो गईं। कमर ने झुकना बंद कर दिया। दो साल सतत श्रम करके डाक्टर उसको फिर खड़ा कर पाया। और कहते हैं वह पांच साल और जिंदा रही, और मजे से जिंदा रही और सक्रिय रही। मगर चालीस साल बिस्तर से लगी रही।
बस, ऐसी ही हमारी हालत है। भीतर कुछ भी रुग्ण नहीं है, भीतर सब स्वस्थ है, भीतर सब आनंद है। मगर हम बाहर देखने के आदी हो गए हैं, हम भीतर देखना भूल गए हैं। चूंकि हम भीतर देखते ही नहीं, इसलिए भीतर देखने की क्षमता हमारी सिकुड़ गई है। हमारी आंखों ने भीतर मुड़ना बंद कर दिया है।
और बाहर क्या देखोगे? बाहर आनंद नहीं है। बहुत से बहुत क्षणभंगुर सुख मिल सकता है। मगर क्षणभंगुर सुख बड़ा महंगा सौदा है। क्षण भर को मिलता है सुख और पीछे आता है लंबा दुख। वह क्षण भर की झलक, एक किरण की ललक, और फिर गहन अंधेरी रात। तो जितना सुख मिलता है उससे बहुत दुख, बहुत गुना दुख भोगना पड़ता है। फिर इसी आशा में आदमी उसको भोग लेता है कि फिर मिलेगा सुख, फिर मिलेगा, अब मिलेगा, अब मिलेगा। फिर मिलता है; लेकिन फिर वही परिणाम है; फिर पीछे दुख है, विषाद है।
बाहर शाश्वत नहीं मिल सकता। बाहर क्षणभंगुरता ही प्रकृति है। वही नियम है बाहर का। भीतर शाश्वतता नियम है और बाहर क्षणभंगुरता। यूं समझ लो, बाहर का अर्थ होता है क्षणभंगुर और भीतर का अर्थ होता है शाश्वत। और जब तक शाश्वत न मिल जाए तब तक संतुष्टि नहीं हो सकती।
अरे, जो मिले और खो जाए, उसे पाकर भी क्या करोगे? और कितनी धोखाधड़ी करनी पड़ती है, कितनी बेईमानी, तब मुश्किल से मिलता है। और छूट यूं चला जाता है। पानी पर खींची लकीरें हैं। बना भी नहीं पाते और मिट जाती हैं। फिर पत्थर पर भी लकीरें खींचो, वे भी मिट जाती हैं। बाहर सब मिट जाता है। बाहर

जो भी बनाया, वह मिटने को आबद्ध है। और क्या-क्या आदमी नहीं करता है! चार पैसे जुटा लेने को आदमी क्या-क्या नहीं करता है!
एक महिला ने एक भिखारी को चार पैसे दिए और भिखारी से कहा कि भोजन के लायक, वस्त्रों के लायक मिल जाता है न? क्योंकि तुम लंगड़े हो सिर्फ। लंगड़ों को आजकल कौन देता है? मेरे मोहल्ले में एक भिखारी है, वह अंधा है, उसे काफी लोग देते हैं। अंधे पर बहुत दया आती है। लंगड़ा तो कुछ कर भी ले, अंधा बेचारा क्या करे? उस भिखारी ने कहा, रहने दे बाई, अपनी समझ अपने पास रख। पहले मैं अंधा हुआ करता था; मगर लोग झूठे सिक्के पकड़ा देते थे। अब मैं देख रहा हूं कि झूठा सिक्का है, मगर बोल नहीं सकता था। क्योंकि अंधा जो! तब से मैंने वह काम बंद कर दिया। वह धंधा ही बंद कर दिया। तब से मैं लंगड़ा हो गया हूं। अब कम से कम सिक्के तो देख सकता हूं।
क्या-क्या नहीं आदमी को करना पड़ता! अंधे बनो, लंगड़े बनो, क्या-क्या बेईमानियां नहीं करनी पड़तीं।
मैंने सुना है, चंदूलाल एक पुल के पास से गुजरते थे कि एक अंधे ने आवाज
दी कि सेठ, मिल जाए कुछ। अरे, दान से बड़ा कुछ लाभ नहीं है। दान से बड़ा कोई धर्म नहीं है। यहां दोगे एक, वहां पाओगे करोड़ गुना। चंदूलाल ने कहा, मेरे भाई, तू पहले तो यह बता कि कैसे पहचाना कि मैं सेठ हूं? तू तो अंधा है। उतनी दूर से कैसे पहचान लिया कि सेठ हूं?
उस अंधे ने कहा, अब आपसे क्या छिपाना? असल में मैं अंधा नहीं हूं; यहां
तो मेरा एक अंधा मित्र भिखारी है वह बैठा करता है, वह आज सिनेमा देखने गया है। मैं तो लंगड़ा हूं जो पुल के उस तरफ बैठता हूं। मगर मुझे कह गया है कि भई, मेरी जगह बैठना, कोई दूसरा न जम जाए, सो इधर मैं बैठा हुआ हूं। अपनी जगह अपने लड़के को बैठा आया हूं। अंधे का कोई और नहीं है बाल-बच्चा, अकेला ही है।
अंधा सिनेमा देखने गया है! अंधे की जगह परिपूरक का काम लंगड़ा कर रहा है। खूब खेल हैं। और ये सारे खेल हर एक को करने पड़ रहे हैं। खूब धोखे हैं। खूब प्रवंचनाएं हैं। प्रवंचनाओं पर प्रवंचनाएं हैं। तुम जाल के ऊपर जाल खड़े करते जाते हो और उलझते चले जाते हो अपने हाथों से। और बाहर का कोई अंत नहीं है। चलते रहो, चलते रहो जन्मों-जन्मों तक, न हाथ कुछ लगता है, न प्राण भरते हैं, न कोई तृप्ति, न कोई जीवन में सुगंध, न कोई रोशनी, मगर तलाश! जिस दिशा को पकड़ लिया है, चले जा रहे हो, चले जा रहे हो।
लौटो भीतर की तरफ, योगानंद। अपने को देखो। अपने को देखते ही हैरान होओगे, वहां आनंद ही आनंद है। वहां आनंद कतारबद्ध खड़े हैं। वहां एक आनंद नहीं है, एक आनंद के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा--शिखरों से शिखर, और एक से एक बड़ा शिखर है।

क्या इल्म इन्होंने सीख लिए, जो बिन लेखे को बांचे हैं।
और बात नहीं मुंह से निकले, बिन ओंठ हिलाए जांचे हैं।।
दिल उनके तार सितारों के, तन उनके तबल तमांचे हैं।
मुंह चंग जबा दिल सारंगी, पा घुंघरू हाथ कमांचे हैं।।
हैं राग उन्हीं के रंग-भरे, और भाव उन्हीं के सांचे हैं।
जो बे-गत बे-सुरताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।।
जब हाथ को धोया हाथों से, जब हाथ लगे थिरकाने को।
और पांव को खींचा पांवों से, और पांव लगे गत पाने को।।
जब आंख उठाई हस्ती से, जब नयन लगे मटकाने को।
सब काछ कछे, सब नाच नचे, उस रसिया छैल रिझाने को।।
हैं राग उन्हीं के रंग-भरे, और भाव उन्हीं के सांचे हैं।
जो बे-गत बे-सुरताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।।
था जिसके खातिर नाच किया, जब मूरत उसकी आय गई।
कहीं आप कहा, कहीं नाच कहा, औ तान कहीं लहराय गई।।
जब छैल-छबीले सुंदर की, छबि नैनों भीतर छाय गई।
एक मुरछा-गति-सी आय गई, और जोत में जोत समाय गई।।
हैं राग उन्हीं के रंग भरे, और भाव उन्हीं के सांचे हैं।
जो बे-गत बे-सुरताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।।

एक नृत्य है जो अंतरतम में घटित होता है। उस नृत्य को आनंद कहो, स्वर्ग कहो, मोक्ष कहो। जो भी नाम देना हो दो। समाधि कहो, संबोधि कहो, निर्वाण कहो। लेकिन जो भी खजानों का खजाना है, तुम्हारे भीतर है। बाहर मत खोजो!
मुझसे पूछते होः "राज क्या है?"
राज सीधा और साफ है। छिपी हुई कोई बात नहीं है। कोई कुंजियां नहीं हैं। इसीलिए तो धर्म की कोई पाठशाला नहीं हो सकती, कोई विद्यालय नहीं हो सकता, कोई किताब नहीं हो सकती, कोई शास्त्र नहीं हो सकता, क्योंकि धर्म कोई ज्ञान नहीं है।
सत्य प्रिया ने मुझे लिखा है--छोटी-सी संन्यासिनी है, बहुत प्यारी बात उसने लिखी है--कि भगवान, एक बड़ी उलझन खड़ी हो गई। मेरे पिताजी, अद्वैत बोधिसत्व, संस्कृत नहीं जानते, मैं भी संस्कृत नहीं जानती, आप भी संस्कृत नहीं जानते। मेरे पिताजी मुझे कुंजी के द्वारा संस्कृत पढ़ा रहे हैं। हम तीनों को संस्कृत नहीं आती, अब क्या होगा!
कोई अड़चन नहीं है। अगर कुंजी से संस्कृत पढ़ी जा सकती है, तो सत्य प्रिया, पहले कुंजी से संस्कृत तू पढ़ ले, फिर तू पिताजी को पढ़ा देना, फिर पिताजी मुझे पढ़ा देंगे।
कुंजी से जो मामला हल हो सकता है उसमें कोई अड़चन नहीं है। लेकिन कुछ मामले हैं जो कुंजी से हल नहीं होते। इसलिए कोई किसी को सत्य नहीं दे सकता, इसकी कोई कुंजी नहीं होती। सिर्फ इशारे दे सकता है, इंगित कर सकता है, अपनी मौजूदगी तुम्हारे सामने उघाड़ कर रख सकता है, अपने हृदय के द्वार तुम्हारे लिए खोल सकता है। वही मैं कर रहा हूं, योगानंद! अगर तुम यहां इस सत्संग में डूब सको, अगर तुम अपनी बुद्धि को और अपने अहंकार को द्वार पर ही छोड़ आओ, तो बात बहुत सीधी-साफ है--राज कुछ भी नहीं है--बहुत खुली है, दो और दो चार जैसी स्पष्ट है।

है आशिक और माशूक जहां, वां शाह वजीरी है बाबा।
नै रोना है, नै धोना है, नै दर्द असीरी है बाबा।।
दिन-रात बहारें-चोहलें हैं, औ ऐसे सफीरी है बाबा।
जो आशिक हुए सो जाने हैं, यह भेद फकीरी है बाबा।।
हर आन हंसी, हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।
कुछ जुल्म नहीं, कुछ जोर नहीं, कुछ दाद नहीं, फरियाद नहीं।
कुछ कैद नहीं, कुछ बंद नहीं, कुछ जब्र नहीं, आजाद नहीं।।
शागिर्द नहीं, उस्ताद नहीं, वीरान नहीं, आबाद नहीं।
हैं जितनी बातें दुनिया की, सब भूल गए, कुछ याद नहीं।।
हर आन हंसी, हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।
जिस सिम्त नजर कर देखे हैं, उस दिलबर की फुलवारी है।
कहीं सब्जी की हरियाली है, कहीं फूलों की गुलक्यारी है।।
दिन-रात मगन खुश बैठे हैं, और आस उसी की भारी है।
बस आप ही वो दातारी है, और आप ही वो भंडारी है।।
हर आन हंसी, हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।
हम चाकर जिसके हुस्न के हैं, वह दिलबर सबसे आला है।
उसने ही हमको जी बकसा, उसने ही हमको पाला है।।
दिल अपना भोला-भाला है, और इश्क बड़ा मतवाला है।
क्या कहिए और "नजीर" आगे, अब कौन समझने वाला है।।
हर आन हंसी, हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।
योगानंद, मस्ती का कोई बहुत बड़ा राज नहीं है। हम जन्मते ही हैं स्वभाव
से मस्ती में। आनंद के झरने हमारे भीतर वैसे ही बह रहे हैं जैसे जमीन के भीतर पानी के झरने बह रहे हैं। जरा-सी खुदाई करनी है, और कुआं बन गया। जरा- सी मिट्टी की पर्तें उखाड़ कर फेंक देनी हैं, और झरने प्रकट हो गए। जरा अपने

भीतर खुदाई करनी है, और प्रभु का साम्राज्य तुम्हारा है। और जो करना है वह ना-कुछ है, और जो मिलना है वह बहुत कुछ है, सब कुछ है।
इसलिए मिलने को ध्यान में रखो तो यह छोटा-मोटा श्रम जो ध्यान के लिए करना होता है, कोई श्रम नहीं है। यह सौदा सस्ता है। नासमझ हैं वे लोग जो इस सौदे से वंचित हैं। जरा-सा श्रम, और विराट उपलब्धि।
तुम पूछते होः "आप सदा आनंदमग्न हैं, इसका राज क्या है?"
अपने को पहचाना, अपने को जाना, बस, सारे शास्त्रों का सार उपलब्ध हो गया। यूं तो दौड़ो तुम दूर-दूर पृथ्वी पर और कुछ भी न पा सकोगे; और रुक जाओ भीतर और सब पा लो। और मत यह पूछो कि मैं कब इस मस्ती को पा सकूंगा? कब की बात ही क्यों उठानी? जब अब और अभी हो सकता हो तब कब की बात ही क्यों उठानी? कल पर टालना ही क्यों? स्थगित ही क्यों करना? यह तो बात ही मत पूछो कि कब? मुझसे तो जब भी पूछना हो तो अब के बाहर मत जाओ। कल का कोई अस्तित्व नहीं है। यह क्षण हमारे हाथ में जो है, इसके पार और किसी चीज का भरोसा न करना। कल आए न आए। कल आया कब? और तुम कल पर टाल दो और यह आज यूं ही खो जाए, तो बड़ी भूल हो जाएगी। और ऐसे ही लोग आज को खो रहे हैं। कल की चिंता कर रहे हैं, आज को गंवा रहे हैं। कल पर सब दांव लगा रहे हैं, आज को बलिदान चढ़ा रहे हैं। और आज है। कल कहां है? जिंदगी आज है, अभी है।
और मैं तुमसे कहता हूं कि अभी उतर जाओ अपने में। कोई रोक नहीं रहा। घर तुम्हारा, द्वार तुम्हारा, जाना तुम्हें, जाना अपने में, कोई अड़चन नहीं डाल सकता! हाथों पर जंजीरें हो सकती हैं, पैरों में बेड़ियां हो सकती हैं, चारों तरफ कारागृह की दीवारें हो सकती हैं, बंदूक लिए द्वार पर खड़ा संतरी हो सकता है, दरवाजे पर बड़े ताले लटके हो सकते हैं, मगर तुम्हें अपने भीतर जाने से कोई भी नहीं रोक सकता। न वहां पहरा कोई लगा सकता है, न कोई जंजीरें डाल सकता है। जिस व्यक्ति को भीतर जाना आ गया, वह कारागृह में भी मुक्त है। और जिसको भीतर जाना न आया, वह मुक्त होकर भी क्या खाक मुक्त है! उसकी स्वतंत्रता दो कौड़ी की है। उसकी स्वतंत्रता राजनैतिक है, ऊपरी है, सतही है।
स्वतंत्रता का असली आयाम आध्यात्मिक है। और वह आयाम अभी खुलता है, उसे कल पर भूल कर भी मत छोड़ना।
लेकिन लोग इसी गणित से जी रहे हैं। हमेशा टालते चले जाते हैं। हमेशा हटाए जाते हैं। जो सार्थक है, वह कल करेंगे; और जो व्यर्थ है, वह अभी करेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन को उसके मनोवैज्ञानिक ने एक सलाह दी--क्योंकि नसरुद्दीन ने उससे कहा कि मेरा दफ्तर बरबाद हुआ जा रहा है। कोई काम ही नहीं करता! लोग पैर पसारे बैठे रहते हैं। मैं जाता हूं तो बस फाइलें पलटने लगते हैं, मैं हटा कि फाइलें अपनी जगह और उनके पैर टेबलों पर फैल जाते हैं। कोई काम ही नहीं हो रहा है, बरबाद हुआ जा रहा हूं! कुछ राह बताओ! मनोवैज्ञानिक ने कहा कि ऐसा करो, यह पुराना सूत्र है, बड़े सयानों ने कहा है--और सयाने कुछ ऐसे ही नहीं कह जाते--इसे हर एक दफ्तर में अपने, हर कमरे में, हर टेबल पर लटका दो। यह लोगों के ध्यान में रहेगा तो कुछ अकल आएगी। पुराना सूत्र--तुम्हारा जाना हुआ सूत्र। लटका दिया नसरुद्दीन ने वह सूत्र सब पर सुंदर अक्षरों में, हर टेबल के सामने, कि हर क्लर्क, हर चपरासी की नजर उस पर पड़ती रहे; मैनेजर की, सेल्समैनों की, सबकी नजर में आता रहे।
दफ्तर उसी से सजा दिया।
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करौगे कब्ब।।
सीधी बात, साफ बात, कि जो कल करना हो वह आज कर ले; और जो आज करना हो वह अभी कर ले; क्योंकि पल भर का भरोसा नहीं। कब प्रलय हो जाएगी, कब मौत आ जाएगी, कब यह रेत की दीवार ढह जाएगी, एक क्षण का भी भरोसा मत कर! कल की बात आज, आज की अभी कर ले। ताकि जो करना है वह हो जाए।
पांच-सात दिन बाद मनोवैज्ञानिक को पता चला कि नसरुद्दीन अस्पताल में भर्ती है। फ्रैक्चर हो गया है। एक नहीं कई फ्रैक्चर हो गए हैं। हाथ-पैर-गर्दन, सब टूट गए हैं। देखने गया बेचारा। पूछा कि हुआ क्या? कोई दस-बारह मंजिल ऊपर से गिर पड़े या क्या हुआ? इतने फ्रैक्चर! पैर भी टूट गया, हाथ भी

टूट गया, गर्दन भी टूट गई--पूरे शरीर पर पट्टियां बंधी हैं; आंखें दिखाई पड़ती हैं, मुंह दिखाई पड़ता है, बाकी सब... खोपड़ी भी खुल गई है!
नसरुद्दीन ने कहा, भैया, तुमने जो सिद्धांत दिया था उसका ही परिणाम है। मनोवैज्ञानिक ने कहा, मैंने कौन-सा सिद्धांत तुम्हें ऐसा दिया था जिसमें तुम्हारा सारा शरीर क्षत-विक्षत हो जाए? नसरुद्दीन ने कहा, वही सिद्धांत जो तुमने दिया था, वही तख्तियां जो मैंने खर्च करवा कर जगह-जगह टंगवाईं, उसका यह फल भोग रहा हूं।
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करौगे कब्ब।।
मनोवैज्ञानिक ने कहा, उसका इससे क्या संबंध? कोई सोच भी नहीं सकता कि हड्डियों का टूट जाना उस सिद्धांत से संबंध रखता है। अरे, नसरुद्दीन ने कहा, पहले पूरी बात सुनो! मेरा जो कोषाध्यक्ष है, वह तिजोड़ी लेकर भाग गया। और लिख गया चिट्ठी कि काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब; और पल में परलय होएगी, बहुरि करौगे कब्ब। लिख गया चिट्ठी कि मैं बहुत दिन से सोच रहा था कि तिजोड़ी लेकर भाग जाऊं, लेकिन सोचता था--भाग जाऊंगा, जल्दी क्या पड़ी है! अरे कल कर लूंगा, परसों कर लूंगा। मगर आपने भी क्या सिद्धांत लटका दिया कि मैंने भी सोचा कि बात तो सच्ची है, बात तो पते की है। सो मैं तो जा रहा हूं तिजोड़ी लेकर! और मेरा मैनेजर मेरी टाइपिस्ट लड़की को भगा कर ले गया। और वह भी लिख कर रख गया। तख्ती जो मैंने उसकी टेबल पर टांगी थी, उसी तख्ती पर नोट लिख गया है कि आपने जो सिद्धांत दिया, उसके लिए बहुत धन्यवाद! भागने की तो बहुत दिन से सोच रहा था। और नसरुद्दीन ने कहा कि वह टाइपिस्ट ही नहीं थी मेरी, मेरी प्रेयसी भी थी। दुष्ट ले गया! और यह सब तो ठीक है, मेरा जो चपरासी है वह एकदम भीतर घुस आया और लगा मुझे पीटने। मैंने पूछा, तू क्या करता है? उसने कहा कि जिंदगी से मैं यही सोच रहा था कि कभी मौका मिल जाए तो हड्डी-पसली तोड़ दूं इस दुष्ट की! ... कौन नौकर अपने मालिक को क्षमा कर पाता है! करना भी चाहे तो कैसे कर सकता है! ... और जब आपने तख्ती लटकाई तो मैंने कहा, अब मत चूको! मत चूक चौहान! फिर मैं तत्क्षण घुस आया।
मनोवैज्ञानिक ने कहा, मैं बहुत दुखी हूं कि उन दुष्टों ने क्या अर्थ निकाला। बहुत दर्द होता होगा? नसरुद्दीन ने कहा, नहीं, बहुत दर्द तो नहीं होता, जब हंसता हूं तब होता है। मनोवैज्ञानिक ने कहा, हंसते काहे के लिए हो?
उसने कहा, हंसता इसलिए हूं कि सयाने भी क्या पते की बातें कह गए हैं!
एक ही बात मानी और क्या फल भोग रहा हूं! हंसी कभी-कभी आ जाती है! कि वाह री दुनिया, कैसे-कैसे सिद्धांत बना गए लोग! और कैसे-कैसे मानने वाले लोग, समझने वाले लोग! क्या प्यारी कहावत थी और क्या अर्थ निकला और क्या फल भोगा! इसलिए कभी-कभी हंसी आ जाती है। हंसी आ जाती है तो बहुत दर्द होता है! क्योंकि सब हड्डियां टूट गई हैं। जैसे ही हंसी आती है तो खड़खड़-खड़खड़ होने लगती है। मगर हंसी रुकती भी नहीं है, रह-रह कर कभी न कभी आ जाती है। सब बरबाद हो गया एक तख्ती लटकाने से! और बात ऐसी पते की थी कि जंची थी मुझको भी! तुम्हारा ही कसूर नहीं है, कसूर मेरा भी है। मगर भैया, किसी और को ऐसी सलाह आगे से मत देना! जो मुझ पर गुजरी, वह मेरे दुश्मनों पर भी न गुजरे! और तुम अपनी ऐसी सलाहें बहुत सोच-समझ कर दिया करो! और अगर देना ही हो तो पहले खुद अपने दफ्तर में प्रयोग किया करो, ताकि अनुभव के द्वारा दे सको!
लोग टालते हैं। और बड़ा मजा यह है कि गलत को नहीं टालते। अगर कोई तुम्हें गाली दे तो तुम यह नहीं कहोगे कि अच्छा, ठीक है, सोचेंगे, विचारेंगे, पूछताछ करेंगे, चार जनों से मशविरा करेंगे, फिर जो उचित होगा वह जब समय आएगा तब करेंगे। जब कोई गाली देता है तो फिर न तुम समय देखते न घड़ी--लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम--वह तो तुम उसी वक्त ठीक करते हो उसको! तत्क्षण। एक क्षण की देरी नहीं होती। उधर गाली निकली कि इधर तुम तैयार हुए, कि तुमने ताल ठोंकी, कि तुमने और दुगने वजन की गाली निकाली! हां, अगर दान करना हो तो तुम कहते हो, सोचेंगे, विचारेंगे। संन्यास को लोग सोचते हैं वर्षों।
एक महिला ने पूछा है कि मैं आपकी चाहक हूं, आपके विचारों से प्रेम है, लेकिन संन्यास नहीं ले सकती हूं। तो क्या मुझे आपका आशीर्वाद न मिलेगा?

मेरा आशीर्वाद तो मिल सकता है, मगर तुम तक पहुंचेगा नहीं। क्योंकि चाहक होना पर्याप्त नहीं है, उसके लिए कुछ चुकाना भी तो चाहिए। कुछ थोड़ा साहस भी करना चाहिए। थोड़ा कुछ दांव पर भी लगाना चाहिए। मैं तो आशीर्वाद दे रहा हूं, सवाल मेरे देने का नहीं है, सवाल तुम्हारे लेने का है। और इससे बड़ा आशीर्वाद तुम्हें क्या दूं कि संन्यास फलित हो जाए। और इससे बड़ा क्या आशीर्वाद होगा? मुझसे आशीर्वाद मांगो तो पहला तो यही आशीर्वाद होगा कि हो जाओ संन्यासी! वहीं से मुश्किल शुरू हो जाएगी।
तुम क्या सोचती हो कि मैं आशीर्वाद दूंगा कि पुत्रवती हो जाओ, कि किसी चुनाव में जीत जाओ, कि खूब रास्ते के किनारे धन से भरा हुआ घड़ा मिल जाए, कि छप्पर फूटे और एकदम नोटों की वर्षा हो जाए--क्या मैं तुम्हें ऐसा आशीर्वाद दूंगा? --कि गोद भरी-पूरी हो जाए। ऐसा आशीर्वाद तो मैं नहीं दे सकता। मैं तो आशीर्वाद दूंगा तो पहला तो आशीर्वाद संन्यास ही होगा। क्योंकि उससे बड़ा कोई सत्य नहीं है।
इस संसार में यूं जीना कि संसार तुम्हें छू न पाए, संन्यास है। संसार में रहना और संसार तुम में न रहे, बस इतनी ही तो संन्यास की परिभाषा है। गुजर जाना इस काली कोठरी से, मगर कालिख तुम्हें छू न पाए। कबीर जैसा कहते हैंः ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया; खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं। बस संन्यास का इतना ही अर्थ है कि चादर को वैसा का वैसा रख देना, दाग न लगे।
लेकिन लोग अनेक हैं ऐसे--इस महिला ने पूछा ऐसा ही नहीं, और भी मेरे पास रोज प्रश्न और पत्र आते हैं--कि आपसे मिलना है, आपका आशीर्वाद चाहिए, लेकिन संन्यास लेने की हिम्मत नहीं है।
जरा-सी हिम्मत नहीं है! मरने की हिम्मत है? जीने की हिम्मत है? संन्यास लेने की हिम्मत नहीं है! जन्म तक लेने की हिम्मत कर ली तुमने, एक बार न सोचा कि किस संसार में जन्म ले रहे हैं! और भारत में जन्म गए। न संकोच आया, न लाज-शरम लगी। और नंग-धड़ंग कूद पड़े! यह भी नहीं कि एक लंगोटी पहन कर आते, कि कम से कम एक घूंघट ही ओढ़ लेते, नंग-धड़ंग एकदम कूद पड़े! यह भी न देखा कि कहां कूद रहे हैं, वैसे ही बहुत लोग उपद्रव कर रहे हैं, चारों तरफ भीड़-भाड़ मची है--कोई फिकर नहीं, कोई चिंता नहीं।
जन्म लेते समय तुमने सोचा नहीं, मरते समय भी तुम सोचोगे नहीं--यूं जन्म हो गया, यूं मौत हो जाएगी। एक संन्यास ही है जो तुम सोच सकते हो, बाकी तो कुछ और सोचने का है नहीं। दुनिया में तीन ही तो बड़ी चीजें हैं। एक जन्म, एक मृत्यु और एक संन्यास। जन्म और मृत्यु तुम्हारे हाथ में नहीं, मजबूरियां हैं। संन्यास तुम्हारी स्वतंत्रता है। उसमें ही संकोच है। तो स्वतंत्रता से वंचित जो अपने को कर रहा है, वह आशीर्वादों को लेना भी चाहे तो ले न पाएगा।
मेरा आशीर्वाद तो एक ही हो सकता है कि तुम इस संसार से अछूते गुजर जाओ!
जल में कमलवत! और तुम्हारी तकलीफ यह है कि संन्यास तुम ले नहीं सकते--और वही मेरा आशीर्वाद है!
योगानंद, इतना ही करो कि जो व्यर्थ है, उसको कल पर टाल देना। कोई गाली
दे तो कहना, चौबीस घंटे बाद आकर जवाब दूंगा। और कोई प्रेम मांगे तो अभी देना। फिर एक पल की देर न करना।
और बाहर देखने योग्य क्या है? और सब देख तो चुके! काफी तो देख चुके! सुख भी देखे, दुख भी देखे; सफलता भी देखी, असफलता भी देखी; धन भी देखा, निर्धनता भी देखी; सब तो देख चुके, अब देखने को बाहर बचा क्या है! अब भीतर और देख लो। इसके पहले कि मौत आए और पर्दा गिर जाए, भीतर और देख लो। और भीतर देख कर ही तुम पाओगे कि अब न कोई मौत है, न कोई जन्म है। अब पर्दा कोई गिराना भी चाहे तो नहीं गिर सकता।
मगर हम मूर्च्छा में जी रहे हैं। हमारी मूर्च्छा बड़ी अपूर्व है।
पंजाब केसरी में कल मैं--एक अखबार है जालंधर का--उसमें यह खबर देख रहा था। खबर है कि राजधानी में रामलीला चल रही थी। दृश्य था शूर्पणखा की नाक काटने का। जब वह राम के पास आई तो पास के ही होटल में रिकार्ड पर गीत बजा-- आप जैसा कोई मेरी जिंदगी में आए तो बात बन जाए

और शूर्पणखा इस धुन पर नाचने लगी। जनता भी चकित हुई होगी। जो सो गए थे
वे भी जग गए होंगे। इधर उसकी नाक कटी उधर फिर गाना बजा--
शीशा हो या दिल हो आखिर टूट जाता है
और शूर्पणखा फिर मटक-मटक कर नाचने लगी।
ऐसी बेहोशी है! इस बेहोशी को तोड़ो। ये बाहर के रिकार्ड होटलों में बज रहे हैं, इनको सुन-सुन कर कब तक नाचते रहोगे? भीतर भी एक धुन बज रही है-- शून्य की--एक बांसुरी बज रही है, अनाहत का नाद बज रहा है, सुरति जग रही है, उसे सुनो।
पहले दिन के खेल के बाद दोनों टीमों ने डिनर के साथ छक कर जाम तोड़े। खुमारी अगली सुबह तक बाकी थी। अगले दिन खेल की शुरुआत पर पहली ही बाल पर रन लेना शुरू हो गया। क्रीज के दोनों खिलाड़ी बेतहाशा दौड़ रहे थे। तभी बालर ने उचक कर धीरे से एंपायर के कान में कहाः "दौड़ने दो निगोड़ों को, अभी मैंने गेंद फेंकी ही नहीं, यह रही मेरी मुट्ठी में!" होश किसको है! निगोड़े दौड़ रहे हैं, भागे जा रहे हैं--और गेंद अभी फेंकी ही नहीं गई है!
मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि मुल्ला, आपके कुर्ते के कोने पर
यह गांठ कैसी बंधी है? नसरुद्दीन कहने लगाः "मेरी पत्नी का पत्र पोस्ट में डालने की याद बनी रहे, इसलिए।" तो मैंने पूछाः "फिर आपने वह पत्र पोस्ट कर दिया न?" नसरुद्दीन ने कहाः "नहीं जी, पत्नी वह पत्र मुझे देना ही भूल गई!" आदमी करीब-करीब बेहोशी में जी रहा है--भयंकर बेहोशी में जी रहा है! और
जब तक बेहोशी है तब तक दुख है। और बेहोशी अर्थात बाहर दौड़ना। और होश अर्थात भीतर ठहरना।
योगानंद, भीतर ठहर जाओ। जैसे कोई ज्योति ठहरी हो, जहां हवा का कोई झोंका भी न आता हो। ऐसी जब तुम्हारी चेतना भी एक ज्योति की तरह ठहर जाएगी, तो तुम पाओगेः आनंद उतर आया। उतर आया कहना ठीक नहीं, था ही, लेकिन ज्योति के ठहरते ही पता चल गया है। अब तक पता न था; अब पहचान हो गई।
आनंद हमारा स्वभाव है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप कहते हैं कि बच्चे सदा प्रतिभाशाली होते हैं लेकिन समाज उनकी प्रतिभा को नष्ट कर देता है। यह बात मेरी समझ में नहीं आती!

कन्हैयालाल गोरक्षक, आएगी भी नहीं! बीसवीं सदी में कम से कम यह गोरक्षक होना तो छोड़ो। कन्हैयालाल काफी हो। उतने से ही पता चल जाता हैः जय हो कन्हैयालाल की! और गोरक्षक और!
मुल्ला नसरुद्दीन अपने गधे पर से गिर गया; तो मैं उसे देखने गया। पता चला उसकी पत्नी से मुझे कि गधे ने बड़ा गजब का काम कर दिया। मुल्ला तो गिर गया गधे से गड्ढे में, उठ न सके, गधा भागा गया और डाक्टर को लिवा लाया। नसरुद्दीन बिस्तर पर ही पड़ा-पड़ा बोला कि अरे, गधा ही है बिल्कुल! क्या खाक डाक्टर को बुला लाया! अरे, पशु-चिकित्सक को बुला लाया दुष्ट!
अब पता नहीं तुम्हीं को न बुला लाया हो, कन्हैयालाल गोरक्षक! क्योंकि तुम्हारे नाम से ही लगता है कि पशु-चिकित्सक हो या क्या मामला है? समझ तो तुम खुद ही गंवा बैठे हो। अब तुमको क्या समझ में आए--पहले समझ तो होनी चाहिए तो कुछ समझ में आए! यही तो मैं कह रहा हूं कि बच्चे तो प्रतिभाशाली पैदा होते हैं--न तो तुम कन्हैयालाल पैदा हुए थे, न गोरक्षक; जब पैदा हुए थे तो कोरी किताब थे; लोगों ने लिख दियाः कन्हैयालाल गोरक्षक! तब से तुम कन्हैयालाल गोरक्षक हो गए। लोग जो लिख दें! कोई लिख देगा--हिंदू, कोई लिख देगा--मुसलमान, कोई लिख देगा--ईसाई, वही तुम हो जाओगे।
बच्चे तो कोरे कागज की तरह पैदा होते हैं, फिर लिखावटें हम लिख देते हैं, गंदा हम कर देते हैं। फिर लिखावटों पर लिखावटें लिख दी जाती हैं। और धीरे-धीरे कोरा कागज छिप जाता है, कालिख ही कालिख हो जाती है।
राजस्थान में प्यारी महिला थी भूरबाई। मैंने जब पहला शिविर लिया, तब
से ही वह शिविरों में आती थी। पहले शिविर में भी आई थी। उसके भक्त भी आए थे। राजस्थान में उसकी प्रतिष्ठा थी। प्यारी महिला थी। अत्यंत सरल थी। जिसको साधु कहें, वैसी साधु थी। तुम्हारे महात्माओं जैसी नहीं, सच में ही

साधु थी। उसके भक्तों ने मुझसे कहा कि आपकी यह मानती है। आपके सिवाय यह किसी की मानती नहीं। आप इतना कह दो इससे--हमारी प्रार्थना है--कि अब उम्र बहुत हो गई, सत्तर पार कर गई, अब ज्यादा दिन जीएगी भी नहीं; तो अपना अनुभव लिख दे। खुद तो लिख नहीं सकती, मगर हम लिख लेंगे--लिखवा दे।
कालीदास भाटिया, एडवोकेट थे हाईकोर्ट के, उन्होंने वकालत छोड़ दी थी
और भूरबाई के कपड़े धोते थे। उन्होंने ही मुझसे यह कहा कि आपसे प्रार्थना है इतनी। इसके पास रह कर बीस साल में मैंने जाना है कि बहुत हीरे-जवाहरात हैं। मगर न लिखवाती है, न लिखने देती है।
मैंने भूरबाई को कहा कि ये बेचारे इतने परेशान हैं, तो लिखवा दे! उसकी उम्र तो सत्तर साल थी, लेकिन वह मुझसे कहती थीः बापजी! उसने कहा, बापजी, आप कहें तो ठीक। लिखवा दूंगी। यह दुष्ट कालीदास मेरे पीछे पड़ा ही है बहुत दिन से, इसने यह तरकीब अच्छी निकाली कि आपको भी बीच में ले लिया, अब आप कहते हैं तो लिखवा दूंगी। दुबारा जब आएंगे, तो जरूर कालीदास जो कहता है, यह काम पूरा हो जाएगा।
दुबारा जब मैं गया तो सारे भक्त एक बड़ी सुंदर लकड़ी की मंजूषा में ताला लगाए हुए उठा कर सिर पर--कालीदास भाटिया ही उसे सिर पर रखे हुए थे--एक सुंदर मंजूषा को लेकर आए। भूरबाई भी आई और हंस रही थी बहुत। और कालीदास ने कहा, आप उदघाटन कर दें। भूरबाई ने किताब लिखी है--हमको तो लिखने नहीं दी इसने। और हम तो यह जानते ही नहीं थे कि यह लिखना भी जानती है! मगर यह बिल्कुल ताला लगा कर चुपचाप लिखती थी। कहती थी कि बापजी आएंगे, उनसे उदघाटन करवा दूंगी। सो हमें तो पता ही नहीं इसने क्या लिखा है, हम बड़े उत्सुक हो रहे हैं देखने को कौन-सी किताब लिखी है, क्या लिखा है। अब यह चाबी भूरबाई के पास है, वह आपको चाबी देगी, यह पेटी आप खोल दें और किताब निकाल कर सबके सामने रख दें।
मैंने पेटी खोली। किताब क्या थी, एक छोटी-सी किताब, दस-बारह पन्ने। होगी एक-दो इंच की लंबाई और कोई एक-डेढ़ इंच की चौड़ाई और दस-बारह पन्ने। और मैंने किताब खोल कर देखी, वह बिल्कुल काली है। उसमें कुछ लिखा ही नहीं! और सफेद पन्ने भी नहीं, बिल्कुल काले। और भूरबाई खिलखिला कर हंसने लगी। मैंने कहा कि ठीक, यह उदघाटन हो गया। यह भूरबाई ने अच्छा शास्त्र लिख दिया। अरे, दूसरों ने लिखे हैं तो वे थोड़ा-बहुत काला करते हैं, इसने इतना लिखा है कि बिल्कुल काला कर दिया। लिखती गई, लिखती गई... ।
भूरबाई ने कहा कि मैंने पहले ही कहा था कि बापजी पहचान जाएंगे। अरे, मैंने भी कहा कि जब लिखना ही है तो क्या कंजूसी करना, दिल खोल कर ही लिख दो! एक दफा तो लिखनी है जिंदगी में, सो लिख ही दो। यह कालीदास भी तृप्त हो जाए। और कालीदास है यह। सो इसके ही नाम से मुझे याद आया कि काला ही कर दूं, यही दुष्ट पीछे पड़ा है! तो यह रहा ग्रंथ!
उदघाटन हो गया। भक्तगण तो बड़े निराश हुए कि यह तो बड़ा पागलपन हो गया।
हम तो मंजूषा इतना बैंड-बाजा बजा कर लाए, क्या पता था कि ऐसी मजाक हो जाएगी! मगर बात उसने ठीक कही कि अब क्या कंजूसी करनी। जब लिखना ही है तो पूरा ही लिख दिया।
और तुम भी कंजूसी नहीं करते हो, बच्चों के साथ वही हो रहा है। मां-बाप लिख रहे हैं, पड़ोसी लिख रहे हैं, मोहल्ले वाले लिख रहे हैं, स्कूल में शिक्षक लिख रहे हैं, अध्यापक लिख रहे हैं, प्रोफेसर लिख रहे हैं--लिखे ही जा रहे हैं लोग--नेता और समाज-सुधारक और जो मिल जाए, वही लिख रहा है। अरे, बच्चों को कौन सलाह नहीं देता? बिन मांगी सलाहें लोग दे रहे हैं। जिन सलाहों पर खुद कभी नहीं चले, उन पर बच्चों को चलाने की कोशिश कर रहे हैं। गूद डालते हैं बिल्कुल, काला कर देते हैं बच्चों को। उनकी प्रतिभा नष्ट हो जाती है।
अब जो हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, उसमें क्या खाक प्रतिभा होगी! प्रतिभा हो, तो हिंदू नहीं हो सकता। तो उसे हिंदू शास्त्रों में जो कचरा है निन्यानबे प्रतिशत, वह दिखाई पड़ेगा। तो कैसे हिंदू होगा? अगर वह प्रतिभाशाली हो, तो जैन नहीं हो सकता, बौद्ध नहीं हो सकता, मुसलमान नहीं हो सकता। बुद्ध हो सकता है, कृष्ण हो सकता है--होगा--जीसस हो सकता है, मोहम्मद हो सकता है--होगा--लेकिन मुसलमान नहीं हो सकता, ईसाई नहीं हो सकता।

ख्याल रहे, ईसा ईसाई नहीं थे और न बुद्ध बौद्ध थे और न कृष्ण हिंदू थे। कृष्ण ने हिंदू शब्द भी नहीं सुना था। कभी सोचा भी न होगा कि यह शब्द भी कभी इस जाति की खोपड़ी पर लिख जाएगा। ये जो लोग लिख गए, वे दूसरे थे। यह हिंदुओं का अपना शब्द भी नहीं है, यह भी उधार है--ऐसी उधारी है कि कुछ भी अपना नहीं है, सब उधारी है, शब्द भी उधार है।
पहली दफा इस देश में जो लोग आए--हूण और बबर--उनकी भाषा में स के लिए ह
का उच्चारण होता है, तो सिंधु नदी को हिंदु नदी कहते थे। और सिंधु नदी के आस-पास जो रहते थे वे हिंदू। असल में हिंदू का अर्थ होता हैः सिंधु। हिंदी का अर्थ होता हैः सिंधी। सिर्फ सिंधी को हक है यह कहने का कि मैं हिंदू हूं। बाकी किसी को नहीं। सो सिंधी तो और आगे चले गए हैं, वे कहां हिंदू वगैरह! उल्लासनगर में उन्होंने एक फैक्ट्री खोल रखी है। उल्लासनगर में जो चीज न बनती हो वह समझो दुनिया में कहीं नहीं बनती।
मैंने सुना है कि एक प्रतियोगिता हुई कि दुनिया में सबसे ज्यादा कारीगरी कहां होती है। तो एक तार पर--इतना बारीक तार अमरीका में बना कि उतना बारीक तार कोई न बना सके। खाली आंख से दिखाई न दे। बाल से भी पतला। जब तक उसको तुम विशेष यंत्रों से न देखो, दिखाई न पड़े। उस तार को लेकर वे लोग जर्मनी गए। जर्मनी के कारीगरों ने उस तार में एक छेद कर दिया। दंग रह गए वे! हद कर दी कि तार में छेद कर दिया! फिर वे जापान गए। जापानियों ने उस तार पर बाइबिल का एक वचन लिख दिया। हैरान हो गए! अब उन्होंने कहा, अब इसके आगे कौन कारीगरी कर सकेगा! मगर उन्होंने कहा कि उल्लासनगर जाओ। अभी एक जगह और बाकी है--उल्लासनगर। कहा, उल्लासनगर कहां है?
पता लगा कर उल्लासनगर आए। उल्लासनगर में एक सिंधी कारीगर ने उस पर लिख दियाः मेड इन यू.एस.ए.। बड़ी कारीगरी से लिखा। लेकिन पूछा उन्होंने कि हद कर दी, रहते हिंदुस्तान में हो, उल्लासनगर हिंदुस्तान में है, मेड इन यू.एस.ए. क्यों लिखते हो? अरे, मेड इन इंडिया क्यों नहीं? उन्होंने कहा, यू.एस.ए. क्या तुम्हारे बाप का है? सिंधियों का है। अरे मेड इन यू.एस.ए. का मतलब होता हैः मेड इन उल्लासनगर सिंधी एसोसिएशन। यू.एस.ए. यानी उल्लासनगर सिंधी एसोसिएशन।
वे तो कहां हिंदुस्तान वगैरह को मानते हैं, वे तो बहुत आगे निकल चुके हैं। हर चीज मेड इन यू.एस.ए. बना देते हैं। बनती उल्लासनगर में है।
सिर्फ सिंधी को हिंदू अगर कहो तो चल सकता है। बाकी तो किसी को हिंदू कहने की कोई जरूरत नहीं है। मगर उसी हिंदू शब्द से सारे शब्द बने हैं। फिर जब ग्रीक भारत आए--यूनानी--तो उनकी भाषा में और फर्क हो गया। वे हिंदू को, सिंधु को, सिंधस कहते थे; या हिंदस। यूनान तक पहुंचते-पहुंचते सिकंदर के साथ यह शब्द इंदस हो गया, और इंदस से इंडिया।
इंडिया और हिंदू, दोनों सिंधु शब्द से ही पैदा हुए हैं; और दोनों विजातियों ने दिए हैं, तुम्हारा दिया हुआ शब्द भी नहीं है। प्रतिभा की कहां बात करते हो! कोई प्रतिभाशाली होगा जो हिंदू है, कि मुसलमान है, कि ईसाई है! प्रतिभाशाली व्यक्ति केवल मनुष्य होता है। और छोटे बच्चे मनुष्य की तरह पैदा होते हैं। और तुम्हें उनकी प्रतिभा हर जगह दिखाई पड़ सकती है। भतीजाः "चाचा जी, आप मेरे जन्म-दिवस पर जो एक नन्हा-सा खिलौना लाए थे, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद!"
चाचा ने कहाः "बेटे, इसमें धन्यवाद की क्या बात है?"
भतीजे ने कहाः "वैसे मेरी भी यही राय है। लेकिन मम्मी ने कहा कि फिर भी धन्यवाद तो देना ही चाहिए।"
प्रतिभा!
छोटा बच्चा अपने बाप से पूछ रहा हैः "आप कहां पैदा हुए थे, पापा?"
पापा ने कहाः "बंबई में।"
"और मम्मी?"
"मम्मी पैदा हुई थी मद्रास में।"
"और मैं कहां पैदा हुआ था?"
बाप ने कहाः "कलकत्ते में।"
तो बच्चे ने पूछाः "पापा, एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि हम तीनों एक साथ मिल कैसे गए?"

कहां बंबई, कहां मद्रास, कहां कलकत्ता! क्या गजब हो गया!
एक महिला ने सड़क के किनारे किसी बच्चे को सिगरेट पीते देखा, तो वह बोलीः "क्या तुम्हारे पिता को मालूम है कि तुम सिगरेट पीते हो?"
बच्चा बोलाः "नहीं। परंतु क्या आपके पति को मालूम है कि आप बाजार में, सरे बाजार में रुक-रुक कर अजनबी लोगों से बातें करती हैं?"
बच्चे प्रतिभाशाली हैं। जरा उनको देखो, उनकी बातें समझो। तुम उन्हें बड़े लोगों से ज्यादा बुद्धिमान पाओगे।
आज इतना ही।

लगन महूरत झूठ सब
दसवां प्रवचन

समर्पण ही सत्संग है

पहला प्रश्नः ओशो, दुर्लभं त्रैयमेवैवत देवानुग्रह हेतुकम्। मनुष्यत्वं मुमुक्षुयं महापुरुषसंश्रयः।।
मनुष्य देह, मुमुक्षा और महापुरुष का आश्रय, ये तीनों अति दुर्लभ हैं--अलग-अलग होकर भी। जब तीनों एक साथ मिलें तब तो परमात्मा का अनुग्रह ही है। तब मोक्ष करीब है। फिर भी आप चूक सकते हैं।
ओशो, हमारे लिए इस सुभाषित की विशद व्याख्या करने की अनुकंपा करें।

सहजानंद, मनुष्य एक चौराहा है, जहां से सब दिशाओं में मार्ग जाते हैं। यही उसकी विशिष्टता है। अनंत संभावनाएं मनुष्य के लिए अपना द्वार खोले खड़ी हैं। मनुष्य जो भी होना चाहे हो सकता है। पशुओं का भाग्य होता है, मनुष्य का कोई भाग्य नहीं। कुत्ता कुत्ते की तरह ही पैदा होगा, कुत्ते की तरह ही जीएगा, कुत्ते की तरह ही मरेगा। इससे अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं। मनुष्य कोरे कागज की भांति पैदा होता है, जिस पर कोई भी लिखावट नहीं है, फिर जो लिखता है स्वयं, वही उसका भाग्य बन जाता है। मनुष्य अपना भाग्य-निर्माता है, अपना स्रष्टा है।
अगर हाथी-घोड़े-गधे ज्योतिषियों के पास जाएं तो समझ में आता है। मनुष्य जाए तो बात बिल्कुल समझ में नहीं आती। मनुष्य का कोई भाग्य नहीं है जिसे पढ़ा जा सके। मनुष्य तो केवल एक अनंत संभावनाओं, अनंत बीजों की भांति पैदा होता है। फिर जिस बीज को बोएगा, जिस बीज पर श्रम करेगा, वे ही फूल उसमें खिल जाएंगे। कोई विधाता नहीं है। हम प्रतिपल अपने प्रत्येक विचार, अपने प्रत्येक कृत्य से स्वयं का निर्माण कर रहे हैं। इसलिए एक-एक कदम सूझ-बूझ कर उठाना और एक-एक पल होश से जीना। मूर्च्छा में जो जी रहा है, वह मनुष्य ही नहीं है।
सहजानंद, संस्कृत के सूत्र और तुम्हारे अनुवाद में थोड़े फर्क आ गए हैं। संस्कृत का सूत्र हैः मनुष्यत्वं--मनुष्य-तत्व, मनुष्य-चेतना। और तुमने अनुवाद कियाः मनुष्य-देह। गहरी भूल हो गई वहां। मनुष्य की देह मनुष्य का तत्व नहीं है। देह तो और पशुओं के पास भी है। देहों में क्या भेद? सब मिट्टी के खिलौने हैं। ऐसा बनाओ कि वैसा बनाओ। माटी कहै कुम्हार सूं तू का रूंधे मोहि। कहती है मिट्टी कुम्हार सेः तू मुझे क्या रूंधता है! आएगा एक दिन, आएगी वह घड़ी, जब--मैं रूंधूंगी तोहि! जब मैं तुझे रूंध डालूंगी।
एक ही सोने से हजार तरह के गहने बन जाते हैं। एक ही मिट्टी से हजार तरह
के घड़े बन जाते हैं। देह का तो कोई मूल्य नहीं है। फिर देह मनुष्य की हो, कि पशु की हो, कि पक्षी की हो, कि वृक्ष की हो--इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। मूल सुभाषित मनुष्य-तत्व की बात कर रहा है। और मनुष्य-तत्व मनुष्य-देह से बहुत भिन्न बात है। जो मूर्च्छित है, वह मनुष्य होकर भी मनुष्य नहीं। जो जागा, उसने ही मनुष्य होना शुरू किया। मनुष्य होने के लिए दो जन्म चाहिए। और सब पशुओं का एक ही जन्म होता है। एक बार जन्मे और फिर इसके बाद मौत है। मनुष्य द्विज हो सकता है। द्विज होना ही ब्राह्मण होना है।
द्विज होने का अर्थ हैः माता-पिता से तो पहला जन्म मिलता है, ध्यान से, समाधि से दूसरा जन्म मिलता है। ध्यान से, समाधि से अपने भीतर के ब्रह्म का परिचय होता है, पहचान होती है। तब वास्तविक जन्म मिला।
पहला जन्म तो मौत में जाकर गिर जाएगा। पहला जन्म तो कब्र में जाकर समाप्त हो जाएगा। झूले में और मरघट में कुछ बहुत फासला नहीं--चाहे सत्तर साल ही क्यों न लग जाएं झूले से कब्र तक पहुंचते-पहुंचते, मगर इस अनंत काल में सत्तर वर्षों की क्या कीमत, क्या बिसात! हां, दूसरा जन्म सच में जन्म है, क्योंकि उससे जीवन की शुरुआत होती है, जिसका फिर कोई अंत नहीं। शाश्वत जीवन जब तक न मिले तब तक जानना अभी तुम मनुष्य नहीं हो।

इसलिए, सहजानंद, मैं अनुवाद में मनुष्य-देह रखना पसंद न करूंगा-- मनुष्य-तत्व! सभी मनुष्य मनुष्य नहीं हैं। जिसने अपने भीतर की चैतन्य धारा को पहचाना, वही मनुष्य है। मगर हम चाहते हैं कि हम सबको मनुष्य माना जाए, क्योंकि हमारे पास देह मनुष्य जैसी है। निश्चित ही, बुद्ध के पास भी ऐसी ही देह थी और महावीर के पास भी और कृष्ण के पास भी और क्राइस्ट के पास भी; और नानक के, कबीर के और पलटू के, सबके पास ऐसी ही देह थी। मगर इस देह पर वे समाप्त नहीं थे। यह देह तो केवल सीढ़ी थी। इस देह से वे वहां पहुंच गए जो देहातीत है। उसे पाकर ही वे ठीक अर्थों में मनुष्य हुए।
इसलिए जीसस ने बहुत प्यारी बात कही, बार-बार कही है। कहीं जीसस कहते हैं मैं मनुष्य-पुत्र हूं और कहीं कहते हैं मैं ईश्वर-पुत्र हूं। दोनों का उन्होंने भरपूर उपयोग किया है। और ईसाइयत दो हजार सालों से चिंतना में पड़ी रही है कि क्या मानें जीसस को? मनुष्य का बेटा या ईश्वर का बेटा? क्योंकि जीसस दोनों का ही उपयोग करते हैं। निश्चित ही, ईसाई पंडितों- पुरोहितों को बड़ी बेचैनी रही है कि क्यों जीसस ने कहा कि मैं मनुष्य का बेटा। इतना ही कहा होता कि मैं ईश्वर का बेटा; बात सीधी-साफ थी। यह उलझन क्यों खड़ी कर दी? मगर मैं तुमसे कहता हूंः इसमें उलझन जरा भी नहीं है। मनुष्य होना और भगवान होना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो मनुष्य हो गया, उसने जान ही लिया कि वह भगवान है। भगवत्ता की पहचान ही मनुष्यता है। भगवत्ता की पहचान का ही नाम मनुष्य-तत्व है।
सूत्र तो प्यारा हैः दुर्लभं त्रैयमेवैवत देवानुग्रह हेतुकम्।
तीन चीजें दुर्लभ हैं--अति दुर्लभ हैं। मनुष्य होना; फिर मुमुक्षा का होना; फिर महापुरुष का सत्संग--जहां उपनिषद घटे, जहां एक ज्योति दूसरी ज्योति में समाए, मिले-जुले।
तीन चीजों को सर्वाधिक दुर्लभ बतायाः मनुष्य होना... । क्योंकि मनुष्य की तरह जन्मने में तो कोई बड़ी कठिनाई नहीं, जैसे और कीड़े-मकोड़े पैदा होते हैं ऐसे ही मनुष्य भी पैदा होता है, लेकिन और कोई भी प्राणी आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता। मनुष्य कर सकता है। यह यथार्थ तो नहीं है, लेकिन यथार्थ हो सकता है। बीज है, इसलिए वृक्ष भी हो सकता है। इस संभावनाओं को देख कर पहली अति दुर्लभ बात है इस जगत मेंः मनुष्य की भांति पैदा होना।
लेकिन, बीज भी पड़े रहें और खेत भी घर के पीछे हो और कुएं में जल भरा रहे
और सूरज धूप बरसाता रहे और तुम बीज ही न बोओ--वसंत भी आए, कोयल भी कूके, मगर तुम्हारे बीज तो बीज ही रहेंगे।
सूफी कहानी है। एक सम्राट के तीन बेटे थे और चुनाव करना बहुत मुश्किल
था कि किसको अपना राज्य सौंप दे। क्योंकि तीनों ही जुड़वां थे--बराबर उनकी उम्र थी, इसलिए उम्र से कुछ तय न हो सकता था। तीनों प्रतिभा-संपन्न थे। शिक्षक भी नहीं कह सकते थे कि कौन अधिक प्रतिभाशाली है। इसलिए उलझन और बढ़ गई थी। तीनों शक्तिशाली थे। एक से दूसरा बढ़ कर था। तीनों युद्ध के मैदानों पर परीक्षित हो चुके थे। और सदा जीत कर लौटे थे। हारना जैसे उन्होंने जाना ही न था। सम्राट किसे अपना उत्तराधिकारी चुने?
उसने एक सूफी फकीर से पूछा। उस फकीर ने अपने झोपड़े में से लाकर फूलों
के बीजों से भरी हुई एक बोरी दे दी। और कहा, यह ले जा, तीनों को बीज बांट दे और तू तीर्थयात्रा को चला जा। और कहना कि जब मैं लौटूं तो बीज मुझे सुरक्षित वापस चाहिए। और जो इसमें सर्वाधिक सफल होगा, वही मेरे राज्य का उत्तराधिकारी भी होगा।
सम्राट ने वे बीज तीनों को बांट दिए और तीर्थयात्रा को चला गया।
पहले बेटे ने सोचा, बीजों को सुरक्षित रखना है, एक ही उपाय है कि इन्हें लोहे की तिजोड़ी में बंद कर दूं। कोई चूहा न पहुंच जाए, कोई कीड़े न लग जाएं, कोई चुरा न ले। तो उसने एक लोहे की तिजोड़ी में बीज बंद कर दिए, मजबूत ताले जड़ दिए। चाबियां बहुत संभाल कर रखीं। रात भी सोता था तो चाबियां अपने हाथ में ही रखता था, अपने तकिए के नीचे दबा रखता था। कहीं जाता था तो चाबियां साथ ले जाता था। क्योंकि सारी जिंदगी, सारा भविष्य उन बीजों के बचने पर था।

दूसरे बेटे ने सोचा कि मैं भी तिजोड़ी में बंद कर सकता हूं, लेकिन कहीं तिजोड़ी में हवा न लगी, धूप न लगी और बीज सड़ गए! और पिता ने कहा था, जैसे दे रहा हूं वैसे ही वापस करना। कहीं बीज सड़ गए, तो मैं मारा गया। इसलिए अच्छा हो कि मैं बीज बेच दूं बाजार में। पैसे सुरक्षित रहेंगे। जब पिता आएंगे, फिर बीज खरीद लाऊंगा। बीजों-बीजों में क्या फर्क है? जैसे ये बीज वैसे वे बीज। कोई बीजों पर हस्ताक्षर तो हैं नहीं पिता के! पहचान भी क्या कर सकेगा? सो उसने बीज बेच दिए। पैसे ज्यादा सुरक्षित रह सकते थे। और जब पिता आएगा तो बीज खरीद लेगा।
तीसरे ने जाकर बीज अपने महल के पीछे बो दिए बगीचे में। उसने सोचा, बीज
का तो अर्थ ही होता है संभावना। बीज को बचाना अर्थात संभावनाओं को बचाना। और संभावना बचती है एक ही तरह से कि वास्तविक हो जाए। उसने बीज बो दिए।
जब पिता वापस लौटा तीर्थयात्रा से तो पहले बेटे ने अपनी तिजोड़ी खोली। लेकिन बीज सड़ गए थे। जिन बीजों से बड़े सुगंधित फूल पैदा हो सकते थे, उस तिजोड़ी से केवल दुर्गंध उठी। बाप ने कहा, ये मैंने तुझे बीज दिए न थे। ये मेरे बीज नहीं हैं। जो मैं तुझे दे गया था उनमें दुर्गंध नहीं थी, उनमें सुगंध की संभावना थी। तूने संभावनाओं को विकृत कर दिया। तूने सड़ा डाले बीज। तू हार गया।
दूसरे बेटे से पूछा। दूसरे बेटे ने कहा, जरा रुकिए, मैं बाजार से खरीद लाऊं! क्योंकि मैंने बेच दिए--इसीलिए कि तिजोड़ी में रखने का यह परिणाम होने वाला है जो मेरे एक भाई का हुआ। मैं जाता हूं। पिता ने कहा, लेकिन वे बीज वही नहीं होंगे जो मैंने तुझे दिए थे। वे वही नहीं हो सकते क्योंकि उन बीजों पर एक फकीर का आशीर्वाद था। उन बीजों को एक फकीर ने छुआ था। एक बुद्ध पुरुष के हाथ उन बीजों पर लगे थे। वे बीज वही नहीं हो सकते। अब तू उन बीजों को कहां से पाएगा, पागल? हीरे बेच दिए, अब तू कंकड़-पत्थर लाएगा। रहने दे, मत जा, मत मेहनत कर! तू हार गया।
तीसरे बेटे से पूछा। उसने कहा, आएं मेरे महल के पीछे। क्योंकि बीज का
तो अर्थ ही होता है, जो बढ़े। जो बढ़े नहीं, वह क्या बीज! जो फूटे, अंकुरित हो, वही बीज। तो मैंने उन्हें और तरह नहीं सम्हाला, बो दिया है। आएं! दूर-दूर तक फूलों से ही भर गई है बगिया। इतने फूल आए हैं कि पक्षियों को अपने घोंसले बनाने के लिए जगह भी नहीं मिल रही है। ऐसे लदे-फदे हैं फूल, मेला भरा है! और राज्य की मुझे चिंता नहीं है। मैं तो मस्त हो गया हूं माली होकर। मेरे लिए तो आपने काम दे दिया, अब मैं यही करूंगा तो भी मेरा जीवन धन्य है। बीजों को फूल बनाता रहूंगा--और इससे बड़ी क्या बात हो सकती है! पिता ने जाकर देखा। दूर-दूर तक जहां तक आंखें जाती थीं, फूल ही फूल थे। सुगंध उड़ रही थी। फूल हवाओं में नाच रहे थे। पिता ने कहा कि तूने ही केवल मेरे बीज बचाए। हालांकि एक अर्थ में तो तूने बीज बिल्कुल गंवा दिए। कहां हैं बीज? लेकिन एक अर्थ में तूने बचा ही नहीं लिए, तूने बहुत बढ़ा दिए, अनंत गुना कर दिए। अब इन पौधों पर फूल आ गए हैं, जल्दी ही इनमें बीज आएंगे, एक-एक बीज से करोड़-करोड़ बीज हो जाएंगे। तूने ही बचाया। यही बचाने का ढंग है। मनुष्य एक बीज है। और जो इस बीज को फूलों तक पहुंचा देता है, वही हकदार
है कहने का कि मैं मनुष्य हूं। तिजोड़ी में बंद करने की यह चीज नहीं। तीसरा बेटा मालिक हो गया साम्राज्य का।
मनुष्य होना दुर्लभ है--क्योंकि संभावना भी दुर्लभ है।
और फिर मुमुक्षा। मुमुक्षा बड़ा प्यारा शब्द है। बहुत विचारणीय। मनन करने योग्य। तीन शब्दों पर ध्यान रखो। एक हैः कुतूहल। मिलते-जुलते हैं, इसलिए उनको समझ लेना जरूरी है। दूसरा हैः जिज्ञासा। और तीसरा हैः मुमुक्षा। कुतूहल बचकाना होता है। यूं ही पूछ लिया। जैसे खुजलाहट आई, जरा- सा खुजा लिया और बात भूल गई। छोटे बच्चे यही करते हैं। कोई भी चीज देखते, पूछ लेते हैं। ऐसा क्यों? वैसा क्यों?
चंदूलाल का बेटा टिल्लू पहले ही दिन स्कूल गया और शाम को वापस आते ही अपने पिता चंदूलाल से पूछ बैठाः "पापा, पापा, मैं कहां से आया?" चंदूलाल ने सार्थक नजरों से पत्नी की ओर देखा, आंख मारी और मुस्कुराए; पूत के पांव पालने में ही दिखाई पड़ रहे हैं। फिर टिल्लू से बोलेः "तुम्हें यह बेवकूफी

कहां से सूझी?" टिल्लू ने कहाः "स्कूल में रमेश बतला रहा था कि वह कलकत्ता से आया है।"
बेचारा बच्चा कोई ऐसी गहरी जिज्ञासा नहीं कर रहा जैसा चंदूलाल समझ गए! किसी ने कहा कलकत्ते से आया हूं, तो उसने पूछा कि मैं कहां से आया हूं? कुतूहल जगा।
कुतूहल में कोई जड़ें नहीं होतीं, कोई गहराई नहीं होती। कुतूहल ऊपरी होता है। जवाब मिल जाए तो ठीक है, न मिले तो ठीक है। कोई कुतूहल पर दांव नहीं लगा होता। इसलिए छोटे बच्चे कुछ भी पूछते चले जाते हैं। तुम न जवाब दो तो वे कुछ ठहरते नहीं तुम्हारे जवाब देने के लिए, दूसरा प्रश्न खड़ा कर देते हैं।
लेकिन जिज्ञासा गहरी जाती है। जिज्ञासा का अर्थ होता हैः एक सातत्य। जैसे बूंद-बूंद भी गिरती रहे, गिरती रहे, तो गागर भर जाए--गागर ही क्यों, सागर भर जाए। जिज्ञासा में एक सातत्य है। कुतूहल केवल बूंद है। लेकिन जिज्ञासा बूंद का सतत गिरते रहना है। रसरी आवत जात है सिल पर पड़त निशान। रस्सी भी कुएं के पत्थर पर निशान बना देती है। आती रहती है, जाती रहती है। जिज्ञासा दार्शनिक है। कुतूहल तो केवल खुजलाहट है। जिज्ञासा का अर्थ हैः ऐसे प्रश्न जो तुम्हारे प्राणों में शोर मचा रहे हैं। जो तुम्हारे अंतरतम में द्वार खटखटा रहे हैं। जो कहते हैंः जवाब चाहिए ही चाहिए। जिज्ञासा पूरे जीवन पर फैल सकती है। कुतूहल सभी में होता है, बुद्धू से बुद्धू में भी होता है। लेकिन जिज्ञासा व्यक्ति को बौद्धिक बनाती है, दार्शनिक बनाती है, चिंतक बनाती है, विचारक बनाती है।
पर मुमुक्षा और भी अदभुत बात है। जितनी दूरी कुतूहल और जिज्ञासा में है, उससे भी ज्यादा दूरी जिज्ञासा और मुमुक्षा में है। कुतूहल और जिज्ञासा में तो जो भेद है वह केवल मात्रा का है। एक बूंद, और बहुत बूंदें हैं। भेद परिमाण का है, गुण का नहीं। लेकिन जिज्ञासा और मुमुक्षा में गुण का भेद है।
जिज्ञासा दार्शनिक बनाती है, मुमुक्षा धार्मिक। जिज्ञासा में प्रश्न होते हैं, मुमुक्षा में जीवन ही प्रश्न बन जाता है। जिज्ञासा में बहुत प्रश्न होते हैं, मुमुक्षा में एक ही प्रश्न होता है कि मैं कौन हूं? जिज्ञासा में हजार उत्तर आते हैं, हर उत्तर में से नए प्रश्न खड़े होते हैं। और मुमुक्षा में, मैं कौन हूं, यह एक ही प्रश्न होता है और अंततः यह प्रश्न भी गिर जाता है। जिस दिन यह प्रश्न गिरता है, उसी दिन जीवन उत्तर से भर जाता है। उसी दिन जीवन रहस्य से ओत-प्रोत हो जाता है।
मुमुक्षा का अर्थ हैः जिससे मिल जाए मोक्ष। दर्शन से मोक्ष नहीं मिलता, मुक्ति नहीं मिलती। जैसे कोई आदमी कारागृह में बंद हो। कुतूहल ऐसा होगा कि कभी पूछे कि क्यों दरवाजे पर हमेशा संतरी खड़ा रहता है? इसके हाथ में बंदूक क्यों है? बंदूक क्या करती है? पूछ लेगा, मिला उत्तर तो ठीक है, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता; नहीं मिला उत्तर तो भी ठीक है, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। उसकी कुछ नींद इससे खराब नहीं होगी।
लेकिन जिज्ञासा में नींद टूट जाएगी, खराब होने लगेगी नींद, रात-दिन प्रश्न पीछा करेगा--ये दीवारें क्यों हैं? ये मेरे हाथ पर जंजीरें क्यों हैं? ये मेरे पैरों में बेड़ियां क्यों हैं? यह संतरी क्यों खड़ा है? मैंने क्या किया है?
लेकिन कारागृह में बंद आदमी कैसे जान सकेगा कि मैं क्यों यहां बंद हूं? उसने तो जब से पाया है तब से अपने को बंद ही पाया है। जब से आंख खोली है तब से जंजीरें दिखाई पड़ी हैं, बेड़ियां दिखाई पड़ी हैं। जब से सजग हुआ तब से द्वार पर ताला पड़ा है, सींकचे हैं, बाहर बंदूकधारी सिपाही खड़ा है। क्या करेगा वह?
मुमुक्षा का अर्थ हैः सिर्फ कारागृह में बैठे-बैठे आराम से प्रश्न नहीं पूछने लगना, वरन दीवार को तोड़ कर बाहर निकलने की कोशिश। दीवार को तोड़ना, सींकचों को काटना, जंजीरों को गलाना--इसकी चेष्टा मुमुक्षा है। ताकि एक दिन मोक्ष मिल सके, मुक्ति मिल सके। एक दिन जब बाहर खड़ा होगा कारागृह के तभी जानेगा भेद बंधन का और मुक्ति का।

मुमुक्षा, सूत्र कहता है, दूसरी अदभुत घटना है। पहले तो मनुष्य होना दुर्लभ है। सौ में कोई एकाध मनुष्य होता है। सौ मनुष्यों में कोई एकाध मनुष्य होता है। निन्यानबे तो बस दिखाई पड़ते हैं। यूं ही समझो जैसे खेत में खड़े हुए झूठे आदमी।
देखा है न खेत में खड़ा हुआ बिजूका? एक डंडे पर हंडी लगा देते हैं, दूसरा डंडा हाथ की तरह बना देते हैं, कुर्ता पहना देते हैं। हंडी पर चाहो तो दाढ़ी-मूंछ भी लगा दे सकते हो, गांधी टोपी भी पहना दे सकते हो। पशु- पक्षियों को डराने के काम आएगा बिजूका, बस इससे ज्यादा किसी मतलब का नहीं है।
खलील जिब्रान की एक कहानी है कि मैंने एक बिजूके से पूछा। सुबह-सुबह घूमने निकला था, कोई और था नहीं, बहुत दिन से मन में जिज्ञासा उठती थी कि यह बिजूका यहां खड़ा-खड़ा थक जाता होगा--दिन भी खड़ा, रात भी खड़ा; वर्षा हो कि सर्दी हो कि धूप हो, खड़ा ही खड़ा--बेचैन होता होगा, ऊब जाता होगा।
तो जयराम जी करके पूछ लिया कि बिजूके भाई, यहां खड़े-खड़े थक जाते होओगे? वर्षा नहीं देखते, धूप नहीं देखते, सर्दी नहीं, गर्मी नहीं, मौसम आएं कि जाएं, मगर तुम सतत अपनी तपश्चर्या में लीन यहीं खड़े! बहुत तपस्वी देखे, बहुत महात्मा, लेकिन तुम बेजोड़ हो! यह जिज्ञासा मेरे मन में बार-बार उठती हैः ऊबते नहीं? बेचैन नहीं होते? कुछ और करने की नहीं सूझती? इंच भर हिलते नहीं! बिल्कुल खड़े श्री बाबा! वहीं खड़े हैं! पैर जमा कर खड़े हैं! बिजूके के ओंठों पर मुस्कुराहट आई, हंसा, खिलखिलाया और बोला कि नहीं,
ऊब नहीं आती। पशु-पक्षियों को डराने में इतना मजा आता है कि ऊबने की फुर्सत किसे? अरे, चैन कहां? काम-धाम इतना है, व्यस्तता इतनी है।
दुनिया में बहुत-से तो बिजूके हैं। उनका कुल मजा इतना है कि दूसरे को कैसे डराएं, कैसे धमकाएं! कोई राजनेता बन कर धमका रहा है, कोई धन इकट्ठा करके धमका रहा है--सब तरह की दादागिरियां हैं। मगर हैं सब बिजूके। कैसी- कैसी चीजों से धमका रहे हैं! मौका भर मिल जाए धमकाने का!
कल मैंने अखबार में खबर पढ़ी कि मोरारजी देसाई को लाल रंग से चिढ़ है। जरूर होगी! संन्यासियों का रंग है! और मेरे संन्यासियों को देख कर उनको एकदम आग लग जाती है! और मैं भेजता रहता हूं अपने संन्यासी कि कहीं भी हों जाकर शोरगुल मचा दिया करें! दर्शन तो उनको दे ही दिए! मगर यह चिढ़ उनकी ऐसी बढ़ गई कि कल अखबार में खबर थी कि जब वे प्रधानमंत्री थे तो रेडियो स्टेशन दिल्ली ने उनका एक व्याख्यान प्रसारित करने के लिए अपने एक आदमी को टेप रिकार्डर लेकर 1, सफदरजंग--जहां उनका निवास था--भेजा। प्रधानमंत्री के निवास पर। उस बेचारे को क्या पता, वह लाल जैकेट पहन कर--जवाहरबंडी लाल पहन कर--पहुंच गया! बस, मोरारजी ने देखा, कि जैसे बैलों को कोई लाल झंडी बता दे! कि बस वे एकदम फनफनाने लगते हैं! उनके नासापुट फैल जाते हैं! एकदम भन्ना जाते हैं! वैसे मोरारजी भन्ना गए! और कहा कि यह लाल बंडी क्यों पहनी? शायद शक हुआ हो कि मेरा आदमी है। जासूस है या क्या बात है? पूरा तो संन्यासी नहीं है, मगर लाल बंडी क्यों पहनी? वे इतने क्रुद्ध हो गए कि वह बेचारा कुछ कहे, इसका मौका ही नहीं मिला। उसको कहा कि निकल जाओ यहां से बाहर! तुमको इतना भी पता नहीं कि भारतीय संस्कृति में लाल रंग की साड़ियां सिर्फ स्त्रियां पहनती हैं, पुरुष नहीं।
सुनते हो? शंकराचार्य स्त्री थे! यह जो सुभाषित पूछा है सहजानंद ने,
यह शंकराचार्य की विवेक चूड़ामणि से है। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, सब स्त्री थे! एक मोरारजी पुरुष पैदा हुए हैं! यहां पांच हजार वर्षों से संन्यासी गैरिक वस्त्र पहन रहा है और भारतीय संस्कृति का उसको पता ही नहीं है! मोरारजी देसाई को भारतीय संस्कृति का पता है!
वे तो फिर इतने गुस्से में आ गए कि उनका व्याख्यान रिकार्ड करने का तो सवाल ही नहीं था, वह अपना रिकार्डर बचा कर बेचारा भागा! लाल बंडी ने सब गड़बड़ कर दिया।
दूसरों को डराने का कैसा मजा है! ये सब बिजूके हैं। इनका मजा ही यही है। बड़ा मकान बना लिया, पड़ोसियों को डरा दिया। झंडा ऊंचा रहे हमारा! ये सब बिजूके हैं, जो इस तरह की बातें करते हैं। अरे, तुम्हारे झंडे में ऐसा क्या है जो ऊंचा रहे? और काहे को ऊंचा रहे? ठीक से सम्हाल कर अपने सूटकेस में

रखो! झंडा ऊंचा रहे हमारा! लेकिन झंडा ऊंचा रखने का मतलब कुछ और है--डंडा ऊंचा रहे हमारा। झंडा तो बहाना है, असली में तो डंडा है जो भीतर है। जरा गड़बड़ की कि झंडा तो विदा हो जाएगा और डंडा बाहर आ जाएगा।
तो लोग अपने-अपने डंडे पर तेल की मालिश कर रहे हैं! दूसरे को डराने का ऐसा मजा है! खुद को जानने की फुर्सत कहां? सौ में निन्यानबे आदमी तो दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा में लगे हैं। और कैसी-कैसी मूर्खतापूर्ण प्रतिस्पर्धा में लगे हैं, होश ही नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन मुझे एक दिन रास्ते पर मिले। मैंने कहा, मियां तुम्हारे एक भाई हुआ करते थे--कल्लन मियां--जुड़वां थे, बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़े वे।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अरे, ले लिया बदला! ले लिया बदला एक ही बार में। जिंदगी भर का बदला ले लिया। वह दुष्ट कल्लन, उसने मुझे बहुत सताया। वह जरा मजबूत काठी का था--यूं तो हम जुड़वां थे, मगर वह जरा मजबूत काठी का था। कुश्तम-कुश्ती में चारों खाने मुझे चित कर देता था। इसलिए झगड़े में तो कोई सार ही नहीं था। झगड़ने से कोई फायदा ही नहीं था। मेरा सूट पहने, मेरा कोट पहने, मेरी टाई लगाए। मेरी छाती जली जाए, मगर कुछ करूं क्या? यहां तक शैतानी की उसने कि स्कूल में प्रथम पुरस्कार मुझको मिला और उसने उठ कर ले लिया। फिर भी मुझे अपने पर संयम रखना पड़ा, क्योंकि नहीं तो घर जाकर वह ऐसे पटकने देगा! मुझे निमंत्रण मिले भोजन का किसी के यहां, वह पहुंच जाए। शकल बिल्कुल एक जैसी थी, कोई पहचान ही न सके। मगर सबसे हद तो तब हो गई जब मेरा एक लड़की से प्रेम हो गया और वह उस लड़की को ले भागा। तबसे उस हरामजादे को मैं ठीक करने में लगा था। आखिर मैंने बदला ले लिया।
मैंने कहा, मुझे बताओ भी तो बदला कैसे लिया!
मुल्ला नसरुद्दीन बड़ी रहस्यमयी मुद्रा में हंसे और बोले कि मैं मर गया और लोग उसको दफना आए! अरे, सौ सुनार की एक लोहार की। बस, एक ही बार में जिंदगी भर का ठिकाना लगा दिया!
क्या-क्या मजा है! कैसी मूर्च्छा है! ये सौ में से निन्यानबे लोग तो मूर्च्छित हैं, बिल्कुल बेहोश हैं। इन्हें होश नहीं ये क्या कर रहे हैं! इन्हें पता नहीं ये क्यों हैं! इन्हें यह भी पता नहीं ये क्या हैं!
पायलट ट्रेनिंग का कोर्स चल रहा था। सरदार विचित्तर सिंह से जब पूछा गया कि मान लो तुम हवाई जहाज से कूदे और छतरी नहीं खुली, तो ऐसी स्थिति में तुम क्या करोगे? विचित्तर सिंह ने जवाब दियाः "सर, स्टोर रूम से जाकर दूसरी छतरी मांग लाऊंगा।"
ओ मेरे साथी रे, तेरे बिना भी क्या जीना! सरदार विचित्तर सिंह ने इस प्रसिद्ध फिल्मी गीत से प्रभावित होकर अपनी प्रेमिका के वियोग में अपने घर के जीने की एक-एक ईंट उखड़वा कर फिंकवा दी।
ओ मेरे साथी रे, तेरे बिना भी क्या जीना। जीना ही तुड़वा दिया! ईंट-ईंट उखड़वा दी!
सरदार विचित्तर सिंह एक फिल्म बना रहे थे। बड़ी दुस्साहस से भरी फिल्म थी। उसकी शूटिंग चल रही थी। हीरो के डबल को ऊंची खिड़की से नीचे छलांग लगानी थी। काफी कहने पर भी वह तैयार न हुआ।
अंततः सरदार विचित्तर सिंह, जो निर्देशन कर रहे थे, स्वयं आगे आए और कूद कर दिखाने के लिए बढ़े। उन्होंने खिड़की से कूद कर दिखाया और सड़क पर पसरे-पसरे ही कहा, अब समझ गए? समझ गए न कैसे कूदना? अब खिड़की पर आओ और मेरी तरह छलांग मारो। मगर उससे पहले जरा किसी डाक्टर को फोन कर दो। मेरी कई हड्डियां टूट गई हैं।
होश किसको है! ये सौ आदमियों में निन्यानबे तो बेहोश जी रहे हैं। इनको
यह भी पता नहीं कि ये आदमी हैं। कोई हिंदू है--आदमी नहीं; कोई मुसलमान है-- आदमी नहीं; कोई ईसाई है--आदमी नहीं; कोई जैन है--आदमी नहीं। कोई नीग्रो है, कोई सफेद चमड़ी वाला है, कोई जर्मन है, कोई जापानी है, कोई हिंदुस्तानी है, कोई पाकिस्तानी--आदमी तो खोजे से न मिले! तुम किसी से पूछो कि तुम कौन हो, तो शायद ही वह कहे कि मैं आदमी हूं! शायद ही कहे मैं आदमी हूं! कहेगा-- मद्रासी हूं, पंजाबी हूं, बंगाली हूं, बिहारी हूं, गुजराती हूं, मारवाड़ी हूं, मगर आदमी? आदमी! इस तरह की चीज कहीं पाई ही कहां जाती है।

सौ में एकाध कोई आदमी होता है। और सौ आदमियों में से किसी एकाध को मुमुक्षा जगती है। किसी को होश आता है कि यह जीवन एक बीज है और इस बीज को इसकी अंतिम नियति तक पहुंचाना है, अन्यथा व्यर्थ न चला जाए अवसर! सौ में से शायद एक तो आदमी और सौ आदमियों में से शायद एक अपने जीवन को इस अंतिम खोज में संलग्न करता है, मुमुक्षा से भरता है। मुमुक्षा महंगा सौदा है। मुमुक्षु को ही मैं संन्यासी कहता हूं। वह मेरा नाम है। उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। मुमुक्षु कहो कि संन्यासी कहो, जिसने अपने जीवन को इस अंतिम खोज में संलग्न कर दिया है कि जब तक न जान लूंगा कि मैं कौन हूं तब तक चैन से न रहूंगा। तब तक क्या चैन से रहना! तब तक एक-एक पल जो हाथ से जा रहा है वह कभी लौट कर न आएगा। वह लौटने वाला नहीं है। वह गया सो गया। वह व्यर्थ न चला जाए। एक-एक पल को निचोड़ लूं, आत्म-ज्ञान में ढाल लूं--ऐसी मुमुक्षा। सूत्र ठीक कहता है कि तीन चीजें अदभुत हैंः मनुष्यत्व, फिर मुमुक्षा-- संन्यास--और फिर महापुरुषसंश्रयः। फिर किसी सदगुरु के चरणों में बैठना, फिर किसी सत्संग में भागीदार होना, फिर किसी बुद्ध पुरुष से जुड़ जाना, फिर किसी जले हुए दीए के पास सरकते आना, सरकते आना, उस समय तक जब तक कि अपना भी बुझा हुआ दीया जल न जाए।
मुमुक्षा भी लोगों में पैदा होती है तो भी जरूरी नहीं है कि वे सदगुरु
का साथ खोजें। क्योंकि सदगुरु का साथ खोजने के लिए अहंकार छोड़ना होता है। मुमुक्षा में अहंकार नहीं छूटता। मुमुक्षा में अहंकार भर भी सकता है। जैसे कृष्णमूर्ति के पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं--तुम दुनिया के छंटे हुए अहंकारियों को वहां बैठा हुआ देखोगे। और कारण? क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैं, न समर्पण करना है, न दीक्षा लेनी है, न किसी को गुरु मानना है, तुम स्वयं काफी हो, तुम पर्याप्त हो।
यह अहंकार को भाषा प्रीतिकर लगती है कि मैं पर्याप्त हूं, मुझे कहीं झुकना नहीं है। और अगर कहीं झुकना नहीं है तो कृष्णमूर्ति के पास क्या भाड़ झोंक रहे हो? क्या, किसलिए वहां बैठे हो जाकर? नदी के किनारे बैठे हो और अंजुलि बनानी नहीं, पानी पीना नहीं--क्योंकि पानी पीने के लिए अंजुलि बनानी पड़े, मुमुक्षा की अंजुलि, पानी पीने के लिए झुकना पड़े, तब तो अंजुलि में पानी भरोगे, तब तो तुम्हारे कंठ तक पानी पहुंचेगा--तो घाट पर बैठे क्या कर रहे हो? या तो डुबकी मारो या रास्ता पकड़ो।
कृष्णमूर्ति के पास जो लोग बैठे हैं उनको सिर्फ अहंकार की तृप्ति मिल रही है कि बिना झुके सत्संग हो रहा है। मगर बिना झुके सत्संग होता ही नहीं। समर्पण ही सत्संग है।
तो तीसरी बात सर्वाधिक कठिन है। मैं कौन हूं इसकी खोज में मैं जो नहीं हूं, मैंने जो अपने को मान रखा है, वह मेरा जो झूठा मैं है, उसे किसी के चरणों में समर्पित कर देना। कहना कि मुझसे तो छूटे-छूटे यह नहीं छूटता, लेकिन तुम्हारे निमित्त शायद छूट जाए। तुम्हारे प्रेम में शायद छूट जाए। महापुरुष का संश्रय, उसका सान्निध्य, उसका सत्संग।
सूत्र कहता हैः और जब ये तीनों एक साथ मिलें तब तो समझना कि परमात्मा
की बड़ी अनुकंपा है। एक भी मिल जाए तो बहुत, और तीनों अगर साथ-साथ मिल जाएं तो इसी को कहते हैं कि जब वह देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। फिर तो इसे परमात्मा का अनुग्रह समझना। यह अपनी पात्रता नहीं होगी। यह अपना अर्जन नहीं हो सकता। यह तो उसका प्रसाद है, उसकी भेंट है। तब मोक्ष करीब है। आ ही गया। द्वार पर ही खड़े हो। मगर फिर भी ख्याल रहे कि फिर भी चूक सकते हो। आदमी द्वार से भी तो वापस लौट जा सकता है।
कई बार द्वार करीब आ चुका है तुम्हारे। अनंत-अनंत जन्मों में ऐसा हो
ही नहीं सकता कि द्वार तुम्हारे करीब न आया हो। तुममें से बहुत बुद्ध के करीब पहुंचे होंगे। तुममें से बहुतों ने महावीर का सान्निध्य पाते-पाते छोड़ दिया होगा। तुममें से बहुतों के कानों में कृष्ण के वचन पड़ते-पड़ते चूक गए होंगे। तुममें से बहुतों का हाथ जीसस ने पकड़ना चाहा होगा, लेकिन तुमने छुड़ा लिया होगा। तुममें से बहुतों के प्राणों में मोहम्मद की आवाज गूंजते-गूंजते रह गई होगी। इस अनंत काल में, इस अनंत यात्रा में अनंत-अनंत बुद्ध हुए हैं। ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम किसी बुद्ध के पास न पहुंचे हो, कि तुमने नानक और उनके शागिर्द मस्ताना के गीत न सुने हों, कि तुमने कबीर

की उलटबांसियां न सुनी हों, कि पलटू ने तुम्हें झकझोरा न हो, कि तुमने रैदास की आंखों में न झांका हो। मगर द्वार आया और चूक गया।
बुद्ध कहते थे कि यूं समझो कि एक महल है जिसमें हजार दरवाजे हैं और एक अंधा आदमी महल में अंदर भटक गया है। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद हैं, एक दरवाजा खुला है। वह अंधा आदमी टटोलता है, टटोलता है, टटोलता है, लेकिन बंद दरवाजे, बंद दरवाजे, बंद पर बंद दरवाजे। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद हैं, एक दरवाजा खुला है। और जब वह खुले दरवाजे के करीब आता है तो कभी सोचता है कि यह भी होगा बंद, इतने तो देख चुका--और बिना टटोले निकल जाता है। और तुम नाराज मत होना उस पर। क्या कसूर बेचारे का! इतने दरवाजे टटोले, थक गया टटोलते-टटोलते, सब बंद, तो यह भी बंद ही होगा, ऐसा सोच कर आगे बढ़ जाता है। चूक गया। फिर नौ सौ निन्यानबे दरवाजों पर भटकेगा तब यह दरवाजा आएगा।
कभी यूं होता है कि खुले दरवाजे के करीब आता है और एक मक्खी सिर पर बैठ जाती है, और उसको उड़ाने में ही दरवाजा चूक जाता है। आगे बढ़ जाता है, पैर आगे निकल जाते हैं। छोटी-छोटी बातें चुका देती हैं। एक मक्खी सिर पर बैठ जाए, खुला दरवाजा चूक जाता है। या एक छोटा-सा तर्क। और तर्कों की कोई कमी है! आदमी जितने चाहे उतने तर्क दे सकता है। अंधा आदमी भी अपने अंधेपन के बचाव के लिए तर्क देता है। बहरा आदमी अपने बहरेपन के बचाव के लिए तर्क देता है। क्योंकि तर्कों से सांत्वना मिलती है।
यह सत्य वेदांत ने प्रश्न पूछा था न कि डोंगरे महाराज कहते हैं कि गरीबी पाप नहीं है, लेकिन गरीब का सम्मान करना चाहिए।
अगर गरीबी पाप नहीं है तो गरीब का सम्मान क्यों करना चाहिए? गरीबी के कारण? मनुष्यता के कारण सम्मान करो। लेकिन मनुष्यता में क्या भेद है फिर गरीब और अमीर का, फिर काले और गोरे का! मनुष्य का आदर करो! लेकिन गरीबी पाप नहीं है, फिर भी गरीब का सम्मान करना चाहिए! गरीब शब्द का विशेषण क्यों जोड़ते हो?
यह जो डोंगरे महाराज ने कहा कि गरीब का सम्मान करना चाहिए, यही तो महात्मा गांधी कह रहे थे कि दरिद्र नहीं है वह, दरिद्रनारायण है! दरिद्र के रूप में भगवान आए हैं। और जब तुम दरिद्रनारायण का सम्मान करोगे तो दरिद्रता को मिटाओगे कैसे? हालांकि दरिद्र को भी अच्छा लगता है कि उसका कोई दरिद्रता के कारण सम्मान करे। सांत्वना मिलती है, अच्छा लगता है, प्रीतिकर लगता है, सुस्वादु लगता है। अमीर का अपमान हो, इससे भी मजा आता है कि ठीक, मिलना ही चाहिए इसको अपमान। क्योंकि भीतर ईर्ष्या की आग जल रही है। और गरीब का सम्मान हो तो बड़ा सुखद मालूम होता है। जैसे ठंडी हवा आ गई हो। उत्तप्त तुम थे और ठंडी हवा का झोंका बह गया और शीतल कर गया।
महात्मा गांधी ने खूब राजनीति चलाई दरिद्र का सम्मान करके। क्योंकि
यह देश अट्ठानबे प्रतिशत तो दरिद्रों से भरा हुआ है, इन्हीं पर राजनीति चलनी है। इनको दरिद्रनारायण कहो, निश्चित इनका मत तुम्हारे साथ, ये तुम्हें महात्मा कहेंगे। मगर इन गरीबों को यह पता नहीं कि इनकी गरीबी का जितना सम्मान किया जाएगा उतनी ही यह गरीबी टिकेगी, बचेगी। यह तर्क खतरनाक है, यह महंगा है।
मैं तुमसे कहता हूंः सबका सम्मान करो! क्या गरीब और अमीर का भेद करते हो! सम्मान जीवन का करो! मगर दरिद्र का सम्मान करना चाहिए, तो उसका तो मतलब हुआ कि दरिद्रता के कारण! और अगर दरिद्रता के कारण सम्मान करना है तब तो निश्चित ही उसको दरिद्र बने रहना चाहिए अगर सम्मान पाना हो। और कोशिश करो कि वह दरिद्र बना रहे ताकि बेचारे को सम्मान मिलता रहे; नहीं तो कौन सम्मान देगा! जिस दिन अमीर हो जाएगा उस दिन कोई सम्मान देने वाला न मिलेगा। दरिद्र रहेगा तो नारायण है और अमीर हो गया तो चूक गया, भटक गया। गरीबी को आदर दोगे और गरीबी को मिटाना चाहते हो!
और मैं तुमसे कहता हूं कि निश्चित ही डोंगरे महाराज का यह वक्तव्य किसी और अर्थ में सही है। उन्होंने कहा कि गरीबी पाप नहीं है। इस अर्थ में सही है कि गरीब का जिम्मा गरीब होने में नहीं है--जैसा कि कहा जाता रहा है कि पिछले जन्मों का पाप भोग रहा है। लेकिन, गरीबी पाप तो है। सामाजिक पाप है, व्यक्तिगत पाप नहीं है। पूरा समाज जिम्मेवार है। यह कोढ़ जो गरीबी का है, इसकी जिम्मेवारी समाज पर है। और उस समाज में भी सर्वाधिक जिम्मेवारी

तुम्हारे साधु-महात्माओं की है, जिन्होंने गरीब को तर्क दिए गरीब बने रहने के। गरीब को अच्छे लगे, अमीर को भी अच्छे लगे।
अमीर को इसलिए अच्छे लगे कि गरीब गरीब बना रहे तो अमीर अमीर बना रहे।
और गरीब को अच्छे लगे कि मेरी गरीबी कोई साधारण बात नहीं, बड़ी आध्यात्मिक बात है। अरे देखो, बुद्ध ने भी महल छोड़ दिया। बुद्धत्व पाने के पहले गरीब हो जाना पड़ा। महावीर ने भी राजपाट छोड़ दिया। यह सम्मान है गरीबी का। यह सत्कार है गरीबी का। यह इस बात की स्वीकृति है कि गरीब होना परम सत्य को पाने के लिए अपरिहार्य है। तो परमात्मा की बड़ी कृपा है जो मुझे गरीब बनाया, भिखमंगा बनाया, दीन-हीन बनाया, दुखी बनाया, बीमार बनाया। इस तरह अमीर को भी सुविधा मिल गई कि क्रांति से बचाव हो और गरीब को सांत्वना मिल गई कि वह गरीबी में भी सुख लेने लगा, अपनी बीमारी में भी समझने लगा कि यह आभूषण है, हीरे-जवाहरात जड़े हैं।
इस तरह की थोथी बातें और थोथे तर्क आदमी खोजता चला जाता है। एक के बाद
एक खोजता चला जाता है। और अच्छे-अच्छे प्यारे लगने वाले तर्क खोज लेता है। कहता है, विधाता ने लिखा होगा भाग्य में तो होगा ज्ञान। अरे, बिना उसके तो पत्ता भी नहीं हिलता तो कोई कैसे बुद्धत्व को प्राप्त होगा! जब उसकी कृपा होगी तो बुद्धत्व भी मिलेगा, अपनी तरफ से क्या करना है!
इसका परिणाम हुआ कि देश काहिल हुआ, सुस्त हुआ। अच्छी लगे बात या बुरी लगे, तुम्हारे तथाकथित ऋषि-मुनियों का हाथ है तुम्हारी काहिलता में, तुम्हारी सुस्ती में, तुम्हारी गरीबी में, तुम्हारी दरिद्रता में। और जब तक हम इस बात से सजग न हो जाएं तब तक इस देश से गरीबी को मिटाया नहीं जा सकता है। तो अच्छे-अच्छे तर्क आदमी खोज सकता है। गलत से गलत बातों के लिए सुंदर से सुंदर छाते बचाव बन सकते हैं।
तो पहले तो यही तर्क उठता है मन में कि मनुष्य की भांति पैदा हुआ, अब
और क्या मनुष्यता पानी है? यह तो हम पैदा ही मनुष्य हुए हैं। बस वहीं रुकाव आ गया। या सोच सकता है कि जिज्ञासा ही तो मुमुक्षा है। अच्छे-अच्छे प्रश्न पूछना कि ईश्वर है या नहीं, आत्मा है या नहीं--और क्या करना है मुमुक्षा में? शास्त्र पढ़ेंगे, अध्ययन करेंगे, शास्त्रीयता को वरण कर लेंगे--और क्या है मुमुक्षा? तो मुमुक्षा रुक गई। और फिर अहंकार कहेगा, किसी की शरण क्यों जाना? क्यों किसी के चरण गहने? क्यों कहीं समर्पण करना? अरे खुद ही खोजेंगे। स्वयं ही पा लेंगे। तो महापुरुष का संश्रय, उसका सान्निध्य, उसका सत्संग, इससे वंचित हो गए। द्वार तो तुम्हारे करीब आ जाता है, मगर तुम द्वार से निकल जा सकते हो। और कई बार यूं भी हो सकता है कि तुम द्वार पर चेष्टा भी करो, लेकिन चेष्टा गलत हो।
जैसे रामतीर्थ ने कहा है कि एक आदमी एक दरवाजे पर धक्का दे रहा था, खुलता ही न था, खुलता ही न था। रामतीर्थ ने देखा तो कहा कि मेरे भाई, जरा दरवाजे पर देखो तो कि क्या लिखा है? दरवाजे पर लिखा थाः पुल। पुश नहीं। और वह धक्के मार रहा था। धक्के मारने से दरवाजा नहीं खुल सकता था। खींचने से खुलने वाला था। अपनी तरफ खींचने से खुलने वाला था। थोड़ा पढ़ो भी तो, थोड़ा गौर से देखो भी तो कि दरवाजे पर क्या लिखा है! दरवाजे पर खड़े हो और खुद ही अपने हाथ से चूक रहे हो।
तो यूं भी हो जाता है कि कोई मनुष्य होने की चेष्टा में भी संलग्न हो जाए, मुमुक्षा भी करे, सदगुरु भी मिल जाए, दरवाजे पर खड़ा हो, लेकिन पढ़े ही न कि दरवाजे पर क्या लिखा है और उलटा करता रहे। क्योंकि सुनोगे तो तुम, अर्थ तुम करोगे। मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ सुन लोगे। मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ अर्थ कर लोगे। तो भी चूक जाओगे।
सदगुरु के पास तो शून्य होकर बैठना पड़ता है। अपनी बुद्धि को विदाई ही
दे देनी होती है। कठिन काम है। क्योंकि तब ऐसा डर लगता है कि अपनी बुद्धि को विदा कर दिया तो फिर निर्णय कैसे करेंगे? मगर तुम्हारी बुद्धि अगर निर्णय कर सकती होती तो किसी के सान्निध्य की जरूरत ही न थी। नहीं निर्णय कर सकती तो इस बुद्धि को जाने दो। इसको विदा दे दो। इसको अलविदा कहो। इसको विदा देते ही तुम्हारी आंखें निर्मल हो जाएंगी, तुम्हारा हृदय सरल हो जाएगा। और तब जो कहा जाएगा वही तुम सुनोगे। जो तुम देखोगे, वह वही होगा

जैसा है। उसे तुम विकृत न करोगे। उसे तुम अपने ढंग से, अपनी व्याख्या से अपना रंग न दोगे। उसमें पक्षपात नहीं होगा।
कल अरूप मेरे पास हालैंड से एक पत्र लाई। हालैंड की पार्लियामेंट ने मेरे संबंध में खोजबीन करने के लिए कमेटी नियुक्त की है। क्योंकि हालैंड में संन्यासियों की संख्या रोज बढ़ती जाती है। घबड़ाहट भारी हो गई है खड़ी। क्योंकि जब पार्लियामेंट में कमेटी बनानी पड़े तो उसका अर्थ होता है कि मामला सीमा के बाहर हुआ जा रहा है। हालैंड के गांव-गांव में, छोटे से छोटे गांव में भी संन्यासी पहुंच गए हैं। जगह-जगह आश्रम और जगह-जगह ध्यान-केंद्र बन गए हैं।
तो उन्होंने कमेटी बनाई है और कमेटी ने मेरे प्रत्येक आश्रम को हालैंड में सूचना भेजी है कि आप इतनी बातों की सूचनाएं हमें दें और पत्र लिखा है। पत्र में यह लिखा है कि हम बिल्कुल निष्पक्षता से, पक्षपातरहित होकर इस बात की जांच करना चाहते हैं कि आप जो कार्य कर रहे हैं उससे मनुष्य का हित होगा कि अहित होगा। और जिनके नाम हैं नीचे, उनमें कोई ईसाई पादरी है, कोई कैथोलिक है, कोई प्रोटेस्टेंट है--सब ईसाई हैं।
तो हालैंड के मेरे संन्यासियों ने ठीक उत्तर दिया है। उन्होंने लिखा
कि पहले यह तो आप बताएं कि आप कैसे बिना पक्षपात के हम पर विचार करेंगे? आप खुद ईसाई हैं। और जब आप ईसाई हैं तो आप क्या बिना पक्षपात के निर्णय कर सकते हैं! और आपको क्या हक है हम पर विचार करने का?
जब अरूप ने मुझे यह पत्र बताया तो मैंने कहा कि उनको लिखो कि वे भी एक कमेटी बनाएं और सारे चर्चों को भेज दें कि हम पक्षपातरहित होकर ईसाइयत के संबंध में यह खोज करना चाहते हैं कि दो हजार साल में तुमसे मनुष्यता को कुछ लाभ हुआ कि नुकसान हुआ! और हम बिल्कुल पक्षपातरहित होकर विचार करेंगे। क्योंकि मेरे संन्यासी निश्चित ही पक्षपातरहित होकर विचार कर सकते हैं, क्योंकि मेरे संन्यासी न ईसाई हैं, न हिंदू हैं, न मुसलमान हैं, न जैन हैं, न बौद्ध हैं, न यहूदी हैं। मेरे संन्यासी तो सिर्फ धार्मिक हैं। उनका कोई विशेषण नहीं है। धर्मरहित उनकी धार्मिकता है। संप्रदायरहित उनकी निष्ठा है।
तो उनको लिखो कि हम निष्पक्ष होकर विचार कर सकेंगे। और तुम्हारा दो हजार साल का जो कृत्यों का इतिहास है, वह पर्याप्त प्रमाण है कि तुमसे हित हुआ या अहित हुआ। तुम क्या खाक हमारे संबंध में विचार करोगे! तुम हो कौन? तुम्हें यह हक किसने दिया? और पहले अपने भीतर तो जांच-पड़ताल करके देख लो कि तुम्हारे दो हजार साल सिवाय हिंसा के... लहूलुहान कर गए हैं इतिहास के पृष्ठों को। ईसाइयों ने जितना रक्त बहाया है उतना किसी और ने नहीं। मुसलमानों को भी मात दे दी है। तो थोड़ा अपने पर तो विचार कर लो!
लेकिन उन्होंने लिखते समय यह सोचा भी न होगा कि हम सब ईसाई हैं और हम पक्षपातरहित होकर कैसे विचार करेंगे!
मैंने खबर भिजवाई संन्यासियों को, उनको कहना कि तुम्हारे कोई भी ईसाई संत ने, महात्मा ने बुद्ध पर कुछ कहा है, महावीर पर कुछ कहा है, कृष्ण पर कुछ कहा है, लाओत्सू पर कुछ कहा है, च्वांग्त्सू पर कुछ कहा है, बोकोजू पर कुछ कहा है, बहाउद्दीन, जलालुद्दीन, मंसूर पर कुछ कहा है? सिवाय जीसस के उन्होंने किसी पर कुछ नहीं कहा।
मैं शायद अकेला आदमी हूं पृथ्वी पर, पहला आदमी हूं, जो जीसस पर बोला है, जो बाइबिल पर बोला है, जिसने धम्मपद पर बोला है, जिसने महावीर पर बोला है, जिन-सूत्रों पर बोला है, जिसने उपनिषद पर, जिसने कृष्ण पर, जिसने लाओत्सू पर, जिसने इस पृथ्वी के सारे धर्मों पर एक निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया है--क्योंकि मेरा कोई पक्ष नहीं है, मेरा कोई अपना धर्म नहीं है। इसलिए जब मैं महावीर पर बोला हूं तो मैंने महावीर को ही अपने भीतर से बोलने दिया है, जरा बाधा नहीं डाली। और जब बुद्ध पर बोला हूं तो बुद्ध को अपने भीतर से बोलने दिया है।
लेकिन पक्षपात ऐसे गहरे बैठ जाते हैं कि जिन्होंने यह पत्र लिखा है उनको यह ख्याल भी न आया होगा कि अपने नामों के साथ हम लिख रहे हैं कि हम कैथोलिक हैं, हम प्रोटेस्टेंट हैं, हम इस संप्रदाय के मानने वाले, उस

संप्रदाय के मानने वाले। और फिर भी तुम सोचते हो कि तुम पक्षपातरहित हो और तुम पक्षपातरहित होकर विचार करोगे!
सदगुरु के साथ बैठना हो तो सारे पक्षपात छोड़ देने होते हैं। तभी संभव
है कि सत्संग हो। तभी संभव है कि सत्य का आदान-प्रदान हो। मोक्ष तो करीब आ जा सकता है, लेकिन तुम अपने पक्षपातों के कारण चूक सकते हो।
सहजानंद, यह सूत्र सच में अमृत वचन है--
दुर्लभं त्रैयमेवैवत देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुयं महापुरुषसंश्रयः।।
मनुष्य की चेतना पाना, मुमुक्षा की दृष्टि पाना, महापुरुष का आश्रय,
ये तीनों अति दुर्लभ हैं अलग-अलग भी और जब एक साथ मिलें तब तो मानना कि परमात्मा का अनुग्रह है। मोक्ष फिर बिल्कुल करीब है। यूं सामने रहा। लेकिन फिर भी चूक सकते हो, क्योंकि मूर्च्छा भारी है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप जरूर मजाक कर रहे थे। यह कैसे हो सकता है कि बच्चे और बूढ़ों से ज्यादा प्रतिभाशाली हों?

कन्हैयालाल गोरक्षक, जय हो कन्हैयालाल की! इतना भी समझे तो बहुत समझे। कुछ तो समझे। क्योंकि मजाक समझने के लिए भी थोड़ी बुद्धि तो चाहिए। गोरक्षकों में इतनी भी नहीं होती। गऊमाता का दूध पीते-पीते हालत बैलों की हो जाती है। चलो, थोड़ा मजाक और सही।
अध्यापक ने शैतानी करते हुए छात्र से कहाः "टिल्लू, शांति के साथ बैठो।"
टिल्लू ने कहाः "सर, शांति तो आज स्कूल आई ही नहीं।"
और तुम कहते हो बच्चे प्रतिभाशाली नहीं होते। बहुत प्रतिभाशाली होते हैं।
अध्यापक ने कहाः "टिल्लू, जब मैं तुम्हारी उम्र का था तो तुमसे एक क्लास आगे था।"
टिल्लू ने कहाः "सर, आपको अच्छा अध्यापक मिला होगा।"
"जब इस स्त्री की अपने पति के साथ लड़ाई हुई तब क्या तुम वहां मौजूद थे?" जज ने पूछा।
"जी हां," चौदह वर्षीय फजलू ने जवाब दिया।
"क्या गवाह की हैसियत से तुम्हें कुछ कहना है?"
"जी हां, यही कि मैं कभी शादी न करूंगा।"
चौदह वर्ष का बच्चा भी समझ लेता है।
"आ जाओ, आ जाओ, कुत्ते से डरो मत।" चंदूलाल के बेटे टिल्लू गुरु ने घर
आए हुए मेहमान से कहाः "अरे आ जाओ, आ जाओ।"
मेहमान ने पूछाः "बेटा, क्या यह काटता नहीं?"
टिल्लू गुरु बोलेः "यही तो देखना चाहता हूं। मैंने इसे आज ही खरीदा है।"
अध्यापकः "अगर पचास मेहमानों के लिए एक मन दूध काफी हो, तो सौ मेहमानों के लिए कितने दूध की आवश्यकता होगी?"
टिल्लू बोलेः "गुरु जी, दूध तो इतना ही काफी होगा, हां, पानी कुछ अधिक
ही डालना पड़ेगा।"
अध्यापक ने कहाः "हवाई जहाज का आविष्कार किसने किया?"
फजलू बोलेः "सर, मेरे पिता मुल्ला नसरुद्दीन ने।"
अध्यापक ने गुस्से से कहाः "क्या बकते हो!"
फजलू ने कहाः "सर, आपने ही तो कहा था कि अपने पिता का नाम रोशन करना चाहिए।"
शिक्षक ने पूछाः "बंटी, बताओ जिस व्यक्ति का जन्म अठारह सौ चालीस में हुआ हो, अब उसकी उम्र क्या होगी?"
बंटी ने कहाः "पहले यह बताइए जी, वह आदमी है या औरत?"
स्कूल में शिक्षक नैतिकता का पाठ पढ़ा रहे थे। बोलेः "यदि मैं किसी लड़के को देखूं कि वह गधे को मार रहा है और मैं उसे गधे को मारने से रोकूं तो मेरी इस नेकी को क्या कहा जाएगा?"

टिल्लू बोलाः "भाईचारा।"
कन्हैयालाल, प्रतिभा तो बच्चों में बहुत होती है। प्रतिभा का अर्थ सूचना का संग्रह मत समझ लेना। सूचना का संग्रह नहीं होता, लेकिन देखने की एक सरलता होती है, स्वच्छता होती है। उसी को मैं प्रतिभा कह रहा हूं। जानकारी कम होती है, निश्चित ही जानकारी बूढ़े में ज्यादा होगी, क्योंकि वह जीया है इतने दिन तो जानकारी उसकी ज्यादा होगी, लेकिन उसकी जानकारी के कारण ही उसकी प्रतिभा दब जाती है। बच्चे में प्रतिभा होती है, जानकारी नहीं होती। प्रतिभा का अर्थ होता हैः अभी कोई पर्दा नहीं, कोई आड़ नहीं, सीधा-सीधा देखता है। और इसीलिए बच्चे बूढ़ों को अखरते हैं। क्योंकि बच्चे ऐसी बातें कह देते हैं जो बूढ़ों को तकलीफ में डाल दें।
"तुम्हारी मां आज ही बीमार पड़ीं और आज ही ठीक भी हो गईं। डाक्टर ने क्या दवा दी थी, बेटे?" पड़ोसिन ने टिल्लू गुरु से पूछा।
"कुछ नहीं आंटी, वह मम्मी के कान में फुसफुसा कर बोला, यह आपकी बढ़ती हुई उम्र का संकेत है। बस, मम्मी उठ कर खड़ी हो गईं और पापा को डांटने लगीं।" चाचीः "जब तुम्हारे चाचा लकड़ी की सीढ़ी से फिसल कर गिर पड़े थे, टिल्लू,
तो उन्होंने क्या कहा?"
टिल्लू ने कहाः "चाची, उनकी दी हुई गालियां तो छोड़ ही दूं न?"
चाची बोलीः "हां बेटा, गालियां तो बिल्कुल ही छोड़ दो।"
टिल्लू बोलाः "तो चाची, उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।"

आखिरी सवालः ओशो, लगन महूरत झूठ सब, रसमलाई है सच्ची।
बड़े-पकौड़े साथ हों, तो समाधि है पक्की।।
कृपया कुछ कहें।

प्रताप, सब तुमने कह ही दिया। सत्य-वचन, महाराज। आप तो सत्य ही वदंते। सत्य ही बोलंते, सत्य ही करंते, सत्य ही रहंते। आपका नाम तो आज से हो गयाः सच्चा बाबा। ऐसी ही जगह तो देवता रमंते। और फिर भी दुष्टजन पूछंते कि कायकूं रमंते?
सुबह ही सुबह पलटू मिल गए तो मैंने उनसे कहा, सुन लो, यह प्रताप क्या कहते हैं! ये सच्चा बाबा क्या कहते हैं! तुमने तो कहा--
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।
लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।
लेकिन सच्चा बाबा ने तो तुमको भी, पलटू, पलटंते! खूब दुलत्ती मारंते।
उनका भी होश ठिकाने आवंते। तत्क्षण पलटू उदास होवंते। जार-जार रोवंते।
मैंने कहाः कायकूं रोवंते, भाई? बोलेः ऐसी ज्ञान की बातें। हाय दैय्या।
कलियुग आ गया भैया।
आज इतना ही।